UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182721

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 780 A28S P.G.H Accession No. 3667

Author अहोबिल पण्डित

Title सङ्गीत - पारिजात

This book should be returned on or before the date last marked below.

सङ्गीत-पारिजात

(भाष्य-भाषा सङ्कलितः)

मूल लेखक—

श्री० अहोबल पण्डित

भाष्यकार—

सङ्गीतकला कोविद पं० "कलिन्दजी"

प्रकाशक—

प्रभूलाल गर्ग (सम्पादक "संगीत")

❀

संगीत कार्यालय—हाथरस ।

Copy Right Reserved.

❀

प्रथमावृति ११००

❀

अगस्त १९४१

प्रकाशक—
प्रभूलाल गर्ग
संगीत कार्यालय—हाथरस ।

मिलने का पता—
१—गर्ग एण्ड कम्पनी—हाथरस ।
२—सङ्गीत कार्यालय—हाथरस ।

*

प्रिन्टर—
पं० हरप्रसाद शर्मा के प्रबन्ध से
ला० मदनलाल ख्यालीराम के अग्रवाल मशीन प्रेस,
हाथरस में मुद्रित ।

भाष्यकार का मङ्गलाचरण

सङ्गीतेन वशी करोति वरदं क्ष्माजाधवं राघवम् ।
यश्चामीकरचारुगात्रसुषुमां विस्तारयत्यद्भुताम् ॥
नाना तालकलाकलापनिपुणो कौशल्यवद्गीयते ।
सः प्रीणातु प्रशस्तगानरसिकव्यामोदिशाखामृगः ॥ १ ॥

जो अपने सङ्गीत के द्वारा सीता के पति, वरदायक, राघव (राम) को वश में कर लेते हैं । जो सोने जैसी सुन्दर और अद्भुत शरीर की शोभा को (भक्तों के समक्ष) फैलाते हैं। जो भांति २ के ताल और उनकी कला मात्राओं के कलापों (सहतों) के एक साथ (उच्चारण) में, या समूह में निपुण हैं जो बड़ी कुशलता से गान करते हैं, वह प्रशन्सा करने योग्य सङ्गीत के रसिकों में बड़ी प्रसन्नता दिखाने वाले डालियों के हिरण (कपि स्वरूप) हनुमान जी प्रसन्न हों ।

शास्त्रञ्चकार शवभालविभूषिताङ्ग पूर्वञ्चतच्छिवमतं भरतस्तदन्ते ।
तद्धारतं कपिवरश्च विलीलिखद्यत् पश्चादिदं हनुमतो मतमीरितन्तम् ॥ २ ॥

मुर्दों के मस्तकों से अपने शरीर को विभूषित करने वाले (मुण्डमाली) शिवजी ने सब से पहिले सङ्गीत का शास्त्र बनाया था, उसी को आज "शिवमत" कहते हैं । उसके अन्त (बाद) में भरताचार्य्य ने शास्त्र लिखा, जिसे आज "भरतमत" कहते हैं । इसके पश्चात् हनूमानजी ने जो सङ्गीत का शास्त्र लिखा उसे "हनुमत मत" कहा गया है ।

ततोऽयमुद्धृत्य महानहोबलश्चकार सांगीतिक-पारिजातकः ।
तदस्य व्याख्यानमहं सुबोधकम् करोमि भाषातिलकं सुखाप्तये ॥ ३ ॥

उस हनुमतमत से उद्धरण कर विद्वान् अहोबल शास्त्री ने यह 'सङ्गीत-पारिजातः' बनाया है । सङ्गीत प्रेमियों की ज्ञान वृद्धि के तथा सुख की प्राप्ति के लिये मैं उस उत्तम ग्रन्थ की टीका करता हूँ ।

नत्वा मतङ्गभग्नाद्रिभवाभवाद्या ।
नन्दीशचित्ररथनारदशारदादीन् ॥
सम्भोर्भवीमृदकरीश तिलोत्तमाश्च–
ताम्भेनकामनुभजे नलिनीं घृताचीम् ॥ ४ ॥

मतङ्गजी, भरतजी, पार्वती जी, एवं शिवजी, नन्दीश्वर, चित्ररथ (गन्धर्व) नारद जी, तथा सरस्वती देवी, आदि (सङ्गीत विद्या के आचार्य्यों को) नमस्कार

करने के पश्चात् मैं—रम्भा, उर्वशी, मुदकरी (अप्सरा) तिलोत्तमा, नलिनी, घृताची तथा उस मेनका को भजता हूँ ।

सङ्गीतसागरमपारमनाश्रयं वै यातुं कलिन्दकविरद्य समुत्थितोऽयम् ।
च्छायाश्रितः सुरतरोर्वचनं ययाचे विद्वानहोबल अहो ! बलमातनोतु ॥ ५ ॥

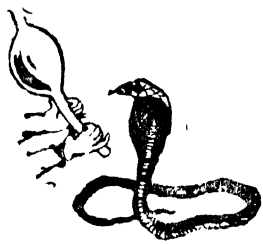
सङ्गीत का सागर (समुद्र) अपार है, फिर किसी का आश्रय नहीं है। (भाव यह है कि मूल श्लोक हैं संस्कृत की भी कोई टीका नहीं) फिर भी यह "कवि कलिन्द" आज (उस सागर के पार) जाने को तयार होगया है। (भरोसा केवल यह है) कि सुरतरु (पारिजात वृक्ष) की छाया में हूँ, और उससे यह आशीर्वाद चाहता हूँ कि अहो ! विद्वान् अहोबल (मेरा) बल विस्तार करें ताकि मैं उनके पारिजात की टीका लिख सकूँ । इत्यलम् ।

उपेत्य नाना विषयान्नितस्तः यदत्र नासीत्तु चकार संग्रहः ।
मलिन्दवत्तच्च कलिन्दनामकस्तनोति टीकामिह मञ्जु-माधवीम् ॥६॥

इस्ततः—इधर-उधर से नाना (भाँति २ के) विषयों को लेकर जो इस (पारिजातः) में नहीं था (वह) भी संग्रह किया है और भौंरे की तरह से 'कलिन्द' नामक कवि, इस पारिजात की मनोहर "माधवी" टीका को विस्तार पूर्वक रचता है ।

आश्विन शुक्ला ६
(नव-दुर्गा)
सम्वत् १९९७

"कलिन्द"
साहित्यरत्न-सङ्गीतकला कोविद ।





भाष्यकार

श्री० कलिन्दजी "सङ्गीतकला कोविद"

करने के पश्चात् मैं—रम्भा, उर्वशी, मुदकरी (अप्सरा) तिलोत्तमा, नलिनी, घृताची तथा उस मेनका को भजता हूँ ।

सङ्गीतसागरमपारमनाश्रयं वै यातुं कलिन्दकविरद्य समुत्थितोऽयम् ।
च्छायाश्रितः सुरतरोर्वचनं ययाचे विद्वानहोबल अहो ! बलमातनोतु ॥ ५ ॥

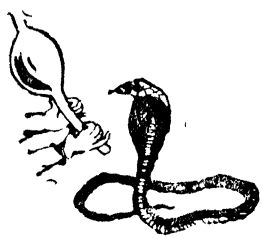
सङ्गीत का सागर (समुद्र) अपार है, फिर किसी का आश्रय नहीं है। (भाव यह है कि मूल श्लोक हैं संस्कृत की भी कोई टीका नहीं) फिर भी यह "कवि कलिन्द" आज (उस सागर के पार) जाने को तयार होगया है । (भरोसा केवल यह है) कि सुरतरु (पारिजात वृक्ष) की छाया में हूँ, और उससे यह आशीर्बाद चाहता हूँ कि अहो ! विद्वान् अहोबल (मेरा) बल विस्तार करें ताकि मैं उनके पारिजात की टीका लिख सकूँ । इत्यलम् ।

उपेत्य नाना विषयान्नितस्तः यदत्र नासीत्तु चकार संग्रहः ।
मलिन्दवत्तच्च कलिन्दनामकस्तनोति टीकामिह मञ्जु-माधवीम् ॥६॥

इस्ततः—इधर-उधर से नाना (भाँति २ के) विषयों को लेकर जो इस (पारिजातः) में नहीं था (वह) भी संग्रह किया है और भौंरे की तरह से 'कलिन्द' नामक कवि, इस पारिजात की मनोहर "माधवी" टीका को विस्तार पूर्वक रचता है ।

आश्विन शुक्ला ६
(नव-दुर्गा)
सम्वत् १९९७

"कलिन्द"
साहित्यरत्न-सङ्गीतकला कोविद ।





भाष्यकार

श्री० कलिन्दजी "सङ्गीतकला कोविद"

प्रकाशक का वक्तव्य !



गत वर्ष से 'सङ्गीत' मासिक के द्वारा इस ग्रन्थ का विज्ञापन दिया जा रहा था, जिसके फल-स्वरूप अनेकों सङ्गीत जिज्ञासुओं के द्वारा इस (पारिजातः) ग्रन्थ की टीका प्रकाशित करने के लिये मुझे यथेष्ट प्रोत्साहन मिला।

समय का एक बड़ा भाग तो इसके टीकाकार की खोज में ही व्यतीत हो गया, मैं चाहता था कि इस ग्रन्थ की टीका ऐसे विद्वान् के द्वारा होनी चाहिये जो संस्कृत का पण्डित होने के साथ ही साथ सङ्गीतज्ञ भी हो ! आरम्भ में एक पण्डित जी ने (जो सङ्गीत से भी थोड़ा सा प्रेम रखते थे) यह पुस्तक हाथ में लेली किन्तु, कुछ ही दिनों के बाद पण्डितजी इसे वापिस दे गये ! शायद वे इसके श्लोकों का अर्थ समझने में समर्थ न हो सके। सम्भव है 'गधहीनावरोहः' इत्यादि। श्लोकों ने उन्हे 'गधा' और 'गधही' के चक्कर में डाल दिया हो। अस्तु !

सौभाग्य से एक दिन कविवर "कलिन्द जी" से साक्षात् हुआ, आपसे मैंने इसकी टीका की बाबत कहा तो आपने साहस पूर्ण शब्दों में मुझे आश्वासन दिया और २ मास के कठिन परिश्रम के बाद टीका तैयार करके भेज दी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाष्यकार कलिन्द जी ने अत्यन्त परिश्रम और सावधानी से यह टीका लिखी है, आप संस्कृत के विद्वान् होने के साथ ही साथ सङ्गीत कला के एक छिपे हुए गुणी हैं, आपने बहुत से सङ्गीत संस्कृत ग्रन्थों का अवलोकन किया है और सङ्गीत कला की खोज में आप बराबर प्रयत्न शील रहते हैं। जिसका प्रमाण प्रस्तुत ग्रन्थ की टिप्पणियाँ भली प्रकार दे रही हैं।

हां तो, कलिन्द जी ने टीका तैयार करके भेज दी, इधर युद्ध के बादलों की गड़गड़ाहट ज़ोर पकड़ती गई, जिसके फल-स्वरूप कागज़ और छपाई के सामान के दाम एक दम बढ़ गये, कुछ दिन इस आशा में निकल गये कि शायद कागज का भाव ठिकाने पर आ जाय, किन्तु भाव बढ़ता ही गया। इधर जो ग्राहक आर्डर दे चुके थे उनके "रिमाइण्डर" आने लगे। किसी-किसी सङ्गीत प्रेमी के तो ४-४ पत्र आगये। उनकी उत्सुकता से विवश होकर कागज़ के इस अकाल में ही इसका प्रकाशन करना पड़ा। अस्तु !

सङ्गीत के वे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ, जिनमें भारतीय सङ्गीत का खज़ाना भरा हुआ है, अँधेरे में पड़े हुये विलीन होते जा रहे हैं। उनमें से कई एक तो अप्राप्य भी हो गये हैं! भारतीय सङ्गीत की उन्नति के इस युग में जब कि सङ्गीत संसार द्रुत गति से आगे बढ़ रहा है, इसकी आवश्यकता है कि हम अपनी प्राचीन "निधि" को नष्ट न होने दें और फिर से उसे चमकाने का प्रयत्न करें।

"सङ्गीत कार्यालय" ने इन प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन का कार्य आरम्भ कर दिया है, सङ्गीत-पारिजातः उनमें पहिला ग्रन्थ है, यदि सङ्गीत प्रेमियों ने इसे अपना कर मेरा उत्साह बढ़ाया तो शीघ्र ही "सङ्गीतरत्नाकर"—"नादविनोद" "अभिनव रागमन्जरी" आदि ग्रन्थ भी टीका सहित प्रकाशित किये जायँगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ ५०० श्लोकों में समाप्त हुआ है। मोटे टाइप (ग्रेट पाइका) में जो श्लोक दिये गये हैं वे मूल पुस्तक (पारिजातः) के हैं और छोटे टाइप (पाइका) में जो श्लोक हैं वे टिप्पणी के रूप में अन्य ग्रन्थों से उद्धृत किये हुये हैं।

इस ग्रन्थ की "प्रेस-कापी" तैयार करने में मुझे ब्रह्मचारी श्री० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज से जो सहायता मिली है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

अन्त में, सङ्गीत प्रेमियों से यही निवेदन है कि वे इसे आद्योपान्त पढ़ें और जो त्रुटियां दृष्टिगोचर हों, उनसे मुझे सूचित करदें जिससे आगामी संस्करण में सुधार हो सके।

हाथरस
जन्माष्टमी १९९८

विनीति—
प्रभूलाल गर्ग

❋ सङ्गीत पारिजातः ❋

(भाषा भाष्य सङ्कलितः)

मङ्गलाचरणम् ।

छन्दोमयं गरुत्मन्तमारुढं सत्यया सह ।
स्तूयमानं दिवौकोभिः पारिजातहरिं भजे ॥ १ ॥

'सङ्गीत शास्त्र' की दृष्टि से यह (सङ्गीत पारिजात) प्रमाणित ग्रन्थ है और 'सङ्गीत रत्नाकर' 'सङ्गीत मञ्जरी' 'सङ्गीत कल्पद्रुम' 'नाट्य शास्त्र' 'राग विबोध' नारद संहिता आदि ग्रन्थों की भाँति गण्य मान समझा जाता है अपितु काव्यग्रन्थ की दृष्टि से भी उसी उच्च कोटि में निर्धारित है। अतः इसके ग्रन्थकार श्री पण्डित प्रवर अहोबल शास्त्री प्रथम श्लोक में नमस्क्रिया रूप में मङ्गला चरण करते हैं।

भावार्थ—छन्दोमय उस गरीयस वैदिक वृत्त पर गायत्री के साथ विराज मान देव वृन्द द्वारा वन्दित उन पारिजात भगवान को मैं भजता हूँ।

पारिजात शब्द को सार्थक करते हुये कहते हैं—

सङ्गीतपारिजातोऽयं सर्वकामप्रदो नृणाम् ।
अहोबलेन विदुषा क्रियते सर्वसिद्धये ॥ २ ॥

मनुष्यों की सर्व मनोकामनाओं को देने वाला यह संगीत पारिजातः ग्रन्थ सर्व सिद्धि के लिये अहोबल पंडित द्वारा निर्माण किया जाता है ॥ २ ॥

सङ्गीतं वैदिकैर्वाक्यैर्बोधितं ब्राह्मणाः सदा ।
कृत्वैहिकं तथा मोक्षं प्राप्नुवन्ति त्वरान्विताः ॥ ३ ॥

वेद वाक्यों से समझाये हुए इस संगीत को उपयोग में लाते हुये ब्राह्मण अर्थात् मुमुक्ष जन इस लोक के तथा परलोक के मोक्ष सुख को अति शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

संगीत में मोक्ष को प्रमाण रूप से कथन कहते हैं—

अग्निहोत्रं यथाकार्य्यं गानकार्य्यं तथैव हि ।
वेदोक्तत्वात् स्मृतिप्रोक्तकर्त्तव्यत्वान्मनीषिभिः ॥ ४ ॥

आर्यवर्त्त सदैव पूर्व से ही अग्निहोत्र (यज्ञ) प्रधान देश रहा है, यहां के निवासी यज्ञ द्वारा ही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, चतुष्टय को प्राप्त करते रहे हैं। संगीत की भी उसी कोटि में गणना करते हुये कहते हैं "जैसा अग्निहोत्र कार्य्य वेदों के

कथन से, शास्त्रों के प्रमाण से प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुषों के द्वारा "सङ्गीत" भी कर्तव्य बताया गया है। जैसेः—

सामगानाद्रुतं विष्णुः प्रसीदत्यमराधिपः ।
न तथा यज्ञदानाद्यैः सत्यमेतन्महामुने ॥ (ना० सं०)

हे महामुने! देवताओं के स्वामी विष्णु भगवान् 'सामगान' द्वारा जितनी शीघ्रता से प्रसन्न होते हैं, वैसे यज्ञ-दानादि द्वारा भी नहीं होते।

विष्णुनामानि पुण्यानि सुस्वरैरन्वितानि चेत् ।
भवन्ति सामतुल्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः ॥ ५ ॥

विष्णु भगवान् के पवित्र नाम यदि सुन्दर स्वरों सहित विद्वान् लोगों द्वारा गायन किये जायें तो वह भी सामवेद की ऋचाओं के समान ही (फलद) होते हैं। भागवत में कहा है—

तद्वा विसर्गो [illegible] यस्मिन्प्रतिश्लोक मवद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥
(स्कं० २, अ० ५)

भले ही वह व्याकरण से अशुद्ध हो, पिङ्गल के नियम के विरुद्ध हो, किन्तु उस छन्द में भगवान् अनन्त का नाम सङ्गीत के मधुर स्वरों में गान किया गया हो तो सज्जन उसे बड़ी श्रद्धा से सुनते तथा (उच्चकोटि का) गिनते हैं।

स्वाश्रया मोहिनी माया या तया संवृताश्च ये ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाः स्युः सङ्गीतोत्थ-सुखस्पृहाः ॥ ६ ॥

किसी के आधीन न रहकर अपने ही आश्रय में रहने वाली तथा सबको मोहित करने वाली जो माया (प्रकृति देवी) है, उसके द्वारा ब्रह्मा विष्णु महेशादि देवता सब घिरे रहते हैं और उसका प्रधान गुण जो सङ्गीत है उससे निकले हुए सुख की इच्छा बनाए रखते हैं ॥ ६ ॥ इस छन्द में प्रकृति के शासन में सङ्गीत की महत्ता और व्यापकता दिखाई है। जैसे—

खगाः भृङ्गाः पतङ्गाश्च कुरङ्गाद्योऽपिजन्तवः ।
सर्वे एव प्रगीयन्ते गीतव्याप्तिर्दिगन्तरे ॥ (नारद संहिता)

चिड़ियाँ, भौंरे, पतंगे, हिरण आदि प्रत्येक जानवर गाता है। अतः सङ्गीत सर्व दिशाओं में व्याप्त है, यह सिद्ध होता है।

ऐहिकामुष्मिके त्यक्त्वा देवर्षिर्नारदः सदा ।
ब्रह्मानन्दोऽपि वीणायां वादने नियतोऽभवत् ॥ ७ ॥

इस लोक के तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की परवाह छोड़कर ब्रह्मानन्द में निरत रहने वाले देवर्षि नारद अपनी वीणा बजाते हुए संगीत रूपी आनन्दमें संलग्न होगये ॥७॥ इस छन्दमें भी 'नाद-ब्रह्मः' या 'स्वरः ईश्वरः' की समानता

का निरूपण किया है—'वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः । तालज्ञश्चऽप्रयासेन मोक्षमार्गं सगच्छति ॥" अर्थात् वीणा बजाने के तत्व को समझने वाला श्रुतियों और स्वरों की जाति भेद-ज्ञान में निपुण तथा ताल के मात्रा-काल को जानने वाला पुरुष बिना ही (योगादि) साधना परिश्रम के मोक्ष मार्ग में जाता है (ब्रह्म को प्राप्त होता है)। रसिक शिरोमणि कविवर बिहारी जी ने भी अपनी सतसई में ठीक इसी छन्द का अनुवाद यों किया है—"तन्त्री नाद कवित्त्व रस, सरस राग रतिरङ्ग । अन बूढ़े बूढ़े तिरे जे बूढ़े सब अङ्ग ॥" यथाः—

दैत्यसंहारिणी दुर्गा सङ्गीतेऽभिरता सदा ।
मतङ्गकश्यपावाप्तां सङ्गीताभिरुची मुनी ॥ ८ ॥

राक्षसों का संहार करने वाली भगवती दुर्गा सङ्गीत में ही सदैव निमग्न रहती हैं, मारकण्डेय पुराण में आया है "वीरवाग्भिः प्रगायन्ती सा ::विरार्मादिवौकसाम् । स्तोकाऽग्रे स्तुन्वतां तत्र चण्डिका ::::::॥" अर्थात् वहां देवताओं के स्तुति करते हुए समूह के सामने वह चण्डिकादेवी मृतक पुरुष की खोपड़ी के ऊपर ताल लगाती हुई वीरों की भाषा में गाती हुई, प्रकट हुई ।

मतङ्ग और कश्यप यह दोनों मुनि प्रवर सङ्गीत में अभिरुचि रखने वाले हुए हैं पुराणों में जिनकी सङ्गीतज्ञता की कथाएँ विद्यमान हैं ।

कर्त्ता सङ्गीतशास्त्रस्य हनूमांश्च महाकपिः ।
शार्दूलकोहलावेतौ सङ्गीतग्रन्थकारिणौ ॥ ९ ॥

सङ्गीत शास्त्रीय ग्रन्थ के लिखने वाले (सङ्गीत मञ्जरी को लोग इसी हनुमत मत की बताते हैं) वह हनुमान् जी वानर श्रेष्ठ हुये हैं । शार्दूल नामक सङ्गीताचार्य्य तथा कोहलजी (जिन्हें 'कोलाचल' या 'कोलाचार्य्य' भी कहते हैं) यह दोनों भी सङ्गीत शास्त्र के ग्रन्थ लेखक हुये हैं (कुछ लोगों का मत है 'शार्दूल जी' रीवां के थे तथा 'कोलाचल जी' दतिया के रहने वाले थे)

कम्बलाश्वतरौ वायुर्हाहा हूहूश्च रावणः ।
रम्भा वाणसुता चोषा फाल्गुनः फणिनां पतिः ॥ १० ॥

कम्बलाचार्य्य तथा अश्वतर जी वायु नामक ऋषि और हाहा तथा हूहू नामक गन्धर्व जिनका महाभारत में कई बार प्रसङ्ग आया है, लंकेश्वर रावण रम्भा नामक अप्सरा वाणासुर की पुत्री ऊषा जो भागवत में वीणावादन एवं गायन में निपुण कही है, फाल्गुनाचार्य्य और सर्पाऽधिराज शेषनाग जी भी जो पिङ्गल सूत्र छन्दः शास्त्र के रचियता हैं, इस सङ्गीत के शास्त्रकार हुये हैं । (इन सब का दिग्दर्शन कराता हुआ पारिजात कार अपने ग्रन्थ से सम्बधित करता है)

इत्येतेऽन्येऽपि सङ्गीतशास्त्र व्याख्यानकारिणः ।
सङ्गीतपारिजाताख्यमहं कुर्वेऽनुसृत्य तान् ॥ ११ ॥

ये सब और इनके अतिरिक्त (अन्य) दूसरे भी सङ्गीत शास्त्र की व्याख्या (पुस्तकें) लिखने वाले सज्जनों का अनुसरण करके मैं (पं० अहोबल) इस सङ्गीत पारिजात नामक ग्रन्थ को लिखता हूँ।

दोलायां शायितो बालो रुदञ्चास्ते यदा क्वचित्।
तदा गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ॥ १२ ॥

देखिये! जब कहीं झूला में लिटाया हुआ बालक रोता है तब गीतों के अमृत को पीकर ही प्रसन्न हो जाता है, भाव यह है कि जब बालक रोता है तो उसकी मां यदि लोरियां गाने लगती है और उसे झुलाने लगती है तो वह चुप और प्रसन्न हो जाता है।

*मृगः सोऽपि तृणाहारो विचरन्नटवीं सदा।
लुब्धकादपि सङ्गीतं श्रुत्वा प्राणान्प्रयच्छति ॥ १३ ॥

वह हरिण भी जो घास पत्ती खाने वाला और सदैव जंगल में घूमने वाला है, व्याध से सङ्गीत सुनकर अपने प्राणों की आहुति दे देता है।

---

*जिस समय उस (हिरण) के शरीर में बाण घुस जाता है और वह पृथ्वी पर गिर पड़ता है तो प्रार्थना पूर्वक बहेलिए से कहने लगता है—

भूसा भरवादो खालखींच के भले ही आज।
अपनी आजीविका को मन्द मत होने दो?
माँस राँध-राँध भले खाइये शरीर चीर-
कानन सञ्चार भी स्वछन्द मत होने दो॥
धोने दो न? आँसुओं से मुख मृगियों को भले-
चार चौकड़ियों का प्रबन्ध मत होने दो!
किन्तु जबलों हैं प्राण पत्ती अस्थि-पिंजड़ में-
तबलों यह "वीण वाद्य बन्द मत होने दो"॥

उस क़ैदी नाग से भी कवि कहता है जो (बरुए के) एक पिटारे के अन्दर बन्द है:—

क्यों जी? काले-विषधर! फणिधर! मणिधर!
मणि छिनवाके बने क़ैदी हो पिटारी के।
रहे न स्वछन्द क्यों? पसन्द न स्वाधीनता की।
फन्द में पड़े हो पराधीनता हत्यारी के॥
भूखे सूखे बन्द हो "कलिन्द" कैसे मन्द बने।
दिये दुःख द्वन्द छल-छन्द ने मक्कारी के॥
होते लवलीन जो न, बीन की नवीनता में।
होते हीन ही, न, छीन भेष में भिखारी के॥

(भाष्यकार)

क्रुद्धो विषंवमन्सर्पः फणामान्दोलयन्मुहुः ।
गानं जाङ्गलिकाच्छ्रुत्वा हर्षोत्कर्षं प्रपद्यते ॥ १४ ॥

ज़हर उगलता हुआ क्रोधी सर्प, बार बार फण को इधर उधर हिलाता हुआ, जंगली कनफरे का गाना सुनकर मस्त तथा प्रसन्न हो जाता है।

देवस्य मानवो गानं वाद्यं नृत्यमतन्द्रितः ।
कुर्य्याद्विष्णोः प्रमादार्थमिति शास्त्रे प्रकीर्त्तितम ॥ १५ ॥

मनुष्यों द्वारा गायन, वादन, तथा नृत्य तल्लीनता से किया गया हो तो वह भगवान् विष्णु को प्रसन्न कर देता है, ऐसा ही शास्त्र में कहा गया है।

नाऽहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारदः ॥ १६ ॥

भगवान् विष्णु नारद जी से कहते हैं कि हे नारद ! न तो मैं वैकुण्ठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, अपितु मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं, मैं वहीं निवास करता हूँ।

(भगवद्भक्ति के साधन में गायन (संकीर्तन) कितना सहायक हो सकता है इस बात को प्रमाणित करते हुए कहते हैं।)

गायन सुभद्राणि रथाङ्ग पाणेर्जन्मानि कर्म्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थिकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥ १७ ॥

चक्र पाणि भगवान् भव्य ने जो अवतार इस लोक में धारण किये हैं और उन अवतारों के किए हुए कर्म्म-लीलायें जो उन्होंने की हैं उन लीलाओं के अनुकूल जो उनके नाम पड़े हैं, जैसे—मधु राक्षस को मारने से 'मधुसूदन', मुरासुर को हत करने से मुरारी, बाँसुरी बजाने से वंशीधर आदि उन नामों के सार्थक करने वाले गीत, अर्थात् वह गायन जिनमें किसी लीलाऽनुकूल नामों का तदर्थात्मक गुणानुवाद किया गया हो ऐसे गीतों का जो लोग गायन करते हैं, वह निःसंकोच भाव से बिना किसी को साथ लिए (असंग होकर) ही जहां चाहें वहाँ घूमें। किसी का उन्हें भय नहीं है। भाव यह है कि जो सङ्गीत सहित भगवद्गुण गान करते हैं, भगवान् की कृपा से उनकी चेष्टा तथा साहस बढ़ जाता है और वह निर्भय हो जाते हैं अर्थात् वह प्रेमोन्मत्तावस्था में प्रेमी पागल बन जाते हैं। सच्चे परम हंस उन्हें ही कहना चाहिये जो तमाम राग-द्वेष के लौकिक बन्धनों से छूटकर निःसङ्कोच सच्चा सुख प्राप्त करते हैं। इस छन्द से यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि सङ्गीत द्वारा तो उन्माद (पागल-पन) मिलेगा ! अरे भाई, सङ्गीत के द्वारा संसार का सत्यानुभव प्राप्त होगा और भगवद्गुण गान के प्रभाव से वह संसार में रहता हुआ भी संसारी कार्य करता हुआ "पद्मपत्रमिवाम्भसा" गीता के इस कथनानुसार जीवन्मुक्त बनेगा,

'विचरेदसङ्गः' वह किसी की सहायता के बिना ही संसारी झंझटों से पार होता हुआ अन्त में मोक्ष प्राप्त करेगा।

वीणावादनतत्वज्ञः श्रुतिजाति-विशारदः ।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं नियच्छति ॥ १८ ॥

वीणा बजाने के तत्व को जानने वाला, श्रुतियों तथा स्वरों की जाति-भेद (दूरी) प्रत्येक स्वर में बराबर श्रुतियाँ क्यों नहीं हैं? कोई ४ का तो कोई ३ का कोई दो ही का क्यों है? श्रुतियों का और स्वरों तथा नाद लहरों का क्या सम्बन्ध है? ७ स्वर प्राकृतिक व्योमज (आसमानी) कहलाते हैं, उनमें ५ कोमल किसने किए? और कैसे किये? 'स' 'प' (षडज पञ्चम) यह दो अचल ही क्यों रहे? 'गात्रवीणा' के किस किस अङ्ग पर्दे या (सुन्दरी) सारों पर कौन कौन स्वर निकलता है? षडज से लेकर निषाद पर्य्यन्त स्वरों के नामों के अर्थ क्या हैं? और वह प्रत्येक नाम किस किस अर्थ या भाव का द्योतक है? इस समस्त सार को समझने वाला 'श्रुतिजाति विशारद' और ताल के 'काल माप' मात्रा परिमाण को जानने वाला बिना ही परिश्रम के मोक्ष मार्ग में जाता है।

वेदे तथैव सम्प्रोक्तं गायेतां ब्राह्मणाविति ।
क्वणयन्तावुभौ वीणामश्वमेधेऽतिसुस्वरम् ॥ १९ ॥

वेद में भी अश्वमेध यज्ञ प्रकरण के अन्त में दो ब्राह्मणों से किसी दीक्षित ने कहा है—'हे ब्राह्मणो! तुम दोनों गाओ! और इस अश्वमेध यज्ञ में अपने नितान्त मधुर स्वर के साथ अपनी वीणाएँ बजाओ!' अपने स्वरों में वीणा की झंकृति को मिलाओ!

गीतवादित्रनृत्यानां त्रयं सङ्गीतमुच्यते ।
गानस्याऽत्र प्रधानत्वात्तच्छङ्गीतमितीरितम् ॥ २० ॥

गायन, वादन तथा नर्त्तन इन तीनों को सङ्गीत कहते हैं या सङ्गीत के यह तीनों अङ्ग माने गए हैं। केवल 'सङ्गीत' कह देने मात्र से उपरोक्त तीनों ही समझे जाते हैं, किन्तु केवल 'वादन' या केवल 'नर्त्तन' कहने भर से, पूरा सङ्गीत नहीं माना जाता? कारण यह है—कि इन तीनों में 'गायन' प्रधान होने से तीनों को 'सङ्गीत' कहा है।

मार्गदेशीयभेदेन द्वेधा सङ्गीतमुच्यते ।
वेधा मार्गाख्यसङ्गीतं भरतायाब्रवीत्स्वयम् ॥ २१ ॥

मार्गी और देशी यह दो प्रकार का सङ्गीत कहा गया है, स्वयं ब्रह्माजी ने श्रीभरताचार्य्य को शुद्ध मार्गी सङ्गीत सिखाया था। (इन्हीं भरतजी ने नाटक तथा सङ्गीत शास्त्र का अपूर्व ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' लिखा है, भरत ३ हुए हैं, एकतो महर्षि

भरत जिन्हें जड़ भरत के नाम से घोषित करते हैं, जिनकी कथा भागवतादि कितने ही पुराणों में मिलती है, जो परमहंस के रूप में रहते थे राजा रहूगण ने जिन्हें कहार (धीवर) के अभाव में पकड़वाकर अपनी पालकी (पीनस) में लगाया था और "*मोटा तो इतना है ? पर जल्दी नहीं चलता ?" ऐसा कह पैर की ठोकर मारी थी किन्तु जब उन्हें पहचाना तो क्षमा मांगी और उनके द्वारा ज्ञानोपदेश सुना और उन्हें गुरु बनाया था, दूसरे शकुन्तला के पुत्र दुष्यन्त से उत्पन्न जिनके नाम का यह भरत खण्ड 'शब्द' कीर्त्तन कर रहा है। जो बचपन में ही सिंह को भी अपने वशीभूत कर लेते थे। तीसरे प्रसिद्ध रामायण कालीन श्रीरामचन्द्र जी के भाई भरत। इनमें से नाट्यशास्त्र के लेखक प्रथम भरत हैं।

ब्रह्मणोऽधीत्य भरतः सङ्गीतं मार्गसंज्ञि तत् ।
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैः शम्भोरग्रे प्रयुक्तवान् ॥ २२ ॥

उस मार्गी नामक संगीत को ब्रह्माजी से भरत ने प्राप्त करके अप्सराओं तथा गन्धर्वों के द्वारा शिवजी के सामने प्रयोग किया (सुनाया)।

ततोऽपि ताण्डवं ज्ञात्वा लास्यं ज्ञात्वोमयोदितम् ।
तत्सर्वं शिष्यसंघेभ्यः प्रोक्तवान्भरतो मुनिः ॥ २३ ॥

शिवजी को सुनाने के बाद भरतमुनि को और भी लाभ हुआ, शङ्कर ने उनका सङ्गीत सुनकर उन्हें ताण्डव-नृत्य सिखाया जो उस समय तक केवल शङ्कर ही जानते थे, (पुरुष नृत्य को भी ताण्डव कहते हैं) पार्वती ने प्रसन्न हो भरत को लास्य-नृत्य (ज़नाना) सिखाया, यह दोनों प्रकार का नृत्य तथा सङ्गीत सम्बन्धी अन्यान्य बातें सीखकर भरतमुनि सम्पन्न हो गए और अपने शिष्यों के समूहों को भी वह सब सिखा दिया।

तदेशीयमिति प्राहुः सङ्गीतं देशभेदतः ।
तद्द्वयं सुस्वरैस्तानैरुपेतं सुखमाधनम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मा से लेकर भरत के शिष्य प्रशिष्यों तक तो मार्गी सङ्गीत बताया, और जिन सङ्गीताचार्य्यों का नाम श्लोक नं० ६ से ११ तक बता चुके हैं वह सब मार्गी सङ्गीत के व्याख्याता हुए। शंकर तथा ब्रह्मा की सङ्गीतज्ञता में मतभेद है, 'सङ्गीत सोपान' ग्रन्थ का कथन है कि 'आद्याचार्य्योऽभवद्रुद्रः सङ्गीतस्य महेश्वरः। यश्चाऽऽदायैव तान्सप्त स्वरान्प्रकृतिसम्भवान् ॥ चकार तेषु पञ्चाऽसौ विकृताः पस वर्जिता। ध्यानयोगसमाधिस्थो नादशास्त्रमरीरचत् ॥ पश्चान्निद्रापगामाग्न ब्रह्माणं

*राजा रहूगण शिकार खेलने के लिये (मनोरञ्जनार्थ) जंगल में गए थे। मार्ग में उनकी पालकी के चार कहारों में से एक को सर्प ने डस लिया। महर्षि उसी बियावान में तपश्चर्य्या कर रहे थे, तो उस कहार की पूर्ति में इन्हें ही पकड़ कर जोत दिया गया ?

भैरवः शिवः।" अर्थात्—सङ्गीत के आदि आचार्य्य महेश्वर रुद्र हुए, जिन्होंने सात स्वर प्राकृतिक (नीव्र) जो आकाश सम्भव कहलाते हैं, लेकर उनमें 'प' और 'स' (षडज-पञ्चम) २ छोड़ शेष ५ रि. ग. म. ध. नि. को कोमल किया, इसके बाद ध्यान, योग, समाधि में रत रहने वाले शङ्कर ने इस नाद (सङ्गीत) शास्त्र को बनाया। पश्चात् वह भैरव, भयानक मूर्ति वाले शिव ब्रह्मा को सिखाया और "सङ्गीत समय-सार" के लेखानुसार ब्रह्मा ने शिव को सिखाया है। यथा—"शास्त्रं सङ्गीतसम्बद्धं चकार विधिवद्विधिः। प्रोक्तवान्शङ्कराऽग्रेऽसौ लयाऽऽलापवितानितम्॥" अर्थात्—सङ्गीत सम्बन्धी शास्त्र विधि-पूर्वक ब्रह्मा ने लिखा, फिर उन्होंने शिव के सामने वह लय, आलाप एवं बड़ी २ तानों से विभूषित सङ्गीत सुनाया (सिखाया) 'प्रोक्तवान्' शब्द का अर्थ 'सुनाया' ही लिया जाय तो आदि निर्माता शिव ही सिद्ध होते हैं। प्र—प्रकर्षरूपेणोक्तं कथितं, ज़्यादा समझा २ कर कहा सिखाया सिद्ध होता है, अस्तु।

मार्गी का क्रम समाप्त कर आगे देशी का निरूपण करते हैं—

"देशी गायन वह कहलाता है जो देशोंमें प्रथक् रीतिसे कुछ परिवर्त्तन कर रुचि अनुकूल गाया जाय। जैसे—टोड़ी-जौनपुरी, कजली, मिर्ज़ापुरी, मुल्तानी-धनाश्री, सिन्धु-भैरवी, माँड़ इत्यादि २।

देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरञ्जकम्।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते॥ (रा० वि०)

और मार्गी—

मार्गी देशीति तद्द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।
यो मार्गितो विरिञ्चाद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः।
मार्गी देशी विभागेन सङ्गीतं द्विविधं मतम्॥ (रा० वि०)

"तद् द्वयं सुस्वरै०" वह दोनों ही (मार्गी देशी) अच्छे श्रुति मधुर स्वरों से तथा सुन्दर तानों के साथ गाए हुए सुख के साधन होते हैं, अर्थात्—सुखदायक हैं।

यहाँ यह दो ही प्रकार का सङ्गीत बताया है, किन्तु मतान्तर में ३ प्रकार का कहा है। यथा—"गीयन्ते च त्रिधा रागाः मार्गी देशी च मिश्रिताः।" मिश्रित राग वही हैं, जैसे—'हमीर कल्याण' 'श्याम कल्याण' 'ईमन कल्याण' 'नट कामोद' 'वागीश्वरी कान्हड़ा' इत्यादि एक में दो के स्वर मिले हों। इसी भांति 'आश्रय-राग' भी एक दूसरे से आश्रित कहलाते हैं। संकीर्ण कहलाने वाले राग वह हैं जो 'गीत परिवार' के अतिरिक्त हैं। जैसे दुर्गा, बहार, बरवा, सर्पदा (स्वरप्रदा), जङ्गला इत्यादि। कुछ लोग इन्हें पीछे के निर्माणित बताते हैं।

बिनोद्देशं बिना लक्ष्म परीक्षाश्च बिना क्वचित्।
शास्त्रं य वर्त्तते यस्मात्तस्मात्ताः प्रब्रवीम्यहम्॥ २५॥

बिना उद्देश के और बिना लक्ष्य या लक्षणों के, परीक्षा के बिना कहीं कोई शास्त्र नहीं होता। अतएव मैं उन सब बातों को कहता हूं।

अर्थात्—शास्त्रों में जो कुछ भी कहा जाता है वह पूर्ण अनुभव होने पर, ठीक लक्षण मिलने पर और अनेकों बार परीक्षित हो जाने पर वह बात लिखी जाती है, तो कहीं भी सन्देह करने का अवसर नहीं रह जाता। तर्क की तराजू पर तुल के सदियों की अनुभूत बातें शास्त्रों में रहती हैं। अतएव शास्त्रोक्ति सही समझी जानी हैं। मैं भी इसी हेतु उन बातों का निरूपण करता हूँ। यही भाव उपरोक्त छन्द का है।

पाञ्चभौतिकदेहेऽस्मिन्नूर्ध्वनाड्यस्तनः परम् ।
तिर्य्यङ्नाड्यश्च स्थानानि चक्राण्युक्तानि तत्र तु ॥ २६ ॥

पाँच तत्वों से अर्थात्-पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश द्वारा बने हुये इस शरीर में (कुछ) ऊर्द्ध्व अर्थात् ऊपर की नाड़ियां होती हैं, (ततः परम्) उनके अतिरिक्त कुछ नाड़ियां नीचे की तथा उन नाड़ियों के स्थान और उनके अनेकों चक्र वहाँ (आयुर्वेद में) बताये गये हैं।

"राग विबोध" में इसे और भी अच्छी तरह समझाया है—जैसेः—

हृद्यूर्ध्वनाडिकास्थद्वाविंशत्यणुतिरोजनाडीषु ।
तावन्तः श्रुतिसंज्ञाः स्युर्नादाः परपरोच्चोच्चा ॥ (रा० वि०)

अर्थात्—हृदय के ऊपर की जो (सुषुम्ना) नाड़ी है, उसके ऊपर की दो नाड़ियां इडा, पिङ्गला नाम की हैं। उनसे मिली हुईं सूक्ष्म-अणु मात्र नीचे की ओर आई हुईं तिरछी, छेद वाली २२ नाड़ी (नालियाँ) हैं। उनसे उतनी ही अर्थात्-२२ नाद-श्रुतियां वायु के आघातों से व्यक्त होती हैं, और वे श्रुतियाँ परस्पर एक दूसरी से उच्च होती हैं। क्रमशः दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी इत्यादि। वायु के सोपान (सीढ़ियों) की परम्परा के समान उन छिद्र युक्त २२ नलिकाओं की आरोहणात्मक स्थिति है।

नादोत्पत्तिः स्वरव्यक्तिस्तासु जातिव्यवस्थितिः ।
स्वरग्रन्थिनिर्विशुद्धानां विकृतानाश्च निर्णयः ॥ २७ ॥

उन नाड़ियों से नाद की उत्पत्ति, स्वरों का स्पष्टीकरण, प्रादुर्भाव और उन स्वरों की उन नाड़ियों में जाति व्यवस्था, अर्थात् उत्पत्ति-भेद-वर्णन, स्वरों का निवास निःसरण, तीव्र और कोमल स्वरों का निर्णय।

स्वरो वादी च सम्वादी चानुवादी विवाद्यपि ।
कुलानि जातयो वर्णाः द्वीपानि मुनिदेवते ॥ २८ ॥

रागों में लगने वाले, वादी सम्वादी, अनुवादी, विवादी इन चार प्रकार के स्वरों के कुल (गोत्र) उनकी जातियां, उनके वर्ण रङ्ग (चतुवर्ण) स्वरों के रहने के द्वीप (टापू) और उनके देवता तथा मुनि।

छन्दान्सि च रसा ह्येते ग्रामास्तु मूर्च्छनास्ततः ।
प्रस्तारिताश्च कूटाः स्युः खण्डमेरुस्ततः परम् ॥ २९ ॥

छन्दः शास्त्र (पिङ्गल) के मात्रिक तथा वार्णिक (गणात्मक) विविध छन्द साहित्य के वर्णित नव रस, यह सब तथा-३ ग्राम (षड्ज, मध्य, गान्धार) और उनकी २१ मूर्च्छनाएँ, स्वर प्रस्तार अथवा-आलाप-प्रस्तार (राग के स्वरों का फैलाना) कूट-वर्णन (सरल और कूट तानें) और खण्ड मेरु।

नष्टोद्दिष्टे च तानानां चतुर्णां वर्णलक्षणम्।
नानाविधा अलंकाराः जातीनां लक्षणान्यपि ॥ ३० ॥

नष्टोद्दिष्ट (आदि अन्त) और उसके भरने की रीति, तानों के नष्टोद्दिष्ट में विन्यास, चार वर्ण स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग अथवा—

"स्थाय्यारोह्यवरोही च सञ्चारीत्यथलक्षणम्"

चतुर्वर्ण के लक्षण, अनेकों प्रकार के अलङ्कार, जातियों के भेद और लक्षण ॥

अंशस्वराः कपालानि कम्बलं गमकास्तथा।
स्वरस्थानानि सर्वे ते मेलाः पञ्चापि गीतयः ॥ ३१ ॥

अंश नामक स्वर (राग में अंश स्वर वह होता है, जिस पर राग का विस्तार तथा मूर्च्छना, अथवा जिससे ठाठ या मेल का प्रकाश होता है, प्रायः अंश स्वर ही वादी भी हुआ करता है) कपाल, कम्बल, गमक, स्वरों के स्थान और वे सब मेल (थाट) पाँचो प्रकार के गीत।

नामधेयानि रागाणां लक्षणान्यपि सर्वशः।
प्रबन्धलक्षणं चात्र लक्ष्म वाग्गेयकारिणः ॥ ३२ ॥
गायनस्य गुणा दोषा इति काण्डेऽर्थसंग्रहः ॥ ३३ ॥

सब रागों के प्रथक् २ नाम और उनके सम्पूर्ण लक्षण, प्रबन्ध (बन्दिशें) तथा उनके लक्षण, वाणी द्वारा गायन योग्य करने वाले के चिन्ह और लक्षण अथवा 'वाग्गीतत्वकर्त्र' आलाप-चिन्ह और लक्षण और दोष, इस काण्ड में इन अर्थों का संग्रह किया है।

॥ इत्युद्देशः [प्रकरणः] ॥

ऊर्द्ध्वस्थितत्रिनाडीषु नाड्यस्तिर्य्यग्गृहदि स्थिताः ।
द्वाविंशतिमिताश्चेति प्राचीना मुनयोऽब्रुवन् ॥ ३४ ॥

हृदय के ऊपरी भाग में तीन नाड़ियाँ (जिनका वर्णन पहले हो चुका है) हैं। उनमें ही सम्मिलित तिरछी गई हुईं २२ नाड़ियाँ और हैं, ऐसा पुराने मुनियों ने कहा है।

पूर्वं नाभिस्ततो हृत् स्यात् पश्चात्कण्ठः प्रकीर्त्तितः ।
अथ मूर्द्धा तथास्यं स्यादिति स्थानानि मेनिरे ॥ ३५ ॥

पहिले नाभि, फिर हृदय, फिर कण्ठ, मस्तक, मुख, यह पांच स्थान माने गये हैं। पाणिनीय मत से आठ प्रकार के स्थान माने गये हैं—

"अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा ।
जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च ॥" (पाणिनीय शिक्षा)

अर्थात्—१ हृदय, २-कण्ठ, ३-मूर्द्धा, ४-जिह्वामूल, ५-दांत, ६-नाक, ७-होठ ८-तालु,

हृद्यनाहतचक्रेऽस्मिन्ननिलाऽनलयोगतः ।
आहतस्तत्र नादः स्यादिति शास्त्रे प्रकीर्त्तितम् ॥ ३६ ॥

हृदय स्थित अनाहत चक्र में वायु और अग्नि के संयोग से आहत नाद उत्पन्न होता है। इस प्रकार शास्त्र में कहा गया है। आहत तथा अनाहत दो प्रकार का नाद बताया गया है—

नादस्तु सद्विधः प्रोक्तः पूर्वनादस्त्वनाहतः ।
कर्णरन्ध्रे तथा नद्यां निर्झरेऽपि भवेच्चयः ॥

अर्थात्—दो प्रकार का नाद होता है पहला तो अनाहत नाद, जो कान के छेदों में अँगुली लगाने पर सुनाई देता है, तथा निर्झर (झरना) एवं नदी की निरन्तर ध्वनि को भी नाद कहते हैं, क्योंकि 'णद' अव्यक्ते शब्दे' धातुः—'णद' धातु अव्यक्त शब्द में होती है, 'णद' धातु में 'णोनः' इस सूत्र से 'ण' का 'न' होजाता है। अतएव 'णदी' की 'नदी' और 'णाद' का 'नाद' हुआ है।

"आहतस्तु द्वितीयोऽसौ वाद्येष्वाघातकर्म्मणा ।
तेन गीतस्वरोत्पत्तिः स नादो जयते भुवि ॥ (नारद संहिता)

दूसरा आहत नाद वह है जो वाद्य यन्त्रों पर आघात करने से प्रकट होता है, और उसी से संगीत के स्वरों की उत्पत्ति होती है। अतः पृथ्वी पर ऐसे नाद की सदा जय बनी रहे। रत्नाकर में नाद शब्द की परिभाषा इस प्रकार है—

नाभेरूर्ध्वहृदिस्थानान्मारुतः प्राणसंज्ञकः ।
नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्त्तितः ॥ (सं० र०)

अर्थात्—नाभी के ऊपर हृदयस्थान से प्राण नामक वायु ब्रह्मरन्ध्र में 'सोऽहम्' २

शब्द करता है। इस हेतु उस शब्द को 'नाद' कहते हैं।

वायु अग्नि के विषय में भी 'रागमाला' में बताया है कि—

अनिलाऽनलसकाशात्ते चाश्वध्वानाः सुराध्वनः।
नाना रूप धराऽऽघाताज्जायन्ते च स्वजातिते॥

अर्थात्—अग्नि वायु के द्वारा ही वे सात स्वर आकाश से उत्पन्न होते हैं, और वही अपने आप होने वाले (तीव्र) स्वर वाद्याघातों द्वारा नाना रूप धारण करने वाले बनते हैं। महर्षि पाणिनी जी ने भी कहा है:—

आत्मा बुध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥ (पाणिनीय शिक्षा)

अर्थात्—आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थों को प्राप्त होकर बोलने की इच्छा से मन से योग करता है। फिर मन शरीराग्नि को उत्तेजित करता है और वह अग्नि वायु को प्रेरणा करती है, तब मूल श्लोक में कहा हुआ "अनिलाऽनलयोगतः" नाद उत्पन्न होता है।

कण्ठे विशुद्धचक्रं स्यात् सहस्रारन्तु मूर्द्धनि।
मन्द्रमध्यमतारास्या भवेयुस्तेषु तु क्रमात्॥ ३७॥

कण्ठ में विशुद्ध नामक चक्र होता है और मस्तक में 'सहस्रार' नामक चक्र है। उनमें क्रमाऽनुसार-मन्द्र, मध्यम, तार यह होते हैं—

व्यवहारे त्वसौ त्रेधा हृदि मंद्रोऽभिधीयते।
कण्ठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः॥ (सं० रत्नाकर)

और वह व्यवहार में तीन प्रकार से होते हैं, १ हृदय में मन्द्र, २ कण्ठ में मध्य, ३ मस्तक में तार बताए हैं तथा उत्तरोत्तर दून में जाते हैं। इस पर सोमनाथ जी ने भी 'राग विबोध' में लिखा है—

"हृत्कण्ठमूर्धनादाः क्रमादमी मन्द्रमध्यताराख्याः।
द्विगुणा यथोत्तरं च श्रुतितां स्वरताञ्च वच्मि चैतेषाम्॥"

अर्थात्—हृदय का मन्द्रनाद, कण्ठका मध्यनाद, मस्तक का तारनाद, यह प्रत्येक दूसरे से द्विगुण हैं। मन्द्र से मध्य दूना मध्य से तार दूना, मन्द्र से मध्य के उच्चारण में दूना प्रयत्न होता है। यही ३ सप्तक होते हैं। 'संगीतरत्नाकर' में भी 'ते मन्द्रेमध्यताराख्य स्थान मेदात्त्रिधा मतः। कहा है—

श्रुतयः स्युः स्वराभिन्नाः श्रावणत्वेन हेतुना।
अहि कुण्डलवत्तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसम्मता॥ ३८॥

श्रुतियों का कारण 'श्रावणत्व' कहा है, अर्थात्—जो सुनी जा सकती है वह श्रुति कहलाती है। वीणा में तारों के नियत-सारों से किंचित भी इधर उधर अंगुली होने पर श्रुति दर्शन होता है। और अन्यान्य तार वाद्यों में भी। किन्तु वे (श्रुतियां) स्वरों से पृथक् नहीं होती, स्वर तथा श्रुति में भेद इतना ही है जितना कि

सर्प तथा उसकी कुण्डली में। सर्प को स्वर और कुण्डली को श्रुति जानना चाहिये, यही भेदोक्ति शास्त्र-सम्मत है। मतङ्ग जी ने भी श्रुति शब्द की व्याख्या यूं लिखी है, "श्रवणार्थस्य धातेः क्तिप्रत्यये च सुसंश्रिते। श्रुतिशब्दः प्रसाध्योऽयं शब्दज्ञैः कर्म-साधनैः॥" अर्थात्—'श्रू' धातु सुनने के अर्थ में है, व्याकरण के "स्त्रियांक्तिन्" सूत्र से 'क्ति' प्रत्यय करने पर श्रुति शब्द सिद्ध होता है। विश्वावसु ने लिखा है—"श्रवणेन्द्रियग्राह्यत्वाद ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत्।" अर्थात्—कान के ग्रहण करने से ही ध्वनि श्रुति कहलाती है।

"कणस्पर्शात्श्रुतिर्ज्ञेया स्थित्या सैवस्वरोच्यते" कण, स्पर्श, मीड़, सूत से श्रुति तथा उसपर ठहरने से वही स्वर कहलाता है।

सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः।
रागाः हेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव सम्मता॥ ३९॥

और वे सब श्रुतियां ही रागों में स्वर बन जाती हैं तथा इन सबके राग ही कारण रूप हैं। अतएव श्रुति ऐसी संज्ञा ही सम्मत है।

केशाग्रन्यवधानेन बह्व्योऽपि श्रुतयः श्रिताः।
वीणायाश्च तथा गात्रे सङ्गीतज्ञानिनां मते॥ ४०॥

सङ्गीतज्ञों के मत में-वीणा में तथा शरीर में भी 'केशाग्रव्यवधान' से यानी बाल की नोक के समान सूक्ष्म रूप से बहुत सी श्रुतियां रहती हैं। नारद जी ने कहा है—"दारवी गात्र वीणा च द्वे वीणे स्वरधारिके।" अर्थात्—लकड़ी की तथा शरीर की यह दो वीणायें स्वरों को धारण करने वाली हैं।

मध्ये पूर्वोत्तरावद्धवीणायां गात्र एव वा।
षड्जपञ्चमभावेन श्रुतीर्द्वाविंशतिं जगुः॥ ४१॥

प्रारम्भ से अन्त तक बंधी हुई (नियत पर्देवाली) वीणा के बीच में तथा शरीर में षड्ज और पञ्चम के भाव से अर्थात् स० प० इन दोनों में रहने वाली २२ श्रुतियां बताई हैं।

द्वाविंशतिश्रुतीनाञ्च व्यवहारप्रसिद्धये।
तासां नामानि वक्ष्येऽहं नारदीयानुसारतः॥ ४२॥

व्यवहार की प्रसिद्धि के लिये (ताकि स्वर प्रयोग में सुविधा हो) उन २२ श्रुतियों के नाम नारद के मतानुसार मैं कहता हूँ।

तीव्रा कुमुद्वती मन्दा छन्दोवत्यस्तु षड्जगाः।
दयावती तु रेङ्गेया रञ्जनी रक्तिकेत्यमू॥ ४३॥

१ तीव्रा, २ कुमुद्वती, ३ मन्दा, ४ छन्दोवती, यह श्रुतियाँ षड्ज में होती हैं। १ दयावती, २ रञ्जनी, ३ रक्तिका, यह ऋषभ में होती हैं।

रौद्री क्रोधेति गान्धारे वज्रिकाऽथ प्रसारिणी ।
प्रीतिश्च मार्जनीत्येता श्रुतयो मध्यमाश्रिताः ॥ ४४ ॥

१ रौद्री, २ क्रोधा, यह गान्धार की श्रुतियाँ, तथा १ वज्रिका, २ प्रसारिणी ३ प्रीति, ४ मार्जनी, यह मध्यम की श्रुतियां हैं।

क्षितीरक्ता च सन्दीपिन्यालापिन्यथ पञ्चमे ।
मदन्ती रोहिणी रम्येत्येतास्विस्रस्तु धैवते ॥ ४५ ॥

१ क्षिती, २ रक्ता, ३ सन्दीपिनी, ४ आलापिनी, यह पञ्चम की श्रुतियां हैं। १ मदन्ती, २ रोहिणी, ३ रम्या यह धैवत् की हैं।

उग्रा च क्षोभिणीति द्वे निषादे वसतः श्रुती ।
इत्युक्ताः सप्तसु प्रोक्ताः स्वरेषु श्रुतयो बुधैः ॥ ४६ ॥

१ उग्रा, २ क्षोभिणी, यह निषाद में २ श्रुतियां रहती हैं। इस प्रकार सात स्वरों में (सङ्गीत के) पंडितों ने २२ श्रुतियां बताई हैं।

कल्लिनाथ जी ने श्रुति के लिये लिखा है—

प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः ।
सा श्रुतिः सम्परिज्ञेया स्वराऽवयवलक्षणा ॥

अर्थात्-प्रथम सुनने से जो शब्द ह्रस्व मात्रिक (सूक्ष्म) सुनाई देता है, बस उसी स्वर को अवयव स्वरूप वाली श्रुति समझनी चाहिये।

दन्तिल जी ने श्रुतियों का नाम अन्य प्रकार से लिखा है, यथा—

नान्दी चालनिका रसा च सुमुखी चित्रा विचित्रा घना,
मातङ्गी सरसा भूता मधुकरी मैत्री शिवा माधवी ।
वाला शार्ङ्गरवी कला कलरवा माला विशाला जया,
मात्रेति श्रुतयः पुराण कवि भिर्द्वाविंशतिः कीर्त्तिताः ॥

उपरोक्त श्लोक का अर्थ स्पष्ट है, केवल नाम दिये हैं !

श्रुतीर्विनैकया श्रुत्या यदि षड्जः प्रजायते ।
तदा नान्यथासिद्धाः श्रुतयस्ताः भवन्ति हि ॥४७॥

यदि एक श्रुति के बिना षड्ज उत्पन्न हो तो उस एक श्रुति के द्वारा वे अन्य श्रुतियाँ, दूसरे प्रकार से सिद्ध होती हैं।

एवमेवान्यथासिद्धिः सर्वत्र श्रुतिषु स्थिताः
स्वराश्चेद्यदि जायेरन् नैकश्रुत्या कथं भवेत् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार से सब श्रुतियों में दूसरे प्रकार की सिद्धि स्थित रहती है। अन्य सब स्वर यदि उत्पन्न हों तो एक श्रुति के द्वारा क्यों न हों ?

सत्यं षडजश्चतुर्धा स्यान्मृदुत्वादिविशेषणैः।
तत्तज्जातिविशिष्टत्वान्नान्यथासिद्धिऋजसा ॥ ४९ ॥

कोमलादि विशेषणों द्वारा वास्तव में षडज चार प्रकार से होता है और उन भिन्न-भिन्न जाति विशिष्ट होने से उसकी दूसरे प्रकार की सिद्धि सरलता से नहीं होती।

षडज की चार श्रुतियाँ—तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा, छन्दोवती हैं। यह चार प्रकार का षडज कहा है। तीव्रा नी. कोमल, कुमुद्वती नी. तीव्र, तथा मन्दा नी. तीव्रतर एवं छन्दोवती को शुद्ध षडज कहते हैं। निःशङ्क जी ने 'चतस्रः षडजशब्दिन्यो नैषादी धैवती तथा।' इत्यादि से षडज की चतुर्विधा स्थिति बताई हैं।

अवच्छेदकभेदेन कार्य्यनाया पृथक्कृतः।
तृणारणिमणिन्यायात्कारणत्वं भवेदहि ॥ ५० ॥

अतः विशेषण भेद द्वारा कार्य्य-शैली का पृथकत्व होता हैं। काष्ठ में निहित अग्नि के न्याय से यही कारण हुआ करता है। रत्नाकर कार ने भी लिखा है—

च्युतोऽच्युतो द्विधा षडजो द्विश्रुतिर्विकृतो भवेत्।
साधारणे काकलीत्वे निषादस्य च दृश्यते ॥

च्युत कोमल तीव्र वाला और अच्युत अर्थात् अचल। यह दो प्रकार षडज के हैं। दो श्रुति का विकृत होता और वह अपनी आधारता में च्युत और निषाद के काकलीत्व में (श्रुतित्व में) अच्युत रहता है।

दीप्तेति चायनाग्नेयि करुणेति मृदुस्त्विति।
मध्येति जातयस्तत्तत्स्वरस्थश्रुतिसंख्यया ॥ ५१ ॥

दीप्ता. आयता, करुणा, मृदु, मध्या, यह ५ जातियाँ उन प्रत्येक स्वरों में स्थित श्रुति की संख्या के द्वारा मानी जाती हैं।

अथ दीप्ता च तीव्रायां कुमुद्वत्यां तथायता।
मन्दायाञ्च मृदुर्ज्ञेया मध्या छन्दोवतीश्रिता ॥ ५२ ॥

जैसे कि तीव्रा में दीप्ता, कुमुद्वती में आयता, मन्दा में मृदु और छन्दोवती में मध्या जाननी चाहिये।

करुणा च दयावत्यां मध्या सा रञ्जनीश्रिता।
रतिकायां भवेज्जातिर्मृदुसंज्ञा ततः परम् ॥ ५३ ॥

दयावती में करुणा, रञ्जनी में मध्या और रतिका में मृदु जाति होती है।

रौद्रायां दीप्ता विज्ञेया क्रोधायामायता स्मृता।
वज्रिकायान्तु दीप्ता स्यात्प्रसारिण्यां तथायता ॥ ५४ ॥

रौद्री में दीप्ता, तथा कोधा में आयता, वज्रिका में दीप्ता और प्रसारिणी में आयता जाति जाननी चाहिये।

प्रीत्यां श्रुत्यां मृदुः प्रोक्ता मध्या सा मार्जनीश्रिता।
क्षित्यामुक्ता मृदुर्जातिर्मध्या रक्तामाश्रिता ॥ ५५ ॥

प्रीति नाम्नी श्रुति में मृदु जाति कही है और मार्जनी में मध्या, वैसे ही क्षिति में मृदु जाति तथा रक्ता में मध्या बताई है।

मंदीपिन्यां तथा श्रुत्यामायताजातिरीरिता।
आलापिन्यां तथा श्रुत्यां करुणाजातिरुच्यते ॥ ५६ ॥

मंदीपिनी श्रुति में आयता जाति, तथा आलापिनी में करुणा बताई है।

मदन्त्यां करुणा ज्ञेया रोहिण्यामायता स्थिता।
रम्या मध्याश्रिता जातिरिति सूरिविनिश्चयः ॥ ५७ ॥

मदन्ती में करुणा जाति जाननी चाहिये वैसे ही रोहिणी में आयता है। रम्या में मध्या जाति स्थित है, यही पंडितों का निश्चय है।

उग्रायाञ्च भवेद्दीप्ता मध्या तां क्षोभिणीं श्रिता।
श्रुतिजातिपरिज्ञानसाधनं कथ्यतेऽधुना ॥ ५८ ॥

उग्रा में दीप्ता जाति होती है, और क्षोभिणी में मध्या बताते हैं, अब आगे श्रुति की जाति को पहिचानने का साधन बताया जाता है।

स्वरस्थाने क्रियाभेदैर्वैचित्र्यं जायते बहु।
जातिभेदसमव्याप्यं यत्तज्ज्ञेयं मनीषिभिः ॥ ५९ ॥

स्वरों के स्थान में क्रिया के भेदों के द्वारा बहुत विलक्षणता उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि जाति का भेद तो समान रूप से व्याप्य है! इसलिये विद्वानों को चाहिये कि उसे अच्छी तरह समझलें।

इक्षुक्षीरगतं यद्वन्माधुर्यं नोच्यते बुधैः।
तद्वच्छ्रुतिगता जातिर्वाचा को वा वदिष्यति ॥ ६० ॥

जैसे कि गन्ने में या दूध में भरा हुआ मिठास चतुर पुरुषों के द्वारा भी स्पष्ट नहीं बताया जा सकता। उसी भांति श्रुति के अन्दर जो जाति रहती है उसे वाणी के द्वारा कौन बता सकता है?

'सङ्गीत दामोदर' ग्रन्थ में और भी इस विषय पर सुचारु लिखा है, यथा—

श्रुतिस्थाने स्वरान्वक्तुं नाऽलं ब्रह्माऽपि तत्त्वतः।
जले च सुतरां मार्गो मीनानां नोपलक्ष्यते ॥

श्रुतियों की जगह स्वरों को बोलने में ब्रह्मा जी भी समर्थ नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ पानी में मछलियों को रास्ता ठीक तरह से नज़र नहीं आता।

गगने पक्षिणां यद्वत्तद्वच्छ्रुरगता श्रुतिः।
श्रुतिर्नादवशा प्रोक्ता तथाढ्या च कला मता॥

आकाश में जैसे पक्षियों की गति है, ठीक उसी प्रकार स्वर में श्रुति की गति कहलाती है। श्रुति, नाद के बस में, तथा उसके आश्रित कला बताई गई है, जो सूक्ष्म रूपेण स्वर में स्थित है। उसे और भी स्पष्ट कहते हैं—

यथा तैलगता सर्पिर्यथा काष्ठगतोऽनलः।
श्रुतेः स्वरगता तवत्का च को वा वदिष्यति॥

जैसे कि तैल में चिकनाहट और लकड़ी में अग्नि रहती है, उसी भाँति स्वर में श्रुति है। वह कौन? या कहाँ है? भला यह कौन बता सकता है?

व्योम्नि वायुर्यथा वाति प्रकाशश्चैव विद्युति।
ज्ञायतेऽत्रोपदेशेन तथा स्वरगता श्रुतिः॥

जैसे कि आकाश में वायु बहती है और बिजली में प्रकाश रहता है, वैसे ही यहाँ दृष्टान्त द्वारा स्वर में श्रुति जाननी चाहिये। अब श्रुति की प्रतीति कैसे हो? यही बात 'सङ्गीत विनोद' नामक ग्रन्थ में अनुपम ढंग से कही है, यथा—

तालज्ञानं मृदङ्गाद्यैः कलाज्ञानं तु तालतः।
वीणादेस्तु श्रुतिर्ज्ञानं स्वर ज्ञानं तु वंशजम्॥

मृदङ्गादि द्वारा ताल का ज्ञान होता है, और ताल द्वारा काल या कला (...) का ज्ञान होता है। वैसे ही वीणा द्वारा श्रुति का ज्ञान होता है, केवल स्वर का ज्ञान वंशज (बंसरी या हारमोनियम) द्वारा होता है।

नोट—'वंशज' बांस या लकड़ी में छेद करके बनाये गये वाद्य कहलाते हैं। जिन छेदों को अँगुली या चाबियों द्वारा खोलते और बन्द करते हैं, पृथक् २ छेद होने से पृथक २ स्वर ही उनमें रहते हैं। सम्मिलित (तारतम्य) जैसा तारवाद्यों में होता है, वैसा न रहने से श्रुतियों का उनमें अभाव रहता है। बाँसुरी, वेणु, बीन, हारमोनियम, क्लारनेट, आदि सब इसी कोटि के वाद्ययंत्र हैं, और इन्हें 'शुषिरवाद्य' कहते हैं—

श्रुतियों को यदि और भी स्पष्ट देखना चाहें तो एक उपाय यह है—वीणा या सितार किसी भी तार वाद्य को लेकर गोद में सीधा लिटालीजिये और मिज़राब द्वारा बाज़ के तार पर आघात करिये। उधर बायें हाथ के अंगूठे के खड़े नाखून द्वारा शुरू से दोनों सप्तकों की कुल मूर्च्छना बजा जाइये, तो आपका अंगूठा जब तार के ऊपर से नाखून घिसता हुआ दौड़ेगा तो सुन्दरियों (सारों) या परदों पर तो स्वर बोलेंगे ही अपितु-सारों से इधर उधर कुछ भांति २ की दूसरी ध्वनियां भी बोलती जायेंगी। बस! समझ लीजिये यही ध्वनियाँ श्रुतियाँ कहलाती हैं।

श्रोत्रप्रत्यक्षसिद्धास्ताः भिन्नश्रुतिसमाश्रिताः ।
तद्वच्छ्रुतिगता जातिरन्वर्थनामका भवेत् ॥ ६१ ॥

जोकि सुनने में प्रत्यक्ष सिद्ध हैं और जो भली भाँति भिन्न भिन्न श्रुतियों से आश्रित हैं या श्रुतियों से पृथक् समाश्रित हैं, उसी प्रकार श्रुति के अन्तर्निहत जाति 'अन्वर्थ' नामवाली होती है। (जिसके नाम से ही अर्थ का बोध हो)

एवं सप्त स्वरस्थानां श्रुतीनां जातिनिर्णयः ।
श्रुत्यनन्तरमुत्पन्नाः स्निग्धानुरणनात्मकाः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार सात स्वरों में स्थित श्रुतियों की जातियों का निर्णय किया गया है। अब वे स्वर जो कि श्रुतियों के बाद उत्पन्न होते हैं, अथवा श्रुति के निर्भेदत्व को उत्पन्न करते हैं और जिनकी ध्वनि में लगातार झनकार है, जो अपने २ स्थान पर नियत रूपेण स्थित हैं। जो अनुस्वार रूप हैं जो दूर से सुने जाते हैं, और स्निग्ध (कर्णपुट में सचिक्कणता से जाने वाले) हैं। तथा—

रञ्जयन्ति स्वतः स्वान्तं श्रोतृणामिति ते स्वराः ।
षडजर्षभौ च गान्धारस्तथा मध्यमपञ्चमौ ॥ ६३ ॥
धैवतश्च निषादोऽयमिति नामभिरीरिताः ।

जो अपने आप या स्वाभाविक ही सुनने वालों के चित्तों को आकर्षित करें। वे स्वर कहलाते हैं, १—षडज, २—ऋषभ, ३—गान्धार, ४—मध्यम, ५—पञ्चम, ६—धैवत, ७—निषाद। यह ७ स्वर हैं तथा उपरोक्त नामों से घोषित हैं। निःशङ्क शार्ङ्गदेव ने भी लिखा है—

"तेषां संज्ञाः सरिगमपधनीत्यपरामताः ।"

उन स्वरों की दूसरी संज्ञा या सूक्ष्म नाम "स रि ग म प ध नि" माने गए हैं।

शुद्धत्वविकृतत्वाभ्यां स्वरा द्वेधाः प्रकीर्तिताः ॥ ६४ ॥
शुद्धाः सप्त विकाराख्या द्व्यधिका विंशतिर्मताः ।
एकोनत्रिंशदुच्यन्ते ते सर्वे मिलिताः स्वराः ॥ ६५ ॥

शुद्ध (तीव्र) और विकृत (कोमल या कृत्रिम) दो प्रकार के स्वर कहलाते हैं शुद्ध स्वर सात होते हैं तथा विकारी या विकृत २२ माने गए हैं और वे सब मिलकर २९ कहे जाते हैं (यहाँ २२ श्रुति संख्या विकारी स्वरों में दी है)

सरी, गमौ, पधौ, निश्च स्वरा इत्यपि संज्ञिताः ।
चतुः श्रुतिसमायुक्ताः स्वराः स्युः स-म-पाभिधाः ॥ ६६ ॥

स रि ग म प ध नि स्वरों की यह (सूक्ष्म) संज्ञा भी होती है। उनमें से स, प, यह तीन स्वर ४।४ श्रुति के होते हैं।

ग नी श्रुतिद्व्योपेतौ रि- धौ त्रिश्रुतिकौ मतौ ।
स्वरः स्वोत्तरगामी चेत्तीव्रादिवचनोदितः ॥ ६७ ॥

गान्धार और निषाद यह दोनों दो-दो श्रुति के स्वर हैं तथा ऋषभ और धैवत यह तीन-तीन श्रुति के कहलाते हैं यदि कोई स्वर अपनी उत्तर (पीछे की) श्रुति पर जाता है तो उसे 'तीव्राति' कहते हैं। 'सङ्गीत-दर्पण' में भी—

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षडजमध्यमपञ्चमाः ।
द्वे द्वे निषादगान्धारौ त्रिस्त्रिर्ऋषभधैवतौ ॥

अर्थ ऊपर जैसा ही है।

स्वरोऽग्रिमश्रुतिं याति तीव्रसंज्ञां प्रयात्यसौ ।
स्वरोऽग्रिम श्रुती याति तदा तीव्रतरो भवेत् ॥ ६८ ॥

और यदि कोई स्वर अपने आगे की एक श्रुति पर जाता है तो उसे 'तीव्र' कहा जाता है और यदि आगे की दो श्रुतियों पर जाता है तो 'तीव्रतर' कहलाता है।

स्वरोऽग्रिमश्रुतीर्याति तर्हि तीव्रतमः स्मृतः ।
चतस्रः श्रुतयो यस्मिन्नधिकाः स्युर्यदा स्वरः ॥ ६९ ॥

यदि स्वर आगे की २ से अधिक ३ श्रुतियों पर जाता है तो 'तीव्रतम' तथा चार श्रुतियाँ जिसमें अधिक हों जब भी वह स्वर—

तदा तीव्रतमाख्याञ्च प्राप्नोतीति बुधा जगुः ।
स्वरः पश्चान्निवृत्तश्चेत्कोमलादिभिरीरितः ॥ ७० ॥

'तीव्रतम' ऐसी आख्या (नाम) वाला होता है, ऐसा पण्डितों ने कहा है। और यदि स्वर (श्रुति छोड़कर) पीछे लौटता है तो 'कोमलादि' कहलाता है।

एकश्रुतिपरित्यागात्स्वरः कोमलसंज्ञकः ।
श्रुतिद्वयपरित्यागात्पूर्वशब्देन मन्यते ॥ ७१ ॥

एक श्रुति को छोड़ने पर वह स्वर कोमल संज्ञा वाला होता है, तथा दो श्रुतियों के छोड़ने पर भी पूर्ववाचक (कोमल) होता है।

स्वरः पश्चान्निवृत्तः सन् कोमलादित्वमेति चेत् ।
तदुत्तरस्वरे गच्छन्तीव्रतादिकमेति चेत् ॥ ७२ ॥

पीछे लौटता हुआ स्वर यदि 'कोमलादि' भाव को प्राप्त होता है तो उत्तर स्वर पर जाता हुआ, तीव्रतादि को प्राप्त होता है।

यस्मात् शुद्धस्वरादेवं प्राप्तसंज्ञाः श्रुतिर्जगुः ।
साधारण्यं भवेत्तेषामन्यश्रुतिगतत्वतः ॥ ७३ ॥

जिस शुद्ध स्वर से इस प्रकार प्राप्त हुई संज्ञा (नाम) श्रुति कहलाती हैं, तो दो श्रुतियां (सार्थक) होती हैं, अन्य श्रुतियों पर जाने से उन सबकी 'साधारण संज्ञा' होती है ।

साधारणो रिस्तीव्रः स्यादिति सूरिविनिश्चयः ।
साधारणान्तरौ गौ स्तस्तीव्रतीव्रतराविति ॥ ७४ ॥

साधारण ऋषभ तीव्र होता है यह विद्वानों का निश्चय किया हुआ है । तथा-साधारण अन्तर वाले दोनों गान्धार तीव्र, तीव्रतर इस भांति होते हैं ।

तथा तीव्रतमो गोऽपि मृदुर्म इति कीर्त्तितः ।
साधारणान्तरौ मौस्तस्तीव्रतीव्रतराविति ॥ ७५ ॥

और तीव्रतम गान्धार भी मृदु (कोमल) मध्यम कहलाता है । तथा साधारणान्तर दोनों मध्यम तीव्र और तीव्रतर होते हैं ।

मश्च तीव्रतमोऽप्युक्तो मृदुः प इति पण्डितैः ।
साधारणो धस्तीव्रः स्यादिति प्रोक्तं मुनीश्वरैः ॥ ७६ ॥

और तीव्रतम मध्यम भी पण्डितों ने मृदु (कोमल) पञ्चम बताया है । तथा साधारण धैवत तीव्र होता है यह मुनीश्वरों ने कहा है ।

साधारणः काकलीति तथा कैशिक इत्यपि ।
तीव्रतीव्रतरस्तीव्रतमोऽप्युक्तो मनीषिभिः ॥ ७७ ॥

साधारण काकली-तीव्र तीव्रतर,तथा कैशिक तीव्रतम होता है ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है, अमरकोष में "काकलीनिकले सूक्ष्मे" अर्थात् सूक्ष्म (कल) ध्वनि को काकली कहते हैं सोमनाथ जी ने भी—

निः कैशिकी च काकल्यथ सस्यैकाँ भजंश्च तां ते द्वे ।
निगमा मृदुपरसमयाः 'समप' तृतीय श्रुतिस्थित्या ॥

इस प्रकार लिखा है । अर्थात्—यदि निषाद स्वर षड्ज की पहली श्रुति में ठहरता है तो उसकी 'कैशिक' संज्ञा होती है, और यदि वही षड्ज की दूसरी श्रुति पर ठहरे तो उसे 'काकली' कहा जाता है, और निषाद की दूसरी श्रुति को छोड़कर जब षडज की तीसरी श्रुति पर ठहरता है तो मृदु (कोमल) षडज होता है । इसी प्रकार गान्धार अपनी दूसरी श्रुति को छोड़कर जब मध्यम की तीसरी यानी शुरू से बारहवीं श्रुति पर ठहरता है तो मृदु (कोमल) मध्यम कहलाता है, और मध्यम अपनी चौथी श्रुति को छोड़कर जब पञ्चम की तीसरी यानी शुरू से (गिनकर) सोलहवीं श्रुति पर ठहरता है तो मृदु पञ्चम कहलाता है ।

सकलल्पत्वान्मृदुर्निः स इति तीव्रतमो भवेत् ।
एवं शुद्धस्वराणाञ्च विकृतानांच लक्षणम् ॥ ७८ ॥

सङ्गीतशास्त्रवेत्तारः प्रवदन्ति मुनीश्वराः ॥

सकलपत्व (मान लेने) से मृदु निषाद तीव्रतम षडज होता है। यह शुद्ध (तीव्र) स्वरों और विकृतों (कोमलों) का लक्षण-सङ्गीत शास्त्र के विद्वान मुनीश्वरों ने बताया है।

प्रयोगो बहुधा यस्य वादिनं तं स्वरं जगुः ॥ ७९ ॥
राजन्वमपि तस्येति मुनयः संगिरन्ति हि ।
श्रुतयोऽष्टौ द्वादश वा ययोरन्तरगोचराः ॥ ८० ॥

जिसका प्रयोग बहुधा होता है, अर्थात् राग में जो अन्य स्वरों की अपेक्षा (सबसे) अधिक लगता है। जिससे राग का स्वरूप निश्चय रूप से प्रकट हो उसे 'जीव' भी कहते हैं तथा उसे 'वादी' स्वर भी कहते हैं। जिसका 'वाद' बोलना बहुत हो। 'वह अन्य स्वरों में राजा के समान माना गया है। ऐसा मुनि कहते हैं। तथा उस स्वर से लेकर जिस स्वर तक ८ अथवा १२ श्रुतियां अन्तर गोचर हो जायें या वादी स्वर से ८ या १२ श्रुतियों की दूरी पर जो स्वर पड़े—

मिथः सम्वादिनौ तौ स्तः सपौ स्यातां पमौ तथा ।
न वादी न च सम्वादी न विवाद्यपि यः स्वरः ॥ ८१ ॥

१—यह स्वर विवरण (सङ्गीत व्याकरण) उस काल का है, जब कि सङ्गीत अपनी चरम सीमा पर विद्यमान था, किन्तु अब तो दुर्भाग्यवश भारत में न तो वैसे कलाकार ही हैं कि जो ऐसे सङ्गीतशास्त्र लिखें, और न ऐसे सङ्गीतज्ञ (गायक) ही हैं, जो उपरोक्त २२ श्रुतियों में सम्पन्न अपना गायन शास्त्रोक्त बनायें। अब तो प्रायः १२ श्रुतियों पर ही गायन करने वाले रह गये हैं। २२ श्रुतियों पर गाने वाले होंगे भी तो अंगुलियों पर गणयमान। नहीं तो समयचक्र में प्रायः (बहुत से) गायक ऐसे होंगे जो ऊपर कहे हुये ६८ से लेकर ७८ तक के ११ श्लोकों का भाव (अभिप्राय) भी मुश्किल से समझें। अतएव इस विषय पर मैं कुछ टिप्पणी लिख देना उचित समझता हूं।

प्राचीन समय में षड्ज और पञ्चम के भी चार-चार दरजे रखे गए थे, जो कि पीछे के श्लोक नं० ४७ से लेकर ५० तक चार छन्दों में बताये गये हैं। किन्तु आज कल उन्हें अचल माना जाता है। और उनके बाकी दरजों को दूसरे स्वरों में अर्थात्—षडज के वञ्चित स्वर निषाद में तथा पञ्चम के मध्यम में लिए जाते हैं। यूं तो बात एक ही है, यदि-कोमल षडज न कह के तीव्रतर निषाद ही कहा गया तो उसमें हानि क्या है? अपितु शिक्षार्थियों को और भी सरल पड़ता है षडज और पञ्चम को अलग मानिये तो—रे, ग, म, ध, नि, इनके सात-सात दरजे होते हैं।

ऋषभ और धैवत	गान्धार और निषाद
(१) सकारी (२) अति कोमल	(१) सकारी (२) कोमल
(३) कोमल (४) शुद्ध अथवा स्वाभाविक	(३) अति कोमल (४) शुद्ध गान्धार
(५) तीव्र (६) तीव्रतर	वा निषाद (५) तीव्र वा स्वाभाविक
(७) तीव्रतम	(६) तीव्रतर (७) तीव्रतम

—मध्यम—

(१) सकारी, (२) अति कोमल (३) कोमल शुद्ध वा स्वाभाविक (४) मध्यम (५) तीव्र (६) तीव्रतर (७) तीव्रतम

रे. ग. म. ध. नि. के और स्वाभाविक तथा तीव्र म. के वीणा, सितार पर मींड़ द्वारा इसराज, रबाब और स्वरोद आदि पर सूत द्वारा सबका अलग अलग रूप प्रकट होता है। बहुत से स्वरों में ६ श्रुति या इससे भी अधिक की मींड़ ली जाती है यह सब तार वाद्य निःसरण है. किन्तु शुषिर (छिद्र) वाद्य-हारमोनियम आदि में तो केवल दो ही दरजे कोमल तथा स्वाभाविक हैं। षड्ज तथा पञ्चम इसमें अचल माने गये हैं, शेष ५ स्वरों के लिये हारमोनियम में—

ऋषभ—	सकारी, अति कोमल, और कोमल तीनों के लिए	को० रे
	स्वाभाविक, तीव्र, तीव्रतर, तथा तीव्रतम ४ के लिये	ती० रे
धैवत—	सकारी अति कोमल, और कोमल तीनो के लिये	को० ध
	स्वाभाविक, तीव्र, तीव्रतर, और तीव्रतम के लिए	ती ध
गान्धार—	सकारी अति कोमल और शुद्ध के लिए	को० ग
	तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम चारों के लिए	ती० ग
निषाद—	सकारी, अति कोमल और शुद्ध के लिये	को० नि
	तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम के लिए	ती नि
मध्यम—	सकारी, अति कोमल तथा शुद्ध के लिए	को० म
	तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम के लिए	ती० म

उपरोक्त सातस्वरों के पर्य्याय—

वह दोनों परस्पर वादी सम्वादी होते हैं, जैसे षड्ज वादी है, तो उसका पञ्चम सम्वादी हुआ, क्योंकि षड्ज की एक श्रुति छोड़कर गिना जायेगा, शेष ३श्रुति, ऋषभ की ३ श्रुति, गान्धार की २ श्रुति, मध्यम की ४ श्रुति, कुल १२ श्रुतियों के

अन्तर पर पञ्चम पड़ा, तो वह षडज का सम्वादी हुआ और "एसौतथा" यानी उसी प्रकार पञ्चम वादी का षडज सम्वादी हो सकता है—क्योंकि पञ्चम की १ श्रुति छोड़कर ३, म० ४, ग० २, रे० ३, कुल १२ श्रुति के बाद षडज आ पड़ा, किन्तु प्रत्येक राग-रागिनियों में यह योग लागू नहीं होगा। जैसे 'भूपालिका' रागिनी में उडवत्व (औढव) है। अतः उसके वर्जित स्वर म, नि, को छोड़कर यह संख्या चलेगी, भूपाली में गान्धार का प्रयोग अधिक होता है। अतः वह उसका वादी है और धैवत का उससे कुछ कम होता है—अत वह सम्वादी है। श्रुतिगणना में, गान्धार की १ श्रुति छोड़कर शेष १ मध्यम वर्जित, पञ्चम की ४, धैवत की ३, कुल आठ श्रुति अन्तर में क्योंकि "श्रुतयोऽष्टौ द्वादश वा ययोरन्तर गोचराः॥" मूल में कथित ८ या १२ श्रुति के फासले पर हो, षडज का सम्वादी मध्यम भी हो सकता है, यदि उसका प्रयोग राग में षडज के समान या उससे कुछ ही कम हुआ हो। श्रुति-गणना षडज की १ छोड़कर, ३, रे, ३, ग, २, कुल ८ श्रुति के फासले पर मध्यम आ गया, हारमोनियम में वादी से सम्वादी छठवाँ पर्दा भी माना जाता है, यहाँ तक वादी, सम्वादी विषय में कहा, और भी देखिये 'रागमाला' में यथा—

प्राचुर्य्येण वदेद्वाद सम्वादी तच्छ्मो वदेत्।
पश्चाद्वृतेऽनुवादी स्याद्विवादी तद्विना भवेत्॥
सम्वादी स भवत्येव वादिनश्च समश्रुतिः।
न्यूनत्वमीषदेव स्याच्छ्हायो रक्तियोजकः॥

अर्थात्-वादी का अधिक वाद होता है, सम्वादी उसी के समान या कुछ कम। इन दोनों के पश्चात् जो राग में लगता है उसे अनुवादी कहते हैं। वर्जित होने पर भी जो लगाया जाय उसे 'विवादी' कहते हैं, सम्वादी स्वर वादी का सम-श्रुतिक जैसे—स, प, दोनों ४-४ श्रुति के हैं, ईषदेव यानी कुछ ही न्यूनत्व सम्वादी में होता है और वह वादी का सहाय करने वाला कहलाता है, साथ ही (रक्तियोजक) वादी स्वर के लगकर राग-रागिनी की शकल को बाँधता है। यानी राग की छाया दिखलाने वाले सहकारी स्वरों में यह मुख्य स्वर होता है।

और जो स्वर न तो वादी और न सम्वादी और न विवादी ही है उसेः—

सोऽनुवादीति विज्ञेयः सूक्ष्मदृष्ट्या विचक्षणैः।
रक्तिच्छिदहेतुत्वं यस्मिन्रागे तु यस्य तु॥ ८२॥

बुद्धिमानों ने उसे सूक्ष्म दृष्टि से (खूब समझकर) अनुवादी बताया है और राग के अन्दर जिसका रक्तिविच्छेद हेतु (राग को नष्ट करने का कारण) है। यानी रक्ति-राग की सरसता या जातीयता का जो नाश कर देता है।

तद्रागस्थस्वरैस्तस्य विवादित्वं भवेद्ध्रुवम्।

उस राग स्थित अन्य स्वरों के द्वारा उसका निश्चय विवादित्व होता है। यानी दूसरे स्वरों से वह विवादी कहलाता है। 'राग मञ्जरी' में भी कहा है—

अतिरिक्ते तयोश्चैव स्वराः ये तेऽनुवादिनः।
रागपूर्त्तौ सहायास्ते सेवका इव सम्मताः॥

अर्थात् उन दोनों वादी, संवादी स्वरों के अतिरिक्त जो स्वर उस राग-रागिनी में हों वे अनुवादी स्वर माने गए हैं। अथवा जिन दो स्वरों में एक श्रुति का अन्तर न हो, जैसे षडज के अनुवादी, रि० ग० इत्यादि होते हैं, यह राग में साधारण (सहायक) स्वर हैं। राग परिपूर्ण होने के लिए सम्वादी-अनुवादी स्वरों की खास जरूरत होती है, जो स्वर सम्वादी स्वर की मदद करे और उसके पीछे लगाया जावे उसे अनुवादी स्वर कहते हैं और वे सेवक के समान माने गये हैं। इसी के नीचे के छन्द में विवादी के सम्बन्ध में लिखा है—

स्वरयोश्च श्रुतावेकेऽन्तरे यश्च नियोजितः।
रक्तिभगकरोऽयं वै विवादी वर्जितस्तथा॥

जिन दो स्वरों की श्रुति सख्या में एक का अन्तर हो जैसे ऋषभ की ३ श्रुति और गान्धार की २ श्रुति होने के कारण ऋषभ का विवादी गान्धार हुआ, इसे वर्जित भी कहते हैं, जो जिस राग का वर्जित स्वर है, वह उसमें नहीं लगता। यदि लगा दिया जाय तो वह उसकी शकल को ही बदल देता है। वास्तव में विवादी स्वर को राग का दुश्मन ही कहना चाहिये, क्यों कि इसके लगाने से राग बिलकुल खोजाता है। जैसे मालकोष, रि. प. वर्जित औढ़व है। यदि इनमें से रि. या प. कोई लगादें तो मालकोष का असली रूप बिगड़ कर बदल जायेगा। अगर स्वर-सूरती के लिये विवादी स्वर को किसी राग में थोड़ा सा लगाना भी हो तो, उसका कुछ रूप बदलकर लगाना चाहिये जैसे किसी राग में शुद्ध रि. विवादी है तो किंचित मात्र कोमल करके उसे लगा देते हैं, जैसे तेलङ्गी रागिनी में रे. ध. वर्जित औढ़व में तार सप्तक में ऋषभ लगाते हैं, इस प्रकार स्वर लगाने को "बढ़ार" भी कहते हैं।

मूर्च्छनायां विवादी स्यान्स्पर्शमात्रेण सोल्कणः।
वक्रगत्या भवेत्सोऽयं रागशत्रुः समीरितः॥

विवादी मूर्च्छना में स्पर्श मात्र से ऊपरी कण रूप लगना है। वह कहीं २ वक्र गति से भी आता है किन्तु राग का दुश्मन कहलाता है दत्तिल आदि आचार्यों का मत है कि वादी से दूसरा पर्दा विवादी होता है, पर इसके प्रतिकूल भी बहुत देखने में आता है। आगे के पद बताते हैं—

तस्यामात्यस्तु संवादी वादिनो राजसंज्ञिनः॥ ८३॥
भृत्यतुल्यानुवादी स्याद्विवादी शत्रुवद्भवेत्।
देवताकुलसम्भूताः षडज गान्धार मध्यमाः॥ ८४॥

राजा की पदवी या संज्ञा वाले वादी का संवादी मंत्री होता है। अनुवादी भृत्य (सेवक) समान तथा विवादी वैरी के समान कहलाता है, अब स्वरों का कुल (गोत्र) कहते हैं-षडज, गान्धार, मध्यम, यह तीनों देव कुल में उत्पन्न हुये हैं अर्थात् इनकी देवता योनि है। तथा—

पञ्चमः पितृवंशीयो रि-धौ मुनिकुलोद्भवौ ।
निर्दैन्यकुलसञ्जात इत्येषां कुलनिर्णयः ॥ ८५ ॥

पञ्चम स्वर पितृ वंश में पैदा हुआ है, तथा ऋषभ और धैवत यह दोनों मुनि कुल जाति हैं। निषाद दैन्य कुल का है। इस प्रकार सबका कुल निर्णय किया गया।

म–म–पा ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रियौ च रि-धौ मतौ ।
वैश्यजातौ ग-नी ज्ञेयौ शूद्राः स्युर्विकृताः स्वराः ॥ ८६ ॥

तीव्रों में स. म. प. यह तीनों ब्राह्मण हैं। ऋषभ, धैवत दोनों क्षत्रिय माने गए हैं। गान्धार, निषाद, दोनों वैश्य जाति के हैं और कोमल स्वर सब शूद्र जाति के होते हैं।

इति स्वरगता जातिः प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ८७ ॥

बुद्धिमान् इस प्रकार स्वरों की जाति बताते हैं। अब वर्ण (रङ्ग) कहते हैं।

कमलाभः स्वरः षडज ऋषभः पिञ्जरः स्वरः ।
हाटकाभस्तु गान्धारः कुन्दाभो मध्यमः स्वरः ॥ ८८ ॥

षडज कमल जैसी आभा वाला (गुलाबी) तथा ऋषभ पिञ्जर (तालवृक्ष) जैसे हरे वर्ण का होता है। गान्धार सोने जैसा (पीला) और मध्यम कुन्द जैसा (सफेद) होता है।

पञ्चमस्तु स्वरः श्यामो धैवतः पीतवर्णयुक् ।
निषादः कर्बुरश्चेति स्वराणां वर्णनिर्णयः ॥ ८९ ॥

पञ्चम स्वर श्याम (काले) रङ्ग का और धैवत पीले रङ्ग वाला होता है। और निषाद कर्बुर (६ अर्थ–१ राक्षस, २ सोना, ३ काला बैंगन, ४ रङ्गबिरङ्गा, ५ पानी, ६ खून) बहुरंगे वर्ण का है। यह स्वरों का वर्ण (रङ्ग) निर्णय किया गया है।

अब इनके जन्मभूमि के द्वीप (टापू) कहते हैं—

जम्बुशाककुशक्रौञ्चशाल्मलीश्वेतनामसु ।
द्वीपेषु पुष्करे द्वीपे जाताः सप्तस्वराः क्रमात् ॥ ९० ॥

षडज जम्बु द्वीप में, ऋषभ शाक द्वीप में, एवं गान्धार कुश द्वीप में, मध्यम क्रौञ्च द्वीप में, तथा पञ्चम शाल्मली द्वीप में, और धैवत श्वेत द्वीप में, तथा

निषाद पुष्कर द्वीप में उत्पन्न हुआ है। यह क्रम से सातों स्वरों के निवास स्थान (द्वीप) बताए हैं। पुराणों में लिखा है, कि प्रत्येक द्वीप में एक बड़ा भारी वृक्ष है और उसी से उस द्वीप का वही नाम पड़ा है। भारत जम्बु द्वीप में है और इसमें जम्बु (जामन) का वृक्ष लिखा है, एवं शाक (मामूली वनस्पति) कुशदर्भ, क्रौञ्च या इसमें क्रौञ्च (करांगुल) नामक पक्षी बहुत हैं। पर्वत, शाल्मली-सेंमर, श्वेत पाकड़ वृक्ष पुष्कर-कमल, यह सप्त द्वीप, नवखण्डों में विभाजित बताये हैं। (आगे सप्त स्वरों के दृष्टा (दर्शक) बताते हैं।

अग्निर्ब्रह्मा मृगाङ्कश्च लक्ष्मीशो नारदो मुनिः।
तम्बुरुर्धनदश्चेति ते सप्तस्वरदर्शिनः॥ ६१ ॥

षडज के अग्नि, ऋषभ के ब्रह्मा, गान्धार के चन्द्रमा, तथा मध्यम के विष्णु भगवान्, पञ्चम के नारदमुनि, धैवत के तुम्बरु (गन्धर्व) एवं निषाद के कुबेर जी यह सातों स्वरों के दृष्टा (दर्शक) बताये हैं।

वह्निब्रह्मसरस्वत्यः शर्वश्रीशगणेश्वराः।
सहस्रान्शुरिति प्रोक्ताः क्रमात्षडजादिदेवताः॥ ६२ ॥

अब सातों स्वरों के देवता कहते हैं—

षड्ज का अग्नि, ऋषभ का ब्रह्मा, गान्धार की सरस्वती, तथा मध्यम के शिवजी, और पंचम के विष्णु जी, एवं धैवत के गणेश जी, तथा निषाद स्वर के सूर्य्य, यह क्रम से सात देवता बताए हैं।

अथानुष्टुप् च गायत्री त्रिष्टुप् च बृहती तथा।
पंक्तिरुष्णिक् जगती च छन्दान्स्याहुः स्वरेष्विति॥६३॥

अब सात स्वरों के छन्द कहते हैं। षड्ज का अनुष्टुप छन्द, ऋषभ का गायत्री गांधार का त्रिष्टुप्, और मध्यम का बृहती छन्द होता है। एवं पञ्चम का पंक्ति छन्द है, तथा धैवत का उष्णिक और निषाद का जगती।

स-मौ हास्ये च श्रृङ्गारे स्वरौ स्यातां तथा ध-नी।
पो बीभत्से तथा दैन्ये भयानकरसे भवेत्॥
रमे श्रृङ्गारके रिः स्याद्गान्धारो हास्यके पुनः॥६४॥

अब ७ स्वरों का नवरसों में वर्गीकरण करते हैं—

षड्ज हास्यरस में, मध्यम श्रङ्गार में होता है, तथा धैवत-वीभत्सरस में, और निषाद करुणा रस में एवं पञ्चम भयानक रस में होता है। ऋषभ, श्रङ्गार में, और गांधार हास्यरस में होता है।

तीव्रो वीरेऽद्भुते रौद्रे हास्ये तीव्रतराः स्वराः।
तीव्रतरोऽपि श्रङ्गारे रसे मध्यम ईरितः ॥९५॥

तीव्रस्वर वीर रस में होना है, तथा अन्य तीव्रतर स्वर-अद्भुत, रौद्र, हास्य इनरसों में होते हैं। और तीव्रतर मध्यम भी श्रङ्गार रस में होना है।

तीव्रतमश्च श्रङ्गारे मृदु मो हास्यके रसे।
एवं रसविभागः स्यात्स्वरेषु सप्तसु ध्रुवम् ॥९६॥

तीव्रतम स्वर श्रङ्गार रसमें कहा है, और कोमल मध्यम हास्यरस में इस प्रकार इन सात स्वरों में यह नवरस का विभाग निश्चित रूप से कहा गया है।

इति स्वरप्रकरणम् (समाप्तम्)

अथ ग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसन्दोहरूपिणः ।
षड्जमध्यमगांधारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः ॥९७॥

अब ग्राम के सम्बन्ध में बताते हैं। स्वरों का एक समूह ही ग्राम कहलाता है ग्राम तीन होते हैं, जिन्हें षड्ज, मध्यम तथा गांधार इन नामों से घोषित करते हैं। (जैसे मनुष्यों के ग्रहों का समूह ग्राम कहलाता है)

मूर्च्छनाधारभूतास्ते षड्जग्रामस्त्रिषूत्तमः ।
रागा ग्रामद्वयालभ्या षड्जग्रामोद्भवा इति ॥९८॥

ग्राम मूर्च्छना के आधार भूत होते हैं, उन तीनों में षड्ज ग्राम उत्तम कहलाता है। राग दो ग्रामों में ही आश्रित रहते हैं, और वे षड्ज ग्राम से उत्पन्न होते हैं।

यथोक्त श्रुतिका प्रोक्ताः षड्जग्रामेऽखिला स्वराः ।
मध्यमे मेरुसंस्थेऽस्मिन्मध्यमग्राम सम्भवः ॥९९॥

षड्ज ग्राम में सब स्वर यथोक्त श्रुतियों के (जो कही जा चुकी हैं) बताये गए हैं, अब मध्यम स्वर को वीणा के मेरु (दण्ड) पर स्थित करने से अर्थात् मध्यम को स्वर मानने से मध्यम ग्राम सम्भव होता है। पञ्चम को षड्ज माना गया और वहीं से स्वर कल्पना की गई, अतएव इसका 'षड्ज ग्राम' नाम पड़ा।

यदा तदैव तास्तिस्रः श्रुतीर्याति स पञ्चमः ।
निषादंत्रिश्रुतिं तत्र ब्रूयुर्लक्षण कोविदाः ॥१००॥

जब (मध्यम मेरु पर स्थिति हुआ) तभी वह पंचम (अपनी) उन तीन श्रुतियों पर जाता (ठहरता) है। और वहाँ लक्षणों के जानने वाले पण्डित निषाद को त्रिश्रुतिक बताते हैं।

अन्ये तु श्रुतिभिर्युक्ताः स-ग्रामस्थस्वरा इव ।
श्रुतित्रयसमायुक्तो यदा गो मेरुगो भवेत् ॥१०१॥

और दूसरे (स्वर) षड्ज ग्राम-स्थिति स्वरों के समान श्रुतियों के सहित हों, तथा तीन श्रुतियों के समेत जब गांधार मेरु पर स्थित हो।

गान्धारग्राम आख्यातस्तिसृभिः श्रुतिभिः परैः ।
चतुःश्रुतिर्निषादः स्यात् षड्जोऽपि तिसृभिर्युतः ॥१०२॥

तो उसे गांधार ग्राम कहते हैं, दूसरे (आचार्य्य) तीन श्रुतियों के साथ गान्धार और ४ श्रुतियों के साथ निषाद हो तथा षड्ज भी ३ श्रुतियों के साथ हो (ऐसा कहते हैं) 'सङ्गीत रत्नाकर' में अन्य प्रकारांतर तथा विशुद्ध रूप से ग्राम बताये हैं, यथा—

ग्रामः स्वर समूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः ।
तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात्षड्ज ग्राम आदिमः ॥
द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते ।
षड्जग्रामः पञ्चमे स्वचतुर्थश्रुतिसंस्थिते ॥

स्वरों के समूह को ग्राम कहते हैं। जो कि मूर्च्छनाओं से या मूर्च्छनादिक (तानक्रम वर्ण अलङ्कार जाति) से आश्रित होता है। वह-षड्ज और मध्यम, दोनों ग्राम मृत्युलोक में हैं (गान्धार स्वर्ग में है) उनमें षड्ज ग्राम (जिसके स्वर्गों की श्रुतियाँ यथावत् नियमाऽनुसार हैं) पहला होता है, दूसरा-मध्यम ग्राम, अब इन दोनों के लक्षण कहता हूं।

यदि पञ्चमस्वर अपनी चौथी श्रुति पर जिसका जाति भेद 'करुणा' है जिसका नाम 'आलापिनी' है, शुरू से गिनने पर जो १७ वीं अथवा १४ वीं (यदि मेरु पर निषाद हो तो १७ वीं, और यदि मेरु पर 'जोड़ी का तार खुला षड्ज' हो तो १४ वीं) पर हो तो उसे षड्ज ग्राम कहते हैं।

यहां शुद्ध तथा विकृत रूप से द्विविध-स्वर-प्रयोग जानना चाहिये. मुनि भरताचार्य्य ने लिखा है "द्वौ ग्रामौ विश्रुतौ लोके षड्जमध्यमसंज्ञकौ" अर्थात्-इस लोक में दो प्रकार के ग्राम प्रायः सुने जाते हैं, उनके षड्ज तथा मध्यम यह नाम हैं। शुद्ध स्वराश्रित षड्ज ग्राम, प्रथम तथा-विकृत स्वराश्रित द्वितीय मध्यम ग्राम होता है। निःशंक शार्ङ्गदेव जी ने मध्यम तथा गान्धार ग्रामों के बावत ३ छन्दों में लिखा है—

स्वोपान्त्यश्रुतिसन्स्थेऽस्मिन्मध्यमग्राम इष्यते ।
यद्वा धस्त्रिश्रुतिः षड्जे मध्यमे तु चतुःश्रुतिः ॥
रिमयोः श्रुतिमेकैकां गान्धारश्चेत्समाश्रितः ।
पश्रुतिं धो निषादस्तु धश्रुतिं सश्रुतिं श्रितः ॥
गान्धारग्राममाचष्टे तदा तं नारदो मुनिः ।
प्रवर्त्तते स्वर्गलोके ग्रामोऽसौ न महीतले ॥

यदि पञ्चम स्वर अपनी उपान्त्य श्रुति यानी अन्तिम से और एक इधर की जैसे-अन्त्य श्रुति 'चौथी' उपान्त्य-तीसरी पर हो जिसे सन्दीपिनी कहते हैं और जिसका जाति क्रम-'आयता' है जैसा कि पीछे (स्वर जाति प्रकरण में) कह आए हैं—

"सन्दीपिन्यां तथा श्रुत्यामायता जातिरीरिता ।"

शुरू से गिनने पर (निषादस्थ मेरु से) १६ वीं षडज मेरु से १३ वीं होती है। उस पर ठहरे (जिसे आजकल तीव्रतर-मध्यम कहते हैं) तो मध्यम ग्राम होता है ।

जैसे—त्रिश्रुतिक धैवत, षडज में और मध्यम में चतुः श्रुतिक हो, (तथा) ऋषभ और मध्यम की एक-एक श्रुति को गान्धार समाश्रित (धारण) करे। यानी ऋषभ के अन्त की और मध्यम के आदि की १।१ श्रुति को गान्धार ने लिया हो, तथा

पञ्चम की १ श्रुति को धैवत और धैवत की १ श्रुति को निषाद तथा षडज की भी १ श्रुति को लेकर स्थित हो तो उसको (ऐसी दशा को) नारद मुनि ने 'गान्धार ग्राम' बताया है और वह ग्राम स्वर्ग लोक ही में है। महीतल पर यानी इस लोक में नहीं है, ऐसा कहा है।

श्री सोमनाथ जी ने भी अपने 'राग-विबोध' में ठीक इसी भाव पर लिखा है।

धत्ते रिमयोरन्त्यादिमे श्रुती गो निरन्त्यम् धसयोः।
धः पान्त्वाकेद्गान्धारग्रामः स्वर्गलोकेऽसौ ॥

अर्थ ठीक ऊपर ही का है—प्राचीन संस्कृति ग्रन्थकारों की सम्मतियाँ—जो ग्रामों के सम्बन्ध में हैं पाठकों ने पढ़लीं, अब आधुनिक सङ्गीतज्ञों की भी एकाध सम्मति इस विषय पर देख लें!

यथा बहुगृहाऽऽकारो ग्राम इत्यभिधीयते ।
तथा बहुस्वराकारो सङ्गीते ग्रामसंज्ञकः ॥

ग्राम सम्बन्ध में निषाद या गान्धार ३ ग्राम के विषय में भिन्न २ बातें सुनने में आती हैं। भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न २ विवरण देखने में आते हैं। जैसे-"सङ्गीत-दर्पण" में तो गान्धार ग्राम लिखा है और 'सङ्गीत कलाधर' में 'निषादग्राम'। अच्छी तरह से गौर करने पर मालूम हुआ कि सबका सारांश एक ही है।

(१) पञ्चम को स्वर मानने से षडज ग्राम।

(२) षडज को स्वर मानने से मध्यम ग्राम।

(३) मध्यम को स्वर मानने से गान्धार ग्राम अथवा निषाद ग्राम की उत्पत्ति होती है।

नामकरण—

(१) पञ्चम को षडज माना गया, अतएव इसका 'षडज ग्राम' नाम पड़ा।

(२) पञ्चम को षडज करने से साधारण 'षडज मध्यम' होगया। अतः इसका नाम 'मध्यम ग्राम' पड़ा (३) और मध्यम का निषाद होगया, इसलिये तीसरे का नाम 'निषादग्राम' हुआ। जैसा कि निःशंक जी ने लिखा है—

षडजःप्रधान आद्यत्वादमात्याधिक्यतस्तथा।
ग्रामे स्यादविलोपित्वान्मध्यमस्तु पुरः सरः ॥

षडज जिसका प्रधान तथा आदि स्वर है और जहाँ अमात्य (सम्वादी) स्वरों का बाहुल्य है, अतः उसे 'षडज ग्राम' ऐसी संज्ञादी है। मध्यम जिसके आगे है अतः वह मध्यम ग्राम कहलाता है।

दिवि देवाः हि गायन्ति तस्माद्गान्धारसंज्ञकः।
निषादोऽप्युच्यते लोके सर्वेषामेव सम्मतम् ॥ (सं० मं०)

जिसे स्वर्ग में देवता ही गान करते हैं, वह 'गान्धार' नामक ग्राम कहलाता है, जिसे (इस) लोक में 'निषाद' ग्राम भी कहते हैं यही सबों का मत है।

जिस प्रकार भिन्न २ गाँवों में भिन्न २ प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं उसी प्रकार संगीत के भिन्न २ ग्रामों में भिन्न तरह के, भिन्न प्रकार के अन्तरों पर स्वर रहते हैं। जैसे एक ग्राम में सब स्वर शुद्ध यानी अपने स्वाभाविक श्रुत्यन्तरों के रहते हैं, और दूसरे ग्राम में दो स्वरों का श्रुत्यन्तर घट बढ़ कर उनका और उनके घटने बढ़ने के कारणों से बाकी स्वरों का रूप भी बदल जाता है। और तीसरे ग्राम में प्रायः सब ही स्वर घट बढ़ जाते हैं।

मन्द्रस्तीव्रश्च तौ ग्रामौ लोके, चाप्यभिधीयते।
तृतीयो हि निषादश्च मते नामान्तराणि च॥

षड्जग्राम को मन्द्र तथा मध्यमग्राम को तीव्र और गान्धार ग्राम को निषाद ग्राम भी कहते हैं। लौकिक, मत में इनके यह तीन ही नामान्तर हैं।

षड्जमध्यमगान्धारास्त्रयाणां जन्महेतवः।
नन्द्यावर्त्तश्च जीमूतो सुभद्रेणापि संज्ञिताः॥

षड्ज, मध्यम, गान्धार इन तीन स्वरों से उक्त तीन ग्राम उत्पन्न होते हैं। अतः इन्हीं पर उनके नाम भी हैं, और इन्हें क्रम से नन्द्यावर्त्त, जीमूत (बादल) और सुभद्र ऐसी संज्ञाएँ दी जाती हैं।

—ग्राम की पहिचान—

किसी स्वर को ध्रुवा (स्टैण्डार्ड स्वर) अर्थात् षड्ज मानते से जिस [illegible] या रागिनी को उसी स्वर में अथवा उसके पंचम या मध्यम से बजाइये तो ठीक रूप प्रकट होगा। इसके विपरीत यदि ऋषभ, गान्धार, धैवत अथवा निषाद बजाइये तो रूप भ्रष्ट हो जायगा, और बेसुरा मालूम होगा।

ग्राम स्पष्टिः—

षड्ज.....ग्राम
मध्यम.....ग्राम
निषाद (गान्धार).....ग्राम
ध्रुवास्वर.....(Standard)

ग्राम का प्रमाण सितार से साफ प्रकट होता है। सितार का नाम है 'सेहतार।' 'सेह' फारसी शब्द है, जिसका अर्थ है 'तीन' अर्थात् इस बाजे में तीन तार होते हैं। यह वाद्य यन्त्र मुसलमानी शासन में किसी अमीर खुसरो नामक फकीर ने वीणा से नकल करके बनाया था। वास्तव में, तबला (जो मृदङ्ग की कृत्रिमता (नकल) है) और सितार यह दोनों मुसलिम वाद्य हैं। सितार में आज कल कई तार बढ़ा दिये गये हैं, यहां तक कि ६ तार या ७ तार तक लगा देते हैं पर मुख्य तीन ही होते हैं। २ पीतल और एक लोहे का तार जिसको 'नायकी' अथवा बाज़ का तार भी कहते हैं। पीतल का पहिला मोटा तार पंचम स्वर में मिलता है। उसके बाद का पतला तार षड्ज में और उसके बाद के लोहे का तार मध्यम में मिलता है।

पंचम को षडज मानने ही से षडज मध्यम और मध्यम-निषाद हो जाता है। अतएव यह तीनों ग्राम सिद्ध होते हैं।

'भरतमत' में ग्राम विवरण यह है—

षडजग्राम	मध्यमग्राम	गान्धारग्राम
स रि ग	मा पा धा	नि

इससे भी उपरोक्त बातों का समर्थन होता है, अर्थात्-पंचम को षडज करने से—स, रि, ग, होकर फिर मध्यम दूसरे तार पर बोलने लगता है, और दूसरे तार पर म, प, ध, बजाने के बाद 'नि' तीसरे तार पर बोलता है। निषाद ग्राम का नाम 'गान्धार ग्राम' पड़ने का यही कारण है कि इसे गान्धर्वगण स्वर्ग लोक में विशेष कर बर्तते हैं।

* ग्रामचक्र *

मन्द्र ग्राम (षडज)	मध्य ग्राम	तीव्र, निषाद, या गांधारग्राम
सा रे रे ग ग	म म प ध ध	नी नी

इति ग्रामलक्षणम् [प्रकरण]

आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा ।
तां मूर्च्छनां तदा लोके प्राहुर्ग्रामाश्रयं बुधाः ॥ १०३ ॥

जब स्वरों का आरोहण (षड्ज से निषाद तक चढ़ना) और अवरोहण (उसी भांति ऊपर से नीचे उतरना) होता है तो तब लोक में उसे पण्डित जन मूर्च्छना कहते हैं और वह ग्राम से आश्रित होती है, यानी ग्राम को नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे तक बजाना ही मूर्च्छना कहलाता है। वास्तव में ग्राम मूर्च्छनाओं के आश्रित तथा मूर्च्छना ग्राम के आश्रित हैं, जैसा कि पूर्व ग्राम प्रकरण में कह आये हैं, "मूर्च्छनाधारभूतास्ते" अर्थात्—वे ग्राम मूर्च्छना आधार भूत हैं। "सङ्गीत विनोद" में लिखा है—

स्वरः समूर्च्छितो यत्र रागतां प्रतिपद्यते ।
मूर्च्छनामिति तां प्राहुः कवयो ग्रामसम्भवाम् ॥

अर्थात्—जहां स्वर मूर्च्छावस्था में (कहीं अधिक मात्रा तो कहीं स्वल्प मात्रागत) होता है तथा वही स्वर-समूह राग की शकल को धारण करता है तो कवि लोग लोग उसे जो कि ग्राम के गतानुगत्व से उत्पन्न होती है, मूर्च्छना कहते हैं।

महाकवि माघ जी के 'शिशुपाल वध' काव्य में नारद जी की वीणा के वर्णन में लिखा है—

" स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनाम । "

अर्थात्—उन विशेष मूर्च्छनाओं द्वारा ग्राम स्फुट (प्रकट) हो रहा था।

सप्तसंख्यायुतास्ताः स्युस्तासां नामानि वच्म्यहम् ।
तत्र तूत्तरमन्द्रा स्यात्षडजपूर्वकसम्भवा ॥ १०४ ॥

वह संख्या में सात (मूर्च्छनाएँ) होती हैं। मैं उनके नाम कहता हूँ (षड्ज ग्राम में) वहाँ उत्तर मन्द्रा पहिली है जो षड्ज पूर्वक उत्पन्न होती है।

द्वितीया रजनी प्रोक्ता निषादस्वरपूर्विका ।
धैवतादिस्वरोद्भूता तृतीया चोत्तरायता ॥ १०५ ॥

दूसरी रजनी होती है जो निषाद स्वर-पूर्वक कही जाती है और धैवत आदि स्वर से उत्पन्न तीसरी 'उत्तरायता' कहलाती है।

चतुर्थी शुद्धषड्जा स्यात्पञ्चमादिस्वरोद्भवा ।
मत्सर्य्याद्याकृताख्या सा मध्यमादिस्वरोद्भवा ॥ १०६ ॥

चौथी 'शुद्ध षड्जा' नाम की है जो पञ्चमादि स्वर से उत्पन्न होती है। तथा मध्यमादि स्वर से उत्पन्न पाँचवी 'मत्सरी कृता' कहलाती है ॥

अश्वक्रान्ता तु षष्ठी स्याद्गान्धारस्वरपूर्वका ।
ऋषभादिस्वरोद्भूता सप्तम्याख्याभिरुद्गता ॥ १०७ ॥

छठवीं गान्धार स्वर पूर्वक (उत्पन्न) अश्वक्रान्ता होती है, तथा ऋषभ आदि स्वर से उत्पन्न सातवीं का नाम 'अभिरुद्गता' है ।

आरोहश्चावरोहश्च तथैव विकृतेष्वपि ।
षाडवौडवरीत्याऽत्र कुर्य्यादारोहणादिकम् ॥ १०८ ॥

उसी प्रकार विकृतों (कोमलों) में भी आरोह और अवरोह होता है । यहाँ षाडव (६ स्वर सम्बन्धी) तथा औडव (५ स्वर सम्बन्धी) आरोहणादिक करना चाहिये ।

मध्यषड्जं समारभ्य तदूर्ध्वस्वरमाव्रजेत् ।
पूर्वैकैकस्वरंत्यक्त्वा त्वारोहादिकमूह्यताम् ॥ १०९ ॥
शुद्धासु यानि नामानि तान्येव विकृतेष्वपि ॥ ११० ॥

मध्य षड्ज से शुरू करके उसके ऊपर के स्वर पर जाना चाहिये ।

"षड्जादिमध्यमादींश्च तदूर्ध्वं सारयेत्क्रमात् ।" (सं० र०)

और पहले का एक-एक स्वर छोड़कर आरोहादिक करना चाहिये । जो नाम शुद्ध स्वरों में होते हैं वे ही नाम विकृतों (कोमलों) में भी रहते हैं ।

पूर्वकोमलतीव्राणां ऋषभाणां क्रमेण तु ।
योगे शुद्धस्वरैर्भेदा [illegible] ॥ १११ ॥

पूर्व कोमल तीव्रों के तथा ऋषभों के अथवा प्रथम कोमल हो फिर तीव्र ऐसे ऋषभों के क्रम से योग (मेल) से शुद्ध स्वरों के द्वारा इक्कीस भेद कहे हैं । जो कि २१ मूर्च्छनाओं की आरोहीवरोही से जाननी चाहिये ।

रिं तीव्रतरमादाय मूर्च्छना क्वापि नोदिता ।
शुद्धगान्धारगाहित्याच्छुद्धषट्कवियोगतः ॥ ११२ ॥

ऐसी कोई भी मूर्च्छना कहीं भी नहीं कही, जो तीव्रतर ऋषभ को लेकर (चले) शुद्ध गान्धार से रहित शुद्ध षट्क (छैस्वर) के मेल के बिना हो ।

कोमलादिकगान्धारैश्चतुर्भिर्विकृतैः स्वरैः ।
अष्टाविंशति भेदाः स्युः शेषैः शुद्धस्वरैरिह ॥ ११३ ॥

कोमलादिक गान्धारों और चारों विकृत स्वरों तथा शेष शुद्ध स्वरों के द्वारा सब २८ भेद होते हैं । जैसे—षड्ज, ऋषभ, पंचम, निषाद इन चारों स्वरों के द्वारा (क्रम से आदि में प्रत्येक छोड़कर) यथा—

(स० से) रि ग म प ध नि (रि० से) ग म प ध नि सं

(प० से) ध प म ग रे स (नि० से) स रे ग म प ध (इत्यादि)

यह ६ स्वरों की २८ षाड़व शुद्ध तानें कहलाती हैं।

गस्य पूर्वस्य संयोगे त्वतितीव्रतमस्य च ।
गस्य योगे रि-मौ शुद्धौ नस्तो भेदान्कथं जगुः ॥ ११४ ॥

गान्धार के पूर्व के संयोग में और अति तीव्रतम गान्धार के योग में ऋषभ, मध्यम दोनों शुद्ध और कोमल भेद किस प्रकार कहे गये हैं।

तीव्रादि-म-त्रयेणापि भेदास्तत्रैकविंशतिः ।
पूर्वकोमलतीव्राणां धैवतानां क्रमेण तु ॥ ११५ ॥

तीव्रादि मध्यम त्रय से अर्थात् तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम तीनों मध्यमों से यह सब इक्कीस भेद होते हैं। तथा पूर्व कोमल तीव्र अथवा पहले कोमल फिर तीव्र ऐसे धैवतों के क्रमसे—

योगे शुद्धस्वरैर्भेदा एकविंशतिरीरिताः ।
धं तीव्रतरमादाय मूर्च्छना क्वापि नोदिता ॥ ११६ ॥

शुद्ध स्वरों के योग (जोड़) में इक्कीस भेद कहे गए हैं। तीव्रतर धैवत को लेकर कहीं कोई मूर्च्छना नहीं कही गई।

शुद्धनिषादराहित्याच्छुद्धषट्कवियोगतः ।
अष्टाविंशतिभेदाः स्युः कोमलादिकनिस्वरैः ॥ ११७ ॥

शुद्ध निषाद रहित और शुद्ध षट्क (षट् स्वर) वियोग से अर्थात् जहाँ शुद्ध छः स्वर न हों, ऐसे तथा कोमलादिक (कोमल, अति कोमल, सकारी) निषाद स्वरों के द्वारा अट्ठाईस भेद होते हैं।

निषादं पूर्वमादाय मूर्च्छना क्वापि नोदिता ।
शुद्धधैवतराहित्याच्छुद्धषट्कवियोगतः ॥ ११८ ॥

निषाद को पहले लेकर अथवा पहले निषाद (कोमल) को लेकर "द्वेद्वेनिषाद-गान्धारौ" कोई भी मूर्च्छना नहीं कही गई है। शुद्ध धैवत से रहित और शुद्ध षट्क (छः स्वर) वियोग से—

शुद्धैर्विकृतभेदाभ्यां ग-रिभ्यां योजितैः स्वरैः ।
द्वादशभिः शतं भेदाः भवन्तीति बुधा जगुः ॥ ११९ ॥

शुद्ध तथा विकृत (कोमल) इन दो प्रकार के भेदों के द्वारा गान्धार और ऋषभ करके अर्थात्—शुद्ध तथा कोमल दोनों प्रकार के ऋषभ और गान्धार से मिले हुए स्वरों के द्वारा ११२ भेद होते हैं, ऐसा पण्डितों ने कहा है।

यदा स्यातां रि-धौ तीव्रौ पूर्वकोमलसंज्ञितौ।
गन्योस्यत्पूर्ववृत्तित्वात्तौ तदादाय नो भिदा ॥ १२० ॥

जब ऋषभ और धैवत दोनों पूर्व कोमल संज्ञा वाले पीछे तीव्र हों, तो गान्धार तथा निषाद इन दोनों की पूर्व वृत्तित्व के कारण उन दोनों को लेने पर भेद नहीं होते, क्योंकि—ऋषभ का पूर्व वृत्तित्व गान्धार में है तथा धैवत का निषाद में। अतः भेद नहीं माने गए।

रिभिस्त्रिभिस्तथा मैश्च विकृतैर्मिलितैः स्वरैः।
शुद्धैर्भेदास्त्रिषष्टिः स्युः पञ्चभिश्चापि सोऽब्रवीत् ॥ १२१ ॥

तीनों ऋषभ तथा सब (चारों) मध्यमों के द्वारा (ऋषभ ३ श्रुतिक हैं और मध्यम चतुः श्रुतिक) तथा मिले हुए कुल विकृत (कोमल) स्वरों के द्वारा एवं शुद्ध स्वरों के भी पाँचों के द्वारा ६३ भेद होते हैं, ऐसा कहा गया है।

त्रिभीरिभिर्निकारार्धं स्ताद्शैर्धस्वरैरपि।
शेषशुद्धस्वरैर्भेदा जायन्तेऽत्रत्रिषष्टिधा ॥ १२२ ॥

तीनों ऋषभ जो आदि में विकारी (कोमल) हो, अथवा शुद्ध और कोमल त्रिविध ऋषभों के द्वारा क्योंकि रि, ध, त्रिश्रुतिक हैं (त्रिश्रुती ऋषभ धैवतौ) और उसी भांति के तीनों धैवत स्वरों के द्वारा शेष स, ग, म, प, नि, सहित यहाँ ६३ प्रकार के ही भेद होते हैं।

पूर्वकोमलतीव्रैश्च कोमलादिकसंज्ञितैः।
रिभिस्त्रिभिः स्वरैः शुद्धैः रगीनिश्चतुरुत्तराः ॥ १२३ ॥

जो पूर्व कोमल तीव्र हैं, अथवा पहले कोमल फिर तीव्र हैं तथा कोमलादिक संज्ञा (नाम) वाले हैं, उन स्वरों के द्वारा तथा तीनों ऋषभों के द्वारा एवं (अन्य) शुद्ध स्वरों से ८४ भेद कहे गए हैं।

कोमलादित्वभावैर्गैर्मध्यमैर्विकृतैस्त्रिभिः।
षड्जांशन्यासगां भेदान् स्वरैः शुद्धैर्बुधा जगुः ॥ १२४ ॥

कोमलादि भाव को प्राप्त हुए हों, ऐसे गान्धारों के द्वारा अथवा—कोमल,

मध्यम तथा तीन स्वर शुद्ध हों, उनके द्वारा या तीनों विकृत मध्यम हों और स्वर शुद्ध हों तो पण्डितों ने १०५ भेद कहे हैं।

कोमलादिकगान्धारैश्चतुर्भिर्विकृतैस्त्रिभिः ।
विकृतैर्धैवतैर्भेदा अशीतिश्चतुरुत्तराः ॥ १२५ ॥

कोमलादिक गान्धारों तथा अन्य चार स्वर विकृत एवं तीन विकृत धैवतों करके ८४ भेद होते हैं।

चतुर्भिर्विकृतैर्गैश्च निषादैस्तादृशैरपि ।
भेदाः शुद्धैः समायोगे स्युः शतं द्वादशोत्तरम् ॥ १२६ ॥

जहाँ चार विकृत गान्धार हों और उसी प्रकार के (विकृत) निषाद भी हों, तथा अन्य शुद्ध स्वरों के समायोग (सम गणना) में ११२ भेद होते हैं।

त्रिभिर्मैर्विकृतैर्धैश्च पूर्वादिककृतैस्त्रिभिः ।
पञ्चशुद्धस्वरैर्भेदान् त्रिषष्टिमिति मेनिरे ॥ १२७ ॥

तीन विकृत मध्यमों के द्वारा, तथा पूर्वादिक किये (कोमल) तीन धैवतों के द्वारा एवं ५ शुद्ध स्वरों करके ६३ मिति (संख्या) के भेद माने गए हैं।

त्रिधामैश्च निषादैश्च चतुर्भिर्विकृतैः स्वरैः ।
पञ्चशुद्धस्वरैर्भेदा अशीतिश्चतुरुत्तरा ॥ १२८ ॥

तीन प्रकार के (सकारी, अति कोमल, तथा कोमल या शुद्ध) मध्यमों के द्वारा तथा चार विकृत स्वर निषादों के द्वारा एवं अन्य पांच शुद्ध स्वरों करके ८४ भेद होते हैं।

धैवतैर्विकृतैः सर्वैः सर्वैश्च विकृतैर्नैर्भिः ।
शेषैः शुद्धैः कृता भेदाः स्युः शतं द्वादशोत्तरम् ॥ १२९ ॥

जहाँ सब धैवत विकृत (कोमल) हों, तथा निषाद भी सब विकृत हों शेष स्वर शुद्ध हों तो (ऐसे) ११२ भेद होते हैं।

रिभिः सर्वैस्तथा गैश्च विकृतैर्मध्यमैः स्वरैः ।
शेषशुद्धैश्च भेदाः स्युः षट्त्रिंशच्छतत्रयम् ॥ १३० ॥

जहाँ सब ऋषभ तथा सब गान्धार एवं सब मध्यम विकृत स्वर हों शेष स्वर (स. प. ध. नि.) शुद्ध हों तो (ऐसी दशा में) ३३६ भेद होते हैं।

रिभिः सर्वैस्तथा गैश्च पञ्चभिर्धैवतैस्त्रिभिः ।
शेषैः शुद्धैश्च भेदाः स्युः सविंशति चतुः शतम् ॥ १३१ ॥

जहाँ सब ऋषभ हों, एवं गान्धार पाँच हों, तीन धैवत हों, शेष स्वर शुद्ध हों तो ४२० भेद होते हैं।

ऋषभैर्विकृतैः सर्वैर्गान्धारैर्वेदसम्मितैः ।
निस्वरैर्वेदसंख्याकैः शेषैः शुद्धैः स्वरैरपि ।
भेदा भवन्ति साष्टौ च चत्वारिंशच्चतुःशती ॥ १३२ ॥

ऋषभ स्वर सब विकृत हों, गान्धार चार हों, तथा निषाद स्वर भी चार हों, शेष स्वर शुद्ध हों, तो ४४८ भेद होते हैं।

त्रभीरिभिस्त्रिभिर्मैश्च त्रिभिर्धैर्विकृतैः स्वरैः ।
वेदशुद्धैश्च भेदाः स्युर्नवाशीत्ययुतं शतम् ॥ १३३ ॥

ऋषभ तीन, मध्यम तीन, धैवत तीन, विकृत स्वर हों, अर्थात् रि. म. ध. यह तीनों ३।३ संख्या में विकृत हों तथा ४ स्वर शुद्ध हों, स. ग. प. नि. यह शुद्ध हों, षड्ज से चलिये ४ शुद्ध, रि. ३ वि. ग. ४ शु. म. ३ वि. प. ४ शु. ध. ३ वि. नि. ४ शु. ऐसे योगमें १८९ भेद होते हैं। या-नवाशीति नव ९ + अशीति ८० = ८९ अयुत-दशहजार शतम-१०० कुल १०१८९ भेद होते हैं, क्यों कि—

शतं सहस्रमयुतं नियुतं प्रयुतं मतम् ।
स्त्रीकोटिर्वुदमिति क्रमादशगुणोत्तरम् ॥ (रत्नकोषे)

अर्थात्—शतं १००, सहस्रं १०००, अयुतं १००००, नियुतं १०००००, प्रयुतं १०००००० कोटि (करोड़) १००००००० अर्बुद-(अर्ब) और खर्ब यह क्रम से उत्तरोत्तर दश गुणा बढ़ते-बढ़ते (मतम) माने गये हैं। अथवा "नवाशीति युतंशतम्" ऐसा पाठ मानने से १८९ भेद होते हैं यह अर्थ संगत होगा।

रिभिस्त्रिभिस्तथा मैश्च निभिरप्यब्धिसम्मितैः ॥
अन्यैः शुद्धैश्च भेदाः स्युर्द्वयं पञ्च पुनर्द्वयम् ॥ १३४ ॥

ऋषभ तीन तथा मध्यम ४ और निषाद भी ४ इन (विकृत) स्वरों करके या इस संख्या के द्वारा, तथा अन्य (स. ग. प. ध.) शुद्ध स्वरों के द्वारा २५२ भेद होते हैं।

त्रिभीरिभिर्वेदधैश्च निषादैर्वाणसम्मितैः ।
वेदशुद्धैश्च भेदाः स्युर्विंशत्या च चतुःशती ॥ १३६ ॥

ऋषभ तीन और धैवत ४ एवं निषाद भी ५ यह (विकृत) हों तथा अन्य चार (स. ग. म. प.) शुद्ध स्वरों के द्वारा ४२० भेद होते हैं।

वाणगैर्विकृतैः सर्वैर्मैश्च धैरग्निसम्मितैः ।
अब्धिशुद्धैश्च भेदाः स्युस्त्रिंशती दश पञ्च च ॥ १३६ ॥

पाँच मध्यम, धैवत तथा ऋषभ, ३।३ यह सब विकृत हों, तथा शेष (स, ग, प, नि,) चारों शुद्ध हों तो ३१५ भेद होते हैं ।

विकृतैः पञ्चभिर्गैर्मैस्त्रिभिरब्धिनिभिस्तथा ।
अन्यैः शुद्धैश्च भेदाः स्युः सविंशति चतुः शती ॥ १३७ ॥

पाँच गान्धार, तीन मध्यम, एवं चार निषाद, यह विकृत हों, तथा अन्य (स, रि, प, ध,) स्वर शुद्ध हों तो ४२० भेद होते हैं ।

अब्धिगैरब्धिधैरब्धि-निभिः शुद्धैः स्वरैरपि ।
भेदा भवन्ति साष्टौ तु चत्वारिंशच्चतुः शती ॥ १३८ ॥

चार गान्धार, चार ही धैवत, तथा चार ही निषाद यह स्वर शुद्ध हों, (शेष स, रि, म, प, कोमल हों) तो ४४८ भेद होते हैं ।

त्रिभिर्मैर्वेदधैश्चापि निषादैरब्धिसम्मितैः ।
अब्धिशुद्धैश्च भेदाः स्युः षषट्त्रिंशच्छतत्रयम् ॥ १३९ ॥

तीन मध्यम, चार धैवत, तथा चार ही निषाद (यह विकृत हों) तथा चार (स, रि, ग, प,) शुद्ध हों तो ३३६ भेद होते हैं ।

रीणां गानां तथा मानां वह्निधानाश्च मेलने ।
सहस्रं द्विशती षष्टिर्भेदा उक्ता मनीषिभिः ॥ १४० ॥

ऋषभों के गान्धारों के, तथा मध्यमों के और तीन धैवतों के मिलाने में १२६० भेद पण्डितों ने बताये हैं ।

शून्यं वसुरसश्चन्द्र इति भेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ १४१ ॥

रीणां गानामब्धिधानां तथा नीनाश्च मेलने ।
नेत्रं रन्ध्रं मुनिश्चन्द्रो भेदाश्चात्रेति मेनिरे ॥ १४२ ॥

यह (सब) भेद १९८० बताये गये हैं, अथवा—'वसू' द्विवचन के अर्थ में शून्यं ० वसू ८।८ रसः ६ चन्द्रः १ 'अङ्कानां वामतोगतिः' अङ्क उल्टी तरफ से चलते हैं, अतः १९८८० भेद होते हैं ।

ऋषभों के गान्धारों के, तथा-४ धैवतों के और निषादों के मिलाने में १७०२ भेद यहां माने गये हैं ।

रिभिस्त्रिभिस्तथा मैश्च वेदधैर्निस्वरैरपि ।
अष्टोत्तरशतभेदा उक्ता मनीषिभिः ॥ १४३ ॥

तीन ऋषभ हों, तीन ही मध्यम, चार धैवत एवं निषाद भी हों तो इस योग करके पण्डितों ने १००८ भेद बताये हैं।

गानां मानां तथा धानां निषादानाञ्च मेलने।
शून्यं वसुरसश्चन्द्र इति भेदाः प्रकीर्तिताः॥ १४४॥

गान्धार, मध्यम तथा धैवत और निषादों के मिलाने में १९८० भेद बताये गये हैं।

रीणां गानां तथा मानां धानां नीनाञ्च मेलने।
षट्महस्रञ्च विंशत्या शतं सप्त च संयुताः॥ १४५॥

ऋषभों के तथा गान्धारों के एवं मध्यमों के और निषादों तथा धैवतों के मिलाने में—६१२७।

इति भेदान्मुनीन्द्रास्तु प्राहुः शास्त्रेण बोधितान्।
मूर्च्छनानां प्रभेदानां सम्पूर्णानि च सर्वशः॥ १४६॥

मुनियों के इन्द्र (मुनिवर) शास्त्र द्वारा बोधित (कहे) हुये इतने भेद बताते हैं, और सर्वशः (सब जोड़कर) मूर्च्छनाओं के भेद-प्रभेदों की पूरी।

वसुरुद्रो रसाष्टौ च चन्द्रश्चेति मितिर्भवेत्।
भवन्ति मूर्च्छना एता ग्रामेऽस्मिन्षड्जसंज्ञके॥ १४७॥

१८९४८ पूरी संख्या इतनी होती है, इतनी मूर्च्छनाएँ इस षड्ज ग्राम में होती हैं।

ग्रामयोर्ग-मयोरेवं सम्पूर्णा मूर्च्छना मताः।
मध्यमे मध्यमस्यापि गान्धारे गस्वरस्य च॥ १४८॥

इसी भाँति मध्यम तथा गान्धार दोनों ग्रामों में सम्पूर्ण मूर्च्छनाएँ मानी गई हैं। मध्यम ग्राम में मध्यम स्वर का तथा गान्धार ग्राम में गान्धार स्वर का—

विकृतत्वं न वक्तव्यं तयोर्यस्मात् प्रधानता।
ग-म-ग्रामे ग-मौ त्यक्त्वा मूर्च्छना नाभिसम्मता॥ १४९॥

विकृतत्व (कोमलता) नहीं बोलना चाहिये, क्योंकि उन दोनों की प्रधानता होती है। अर्थात्—मध्यम ग्राम में मध्यम स्वर की प्रधानता है। अतः वह (मध्यम स्वर) अपने ग्राम में विकृत नहीं होगा। ऐसे ही गान्धार ग्राम में गान्धार स्वर विकृत नहीं होता है। गान्धार तथा मध्यम दोनों ग्रामों में गान्धार और मध्यमों को छोड़कर मूर्च्छना नहीं मानी जाती है। अर्थात् मध्यम ग्राम की मूर्च्छना में मध्यम स्वर अवश्य होना चाहिये, उसी प्रकार गान्धार-ग्राम की मूर्च्छना में गान्धार स्वर का परिहार नहीं होता है।

आद्याद्यमूर्च्छनातासे सम्पूर्णे कथिते बुधैः ।
तानाः पञ्चसहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च ॥ १५० ॥

विद्वानों ने सम्पूर्ण तानों में पहली-पहली मूर्च्छना कही है। तानें ५०४० (बनाई हैं)।

तावत्संख्याविशिष्टानां तानानां गणना कृता ।
खरसेपुरसा नेत्रमब्धिर्वह्निः शशीति च ॥ १५१ ॥

उतनी (इसके अतिरिक्त) बढ़ाई हुई संख्या की तानों की या शेष तानों की स्व० रस ६, इषु ५, रस ६, नेत्र २, अब्धि ४, वह्नि ३, शशि १, अर्थात्—१,३४,२६,५,६० एक करोड़ चौंतीस लाख उन्तीस हज़ार पाँच सौ नब्बे, इतनी गिनती की गई है।

नि-ध-प-म ग-रीणान्तु लोपादथ च षाड़वाः ।
क्रमादेकैकमंत्यागात्पट्त्रिंशन्मूर्च्छना मताः ॥ १५२ ॥

अब षाड़व मूर्च्छना कहते हैं। नि, ध, प, म, ग, रि, इन सबके लोप से अर्थात् क्रम से १।१ छोड़ने से ३६ षाड़व मूर्च्छनाएँ मानी गई हैं।

एवं षाडवशुद्धाः स्युर्विकृता अपि चत्महे ।
त्रयोदश भिदाः स्युर्भेदास्तन्मप्तमा मताः ॥ १५३ ॥

इसी भाँति षाडव शुद्ध (मूर्च्छनाएँ) होती हैं। अब मैं विकृत भी बताता हूँ। ऋषभ के १३ भेद होते हैं और वे भेद सातवें माने गए हैं।

इति भेदा निषादीनानामेकोनसप्ततिरीरिताः ।
एवं भेदा धहीनानामशीतिश्चतुरुत्तराः ॥ १५४ ॥

यह भेद निषाद रहित (मूर्च्छनाओं) के ७८ भेद कहे गये हैं। इसी भाँति धैवत-रहितों के ८४ भेद जानने चाहिये।

तथा भेदाः प-हीननांस्युः शतं लोचनोत्तरम् ।
म-हीनानान्तु भेदाः स्युरशीतिश्चतुरुत्तराः ॥ १५५ ॥

और पञ्चम हीनों के (प वर्जित षाडव मूर्च्छनाओं के) १०२ भेद होते हैं। तथा म हीनों के (मध्यम रहितों के) ८४ भेद होते हैं।

तथा गान्धारहीनानामष्टसप्ततिरीरिताः ।
रि-हीनानामपि ज्ञेया अशीतिश्चतुरुत्तराः ॥ १५६ ॥

वैसे ही गान्धार हीनों के ७८ भेद कहे गये हैं। और ऋषभ हीनों के भी ८४ भेद जानने चाहिये।

चतुर्भिश्च रिभिस्तत्र गान्धारैः पञ्चभिः स्वरैः ।
षण्णवतिर्नि-हीनाः स्युर्भेदा उक्ता मनीषिभिः ॥ १५७ ॥

ऋषभ स्वर चार हों, और वहाँ पाँच गान्धार हों, तो-निषाद-वर्जितों के ९० भेद बुद्धिमानों ने बताये हैं ।

रिभिस्त्रिभिस्तथा मैश्च भेदाः स्यु रब्धिराशुगाः ।
एवं रिभिस्तथा धैश्च भेदास्तावन्त एव हि ॥ १५८ ॥

यदि ऋषभ स्वर तीन हों तथा मध्यम भी तीन हों तो ५४ भेद होते हैं । एवं ऋषभों तथा धैवतों के द्वारा भी (३-३ संख्या में) उतने ही (५४) भेद होते हैं ।

पञ्चभिर्गैस्त्रिभिर्मैश्च भेदाः नवतिरीरिताः ।
गान्धारधैवतानान्तु द्विसप्ततिभिदा मताः ॥ १५९ ॥

गान्धार स्वर पाँच हों तथा मध्यम तीन हों तो ९० भेद कहे गये हैं । और गान्धार तथा धैवतों के (५-३ संख्या में) ७२ भेद माने गये हैं ।

मध्यमानां तथा धानां भेदाः स्युरब्धिराशुगाः ।
इति भेदा नि-हीनानां सविंशतिचतुः शती ॥ १६० ॥

मध्यमों के तथा धैवतों के ५४ भेद होते हैं । यह (सब) भेद निषाद रहितों के ४२० माने गये हैं ।

एवं भेदा ध-हीनानामशीत्या स्युश्चतुः शती ।
भेदा ज्ञेयाः प-हीनानां रसो बाणो मुनिः क्रमात् ॥ १६१ ॥

इसी भाँति धैवत-रहितों के ४८० भेद होते हैं, तथा पंचम रहितों के क्रम से ७५९ भेद जानने चाहिये ।

म-हीननामपि ज्ञेयाः षड्शीत्या चतुः शती ।
तथा गान्धार-हीनानां लोचनेन चतुः शती ॥ १६२ ॥

और मध्यम-रहितों के भी ४८६ भेद जानने चाहिये । तथा गान्धार-रहित मूर्च्छनाओं के ४०२ भेद होते हैं ।

ऋषभेणापि हीनानामशीत्या स्युश्चतुः शती ।
रिभि-गै-मैः स्वभेदैश्च ज्ञेया भेदा विचक्षणैः ॥ १६३ ॥

ऋषभ करके तीनों (रि वर्जितों) के भी ४८० भेद होते हैं और ऋषभों, गान्धारों तथा मध्यमों के द्वारा अपने भेदों करके, बुद्धिमानों को (निम्न) भेद जानने चाहिये ।

मूर्च्छनासु नि-हीनासु षष्ट्या युक्तं शतत्रयम् ।
रि-ग-धैश्च भिदा ज्ञेया साष्टाशीतिशतद्वयम् ॥ १६४ ॥

निषाद रहित मूर्च्छनाओं में ३६० भेद होते हैं। और ऋषभ, गान्धार तथा धैवतों करके २८८ भेद जानने चाहिये।

रि-म-धैश्चापि भेदाः स्युर्द्विषष्ट्या च युतं शतम् ।
ग-म-धैश्च भिदा ज्ञेया सप्तत्या च शतद्वयम् ॥ १६५ ॥

ऋषभ, मध्यम; और धैवतों के द्वारा भी १६२ भेद होते हैं। और गान्धार, मध्यम, तथा धैवतों के द्वारा २७० भेद जानने चाहिये।

इति भेदा नि-हीनानामशीत्या च सहस्रकम् ।
तथा भेदा ध-हीनानां खलोचनाग्नयः शशी ॥ १६६ ॥

निषाद रहित मूर्च्छनाओं के यह १०८० भेद होते हैं। तथा धैवत रहितों के १३२० भेद होते हैं।

एवं भेदाः प-हीनानां सहस्रत्रयमंख्यकाः ।
म-हीनानांमपि ज्ञेया वेदा वह्निः शशी क्रमात् ॥ १६७ ॥

इसी भाँति पंचम विहीनों के ३००० भेद होते हैं। मध्यम रहितों के भी (क्रम से) १३४४ भेद जानने चाहिये।

तथा भेदा ग-हीनानामब्धिः शरोऽथ रन्ध्रकम् ।
इति भेदा रि-हीनानां नेत्रकाशाग्नयः शशी ॥ १६८ ॥

और गान्धार से रहित भेद ४५० या ०५४ होते हैं। ऋषभ-रहित के १३५२ भेद होते हैं।

रि-ग-मानां तथा धानां नि-हीनासु विभेदतः ।
इति योगे भिदा ज्ञेया शून्यं वसुर्नभः शशी ॥ १६९ ॥

ऋषभ, गान्धार और मध्यमों के तथा धैवतों के निषाद-रहित विभेद से इस योग (जोड़) में १०८० भेद जानने चाहिये।

रि-ग-मानां तथा नीनां ध-हीनासु विभेदतः ।
इति योगे भिदा ज्ञेया शून्यं वेदा च चन्द्रमा ॥ १७० ॥

ऋषभ, गान्धार तथा मध्यमों और निषादों के धैवत रहित-विभेद से इस योग में १४४० भेद जानने चाहिये।

रि-गाणाञ्च म-धानाञ्च मूर्च्छनासु विभेदतः ।
योगे भेदाः प-हीनासु स्युरशीत्या सहस्रकम् ॥ १७१ ॥

ऋषभों तथा गान्धारों मध्यमों और धैवतों की पञ्चम विहीन-मूर्च्छनाओं में विभेद द्वारा योग में १०८० भेद होते हैं।

रि-गाणाश्च म-नीनाश्च प-हीनासु विभेदतः।
मूर्च्छनासु भिदा योगे खश्च वेदौ शशी पुनः ॥ १७२ ॥

ऋषभों, गान्धारों और मध्यमों तथा निषादों की पञ्चम-विहीन-मूर्च्छनाओं में विभेद से योग में १४४० भेद होते हैं।

रि-ग-धानां तथा नीनां प- हीनासु विभेदतः।
योगे तत्र भिदा ज्ञेया रसौ वह्निः शरः शशी ॥ १७३ ॥

ऋषभों, गान्धारों और धैवतों तथा निषादों की पंचम हीन-मूर्च्छनाओं में विभेद से वहां योग में १५३६ भेद जानने चाहिये।

रि-म-धानां तथा नीनां प-हीनासु विभेदतः।
योगे भेदास्तथा ज्ञेयाः सागरश्च रसौ वसुः ॥ १७४ ॥

ऋषभों, मध्यमों और धैवतों तथा निषादों की पंचम हीन-मूर्च्छनाओं में विभेद से योग में उसी भाँति ८६४ भेद जानने चाहिये।

ग-म-धानां तथा नीनां प-हीनासु विभेदतः ॥
योगे तत्र भिदा ज्ञेयाः शून्यं वेदौ शशी पुनः ॥ १७५ ॥

गान्धारों, मध्यमों और धैवतों तथा निषादों की पंचम हीन मूर्च्छनाओं में विभेद से योग में वहाँ १४४० भेद जानने चाहिये।

इति भेदाः प-हीनानां स्युरसौ पावको रसः ॥ १७६ ॥

रि- ग-नाश्च ध-नीनाश्च म-हीनासु विभेदतः।
इति योगे भिदा ज्ञेयाः रसौ वह्निः शरः शशी ॥ १७७ ॥

यह (सब) भेद पञ्चम विहीनों (षाडव मूर्च्छनाओं) के होते हैं। जिनकी संख्या ६३६६ है। ऋषभों, गान्धारों, तथा धैवतों एवं निषादों के मध्यम विहीन मूर्च्छनाओं में विभेद से इस योग में १५३६ भेद जानने चाहिये।

रि- म- धानां तथा नीनां गि-हीनासु विभेदतः।
इति योगे भिदा ज्ञेयाः सागरश्च रसौ वसुः ॥ १७८ ॥

ऋषभों, मध्यमों, और धैवतों तथा निषादों के गान्धार रहित-मूर्च्छनाओं में विभेद द्वारा इस योग (जोड़) में ८६४ भेद जानने चाहिये।

ग-म-धानां तथा नीनां रि-होनासु विभेदतः ।
इति योगे भिदा ज्ञेयाः खश्च वेदौ शशी पुनः ॥ १७९ ॥

गान्धारों, मध्यमों, और धैवतों तथा निषादों की ऋषभ-विहीन मूर्च्छनाओं में विभेद से इस योग में १४४० भेद जानने चाहिये।

रि-ग-म-ध-निषादानां योगे भेदा उदीरिताः ।
खरसमुनिबाणैश्च प-हीनासु मुनीश्वरैः ॥ १८० ॥

ऋषभों, गान्धारों, तथा मध्यमों और धैवतों एवं निषादों की पंचम रहित मूर्च्छनाओं में मुनीश्वरों ने योग में ५७९० भेद बताये हैं।

मूर्च्छनानां प्रभेदानां षाडवानाञ्च सर्वशः ।
खबाणशून्यचन्द्रैश्च पावकेन मितिर्भवेत् ॥ १८१ ॥

षाडव (६ स्वर वाली) मूर्च्छनाओं के कुल भेदों की पूरी (सम्पूर्ण) संख्या ३१०५० होती है।

यत्स्वरेण विहीना या मूर्च्छना या पृथक् पृथक् ।
तत्स्वरेणैव हीनाः स्युः प्रस्तारः षाडवाः क्रमात् ॥ १८२ ॥

जो मूर्च्छना जिस स्वर से विहीन होगी, उसी स्वर से विहीन उसके क्रमानुसार षाडव (षट् स्वर) प्रस्तार पृथक्-पृथक् होंगे।

सप्तशत्या सविंशत्या गुणितानां मितिर्भवेत् ।
शून्यत्रयं रसो नेत्रं सप्त वह्निरिति क्रमात् ॥ १८३ ॥

गुणित (गुणा किये हुए सर्व स्वर सम्बन्धि) मूर्च्छनाओं की मितिः (संख्या) ३७२९००० क्रम से यह ७२० के होती है।

औडवा अथ कथ्यन्ते शुद्धेषु विकृतेष्वपि ॥ १८४ ॥
द्वयोर्द्वयोः परित्यागात्क्रमाद्भेदा मनीषिणः ।
औडवानां विशुद्धानामवदन्पञ्चसप्ततिम् ॥ १८५ ॥

अब औडव (५ स्वरों की मूर्च्छनाएँ) कहते हैं, जो शुद्धों (तीव्रों) में भी हैं तथा विकृतों (कोमलों) में भी क्रम से दो-दो स्वरों के परित्याग (छोड़ने) से औडवों का तथा विशुद्धों का (उन औडवों का जिनमें केवल विशुद्ध स्वरों का ही प्रयोग है) विद्वानों ने भेद बताया है, जिन भेदों की संख्या ७५ है।

रि-भेदामत्र संगृह्य द्वाभ्यां द्वाभ्यां विवर्जनात् ।
भेदानपि विजानीयात्पञ्चाशदुत्तरं शतम् ॥ १८६ ॥

अब वहां (औडवों में) ऋषभों के भेदों को लेकर या जोड़ कर दो-दो के विवर्जित करने से १५० भेद जानने चाहिये।

ग-भेदा द्विशती ज्ञेया म-भेदा रि-समा मताः।
ध-भेदास्तत्समा ज्ञेया नि-भेदा ग-समा मताः ॥ १८७ ॥

गान्धारों के २०० भेद जानने चाहिये, तथा मध्यमों के भेद ऋषभ-समान अर्थात् १५० माने गए हैं। धैवतों के भेद भी उसके समान (बराबर) ही (१५०) जानने चाहिये, तथा निषादों के भेद भी गान्धारों के समान २०० माने गए हैं।

रीणां गानां प्रभेदाः स्युरशीत्या च चतुः शती।
रीणां मानांच भेदाः स्युः सप्तत्या च शतद्वयम् ॥ १८८ ॥

ऋषभों के, गान्धारों के ४८० भेद होते हैं। तथा ऋषभों और मध्यमों के २७० भेद होते हैं।

रीणां धानां तथा भेदास्तावन्तोऽत्रापि सम्मताः।
रीणां नीनां प्रभेदाः स्युः षष्ट्या युक्तं शतत्रयम् ॥ १८९ ॥

ऋषभों तथा धैवतों के, यहां भी उतने ही अर्थात्-२७० भेद माने गए हैं। और ऋषभों के तथा निषादों के ३६० भेद होते हैं।

ग-मानाश्च भिदा ज्ञेया सषञ्चाशच्चतुःशती।
तथा भेदा ग-धानाश्च षष्ट्या युक्तं शतत्रयम् ॥ १९० ॥

गान्धारों और मध्यमों के ४५० भेद जानने चाहिए। तथा गान्धार और धैवतों के ३६० भेद होते हैं।

ग-नीनाश्च भिदा ज्ञेया अशीत्या च चतुः शती।
म-धानाञ्च प्रभेदाः स्युः सप्तत्या च शतद्वयम् ॥ १९१ ॥

गान्धारों और निषादों के ४८० भेद जानने चाहिये। तथा मध्यमों और धैवतों के २७० भेद होते हैं।

म-नीनाञ्च भिदा ज्ञेया षष्ट्या युक्तं शतत्रयम्।
ध-नीनाञ्च प्रभेदाः स्युशीत्या च चतुः शती ॥ १९२ ॥

मध्यमों और निषादों के ३६० भेद जानने चाहिए। और धैवतों तथा निषादों के ४८० भेद होते हैं।

रि-ग-मानां भिदास्तत्र शून्यद्वन्द्वञ्च रन्ध्रकम्।
रि-ग-धानां प्रभेदाः स्युः शून्यं नेत्रं मुनिस्तथा ॥ १९३ ॥

ऋषभों, और गान्धारों तथा मध्यमों के ७०० भेद होते हैं। एवं-ऋषभों-गान्धारों तथा धैवतों के ७२० भेद होते हैं।

रि-ग-नीनां भिदा ज्ञेया खरसाक्षथ रन्ध्रकम्।
रि-म-धानां तथा भेदाः पञ्चोत्तरचतुःशती ॥ १९४ ॥

ऋषभों-गान्धारों तथा निषादों के ७९० भेद जानने चाहिये। और ऋषभों मध्यमों तथा धैवतों के ४०५ भेद होते हैं।

रि-म-नीनां प्रभेदाः स्युः स्वश्च वेदः शरस्तथा।
रि-ध-नीनां भिदा ज्ञेया शून्यं नेत्रं तथा मुनिः ॥ १९५ ॥

ऋषभों, मध्यमों तथा निषादों के ५४० भेद होते हैं। और ऋषभों, धैवतों तथा निषादों के ७२० भेद जानने चाहिये।

ग-म-धानां तथा भेदाः शरो मुनिस्तथा रसः।
ग-म-नीनां प्रभेदाः स्युः शून्यद्वन्द्वश्च रन्ध्रकम् १९६ ॥

गान्धारों, मध्यमों तथा धैवतों के ६७५ भेद होते हैं। एवं गान्धारों, मध्यमों और निषादों के ७०० भेद होते हैं।

ग-ध-नीनां भिदा ज्ञेया खरमाङ्कैर्विचक्षणैः।
म-ध-नीनां तथा भेदाः शून्यं नेत्रं तथा मुनिः ॥ १९७ ॥

गान्धारों, धैवतों तथा निषादों के बुद्धिमानों के द्वारा ९९० भेद जानने चाहिये और मध्यमों, धैवतों तथा निषादों के ७२० भेद होते हैं।

रि-गानाश्च म-धानाश्च भेदा नवशतानि च।
रि-ग-मानां भिदा नीनां खद्वयं लोचनं शशी ॥ १९८ ॥

ऋषभों, गान्धारों तथा मध्यमों, धैवतों के ९०० भेद होते हैं। और ऋषभों, गान्धारों एवं मध्यमों तथा निषादों १२०० भेद होते हैं।

रि-ग-धानाश्च नीनां स्युः खं वसुर्लोचनं शशी।
रि म-धानां भिदा नीनां शून्यं नेत्रं तथा मुनिः ॥ १९९ ॥

ग-मानाश्च ध-नीनां स्युः खद्वयं लोचनं शशी ॥ २०० ॥

ऋषभों, गान्धारों, एवं धैवतों के तथा निषादों के १२८० भेद होते हैं। ऋषभों मध्यमों एवं धैवतों के तथा निषादों के ७२० भेद होते हैं। गान्धारों, मध्यमों धैवतों और निषादों के १२०० भेद होते हैं।

औडवानाञ्च सर्वेषां मूर्च्छनानाम्मितिर्भवेत्।
सप्तदश सहस्राणि पञ्च पञ्चशतानि च ॥ २०१ ॥

सब औडव-(पाँच स्वर की) मूर्च्छनाओं की पूरी संख्या १७५०५ होती है।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां विहीनायां मूर्च्छनायां पृथक पृथक ।
ताभ्यामेव विहीनाः स्युः प्रस्तारा औडवा क्रमात् ॥ २०२ ॥

दो-दो (स्वरों) से विहीन (औडव) मूर्च्छनाओं में उन्हीं दो (स्वरों) से विहीन (उनके) औडव-प्रस्तार क्रम से पृथक-पृथक होते हैं।

सविंशत्या शतेनात्र गुणितानाम्मितिर्भवेत् ।
शून्यं नेत्रं शशी शून्यं नेत्रोदधीति संख्यया ॥ २०३ ॥

१२० से यहां (मूर्च्छनाओं को) गुणित करने पर ४२०१२० इतनी संख्या होती है।

यह मूर्च्छना प्रकरण (विषय वर्णन) यहाँ समाप्त हुआ। यह इतना विस्तृत विशद-वर्णन उसी समय का है जबकि भारत में—'तीव्रतर-तीव्रतम' अति तीव्र, अति कोमल, सुकारी, आदि स्वरों में आलाप कुलश संगीतज्ञ थे, और इतना मूर्च्छना समूह तथा भेद विभेदों का प्रकार भी उसी समय का है, किन्तु अब तो दुर्भाग्य वश इनका केवल नाम याद करने तथा हिसाब जोड़ने को रह गया है। इस प्रकरण में ग्रन्थकार ने—मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाओं के नाम तथा प्रकार एवं गान्धार ग्राम की मूर्च्छनायें तथा प्रकार और उनके देवता, रूप—वर्ण आदि कुछ आवश्यक बातें नहीं लिखी हैं। कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्युत्पत्ति जो श्लोकों में आ चुके हैं, तान, गमक, सम्पूर्ण, षाडव, औडव इत्यादि नहीं की है। अतः मैं इन्हें अन्य ग्रथों से संग्रहीत कर लिख देना उचित समझता हूँ। —भाष्यकारः

मध्यम ग्राम की मूर्च्छनायें—

मध्यमे स्याच्तु सौवीरी हारिणाश्वानतः परम् ।
स्यात्कलोपनता शुद्धमध्या मार्गी च पौरवी ॥
हृष्यकेत्यथ तासां तु लक्षणं प्रतिपाद्यते ।
मध्यस्थानस्थषड्जेन मूर्च्छनाऽऽरभ्यतेऽग्रिमा ॥ (रत्नाकरे)

मध्यम ग्राम की— १ सौवीरी, २ हरिणाश्वा, ३ कलोपनता, ४ शुद्ध मध्या, ५ मार्गी, ६ पौरवी, ७ हृष्यका, यह सात मूर्च्छनायें होती हैं। अब उनके लक्षण बताये जाते हैं। मध्यस्थानस्थ (मध्यसप्तक के) षडज से पहिली मूर्च्छना शुरू की जाती है।

भरत जी ने लिखा है—'मध्यमस्वरेण वैणवेन मूर्च्छनानिर्देशः' अर्थात्—'वेणवाचार्य्य' ने मध्यम स्वर से मूर्च्छना बताई है।

मतङ्ग जी ने भी कहा है—"मन्द्र तार विसिद्धयर्थं निर्देशो मूर्च्छनाश्रितः। सप्तकेन च मध्येन कार्य्यस्तद्गायकोत्तमैः ॥" अर्थात्—मन्द्र-तथा तार सप्तक की सिद्धि के

लिये अच्छे गायकों को चाहिये कि मध्य सप्तक से मूर्च्छना प्रारम्भ करें।

ब्रह्मेन्द्रवायुगन्धर्वसिंहद्रुहिणभानवः।
स्युरिमा मध्यमग्राममूर्च्छनादेवताः क्रमात्॥

१-ब्रह्माजी, २-इन्द्र, ३-वायु, ४-गन्धर्व, ५-सिंह, ६-प्रजापति, ७-सूर्य्य, यह सातों (मध्यम ग्राम की) मूर्च्छनाओं के क्रम से ७ देवता होते हैं।

षड्जग्राम की मूर्च्छनाओं के देवता—

यक्षरक्षोनारदाब्जभवनागाश्विपाशिनः।
षड्जग्रामे मूर्च्छनानामेताः स्युर्देवताः क्रमात्॥

१—उत्तरा मन्द्रा के-यक्ष, २—रजनी के-राक्षस, ३—उत्तरायता के-नारद, ४—शुद्धषड्जा के-ब्रह्माजी, ५—मत्सरीकृता के-नाग (सर्प), ६—अश्वक्रान्ता के अश्विनीकुमार, ७ अभिरुद्गता के-यमराज, यह षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाओं के ७ देवता हैं।

गान्धार (निषाद) ग्राम की मूर्च्छनायें—

नन्दा विशाला सुमुखी चित्रा चित्रावती सुखा।
आलापा चेति गान्धारग्रामे स्युः सप्त मूर्च्छनाः॥
ताश्च स्वर्गे प्रयोक्तव्या विशेषात्तेन नोदिताः।

१—नन्दा, २-विशाला, ३—सुमुखी, ४—चित्रा, ५—चित्रावती (रोहिणी) ६—सुखा, ७—आलापा, यह गान्धार ग्राम में ७ मूर्च्छनायें होती हैं और वे स्वर्ग में ही प्रयोग (इस्तेमाल) की जाती हैं, अतः यहां उनके विशेष (ण) विशेष वर्णन, (विस्तार) देवता आदि नहीं कहे हैं।

नारद मत की या ऋषियों की मूर्च्छनायें—

तासामन्यानि नामानि नारदो मुनिरब्रवीत्।
मूर्च्छनोत्तरवर्णाद्या षड्जग्रामेऽभिरुद्गता॥
अश्वक्रान्ता च सौवीरी हृष्यका चोत्तरायता।
रजनीति समाख्याता ऋषीणां सप्त मूर्च्छनाः॥
आप्यायनी विश्वहृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी।
मैत्री चन्द्रावती पित्र्या मध्यमे मूर्च्छना इमाः॥

उन (मूर्च्छनाओं) के दूसरे नाम नारदमुनि ने बताये हैं, षड्ज ग्राम में—१ (पहिली मूर्च्छना) उत्तरवर्णा, २ अभिरुद्गता, अश्वक्रान्ता, ४ सौवीरी, ५ हृष्यका, ६ उत्तरायता, ७ रजनी, यह ऋषियों की ७ मूर्च्छना कहलाती हैं। १ आप्यायनी, २ विश्वहृता, ३ चन्द्रा, ४ हेमा, ५ कपर्दिनी, ६ मैत्री, ७ चन्द्रावती (पित्रों की) यह मध्यम ग्राम की ऋषि-मूर्च्छनायें हैं।

मूर्च्छना और तानें!

रागों के स्वल्प-स्वरों को तानना विस्तृत करना, फैलाना, पसारना 'तान'

कहाते हैं। शुद्ध मूर्च्छनाएँ जोकि षाडव (षट् स्वरोपेत) एवं औडव (पञ्च स्वरोपेत) हों शुद्ध तानें होती हैं, उन्हें ही 'सरल तान' भी कहते हैं। यथा—

शुद्धश्च तानकं तावत्स्वराणां सरलीकृता।
आलोमश्च विलोमश्च क्रमात्सञ्जायते द्वयोः॥ (राग प्रवेशिका)

उसे ही सरल कृत या शुद्ध तान कहते हैं, जिसमें स्वरों का आरोहावरोह दोनों का क्रम से नियमित हो। वह कूट तानें होती हैं—

स्वराणां नियमो नास्ति षड्जाऽग्रे न यथार्षभः।
कूटतानं तमेवाऽऽहुर्गान्धाराऽग्रे न मध्यमः॥

जिन तानों में स्वरों का कोई खास नियम न हो, कि षड्ज के आगे ऋषभ या गान्धार के आगे मध्यम स्वर का प्रयोग होगा, उन्हें ही 'कूट तान' कहते हैं।

आयतं क्रियते यस्मादायत्तानमुदाहृतम्।
तानि सर्वाणि रागाङ्गविशेषेण विरञ्जते॥ (सङ्गीत मञ्जरी)

जिससे 'आयत' विस्तार किया जाता है उसे 'आयत्तान' कहते हैं। वे प्रायः हर प्रकार की तानें राग के अङ्ग को विशेष रूप से रँगती हैं।

"सङ्गीत-रत्नाकर" में कूट तानों की बाबत बताया है—

असम्पूर्णाश्च सम्पूर्णा व्युत्क्रमोच्चारितस्वराः।
मूर्च्छनाः कूटतानाः स्युस्तत्संख्यामभिदध्महे॥

मूर्च्छनाएँ चार प्रकारकी कूट तानें होती हैं। असम्पूर्ण-समग्रता रहित (औडव या षाडव) सम्पूर्ण (सात स्वरों वाली) बिना क्रम के उच्चारित स्वर ही कूट तान कहलाते हैं। जैसे—'स ऽ ग म रे प ग रे' इत्यादि। उनकी तादाद इस प्रकार है।

पूर्णाः पञ्चसहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च।
एकैकस्यां मूर्च्छनायां कूटतानाः सह क्रमैः॥
षट्पञ्चाशन्मूर्च्छनास्था पूर्णाः कूटास्तु योजिताः।
लक्षद्वयं सहस्राणि द्व्यशीतिर्द्वे शते तथा॥
चत्वारिंशत्तु संख्याता अथापूर्णान्प्रचक्ष्महे।

सम्पूर्ण तानें (सप्त स्वर जात) ५०४० होती हैं। ५६ मूर्च्छनाओं में रहने वाली क्रमानुसार प्रत्येक मूर्च्छना की कूट तानों की पूर्ण तथा कूट संख्या २८२१४० योजित की गई है।

षाडव शब्द की व्युत्पत्ति—

षड्वन्ति प्रयोगं ये स्वरास्ते षाडवा मताः।
षट्स्वरं तेषु जातत्वाद्गीतं षाडवमुच्यते॥

जो छः स्वर शुद्ध या विकृत, प्रयोग जात्यादि को 'षड्वन्ति' अर्थात्—षट् ६ स्वर प्रयोग को अवन्ति-रक्षा करते हैं या प्रवर्त्तित होते हैं, उन्हें षाडव स्वर कहते हैं।

अब 'औडुव' स्वर की व्युत्पत्ति करते हैं (जिसे आधुनिक गायक प्रायः औढव, ओधप, ओड़म, वौड़म जाने क्या २ अशुद्ध बोला करते हैं।)

वान्ति यान्त्युडवोऽत्रेति व्योमोक्तमुडुवं बुधैः ।
पञ्चमं तच्च भूतेषु पञ्चसंख्या तदुद्भवा ॥
उ(औ)डुवी सास्ति येषाञ्च स्वरास्ते त्वौडुवा मताः ।
तेषु जातन्तु यद्गीतं तदौडुवितमुच्यते ॥

'उडु' नाम नक्षत्रों या तारों का है, जैसे—'उडुगण' तारों का समूह।

पृथ्वी आदि महाभूत या पञ्च भूतों (तत्वों) में आकाश की गणना पाँचवीं है, जैसे—१-पृथ्वी, २-जल, ३-तेज (अग्नि), ४-वायु, ५-आकाश। अतः उसकी पञ्चम गणना से 'पञ्च-संख्या' तदुत्पन्न द्रव्याश्रिता होने पर 'उडुवी' या 'औडुवी' यह संज्ञा होती है। औडुवी (पाँचवीं) संख्या जिनकी है, उन सप्त नियमित किन्हीं २ स्वरों के लोप में औडुव माने गए हैं। उन 'औडुव' स्वरों में जब कोई गीत (राग) उत्पन्न होता है उसे 'औडुवित' कहते हैं।

'तत्सम्बन्धादौडुवं च पञ्चस्वरमिदं विदुः' (रत्नाकरे)

अर्थात्—उस पांच स्वर वाले गीत के सम्बन्ध से औडुव और पञ्च स्वर यह जाना जाता है।

इति मूर्च्छना (प्रकरण)

अथ स्वर प्रस्तारः

प्रथमस्य द्वितीयस्यावृत्तिरेका स्वरस्य च ।
तृतीयस्य द्विरावृत्तिः स्वरस्यात्र सुनिश्चितः ॥ २०४ ॥

पहले तथा दूसरे स्वर की एक आवृत्ति और तीसरे स्वर की २ या दूसरी आवृत्ति, यहां यह निश्चित (तय) किया हुआ है ।

चतुर्थस्य षडावृत्तिः पञ्चमस्तच्चतुर्गुणः ।
[illegible]: षष्ठः सप्तमः षड्गुणस्ततः ॥ २०५ ॥

चौथे स्वर की ६ आवृत्ति तथा पाँचवां स्वर उससे (चौथे से) चौगुना एवं पाँचवें से पचगुना छटवां स्वर और उस छटवें से छः गुना सातवां स्वर जानना चाहिये ।

चलितानां स्वराणान्तु यथोचितक्रमो भवेत् ।
इति पंचसहस्राणि चत्वारिंशद्युतानि च ॥ २०६ ॥

और चलने (चलित) स्वरों का तो जैसा (जहां) ठीक हो वैसा ही सिलसिला होता है । यह ५०४०—

पूर्णानां षाडवानान्तु सप्तशतानि विंशतिः ।
औडवानान्तु विंशत्या शतं भेदान्बुधा जगुः ॥ २०७ ॥

पूर्ण (सप्त) स्वरों के तथा षाडवों के ७२० एवं औडव स्वरों के १२० भेद पण्डितों ने बताए हैं ।

चतुर्विंशतिभेदाः स्युश्चतुर्णां तत्र निश्चिताः ।
षड्भेदाः स्युस्त्रयाणान्तु द्वयोर्द्वावेव निश्चितौ ॥ २०८ ॥

चारों के चौबीस भेद वहां निश्चित किए गए हैं और तीन के ६ भेद होते हैं, तथा दो के दो ही भेद निश्चित हैं ।

एकस्यैको भवेद्भेदः प्रस्तारा ईदृशा मताः ।
नष्टोद्दिष्टप्रबोधार्थं खण्डमेरुरथोच्यते ॥ २०९ ॥

एक (स्वर) का एक ही भेद होता है, इस प्रकार से प्रस्तार माने गए हैं । अब हम नष्ट-उद्दिष्ट को जानने के लिए 'खण्ड मेरु' कहते हैं ।

समाद्यं कान्त्यकोष्ठः स्याद्वामे हीनास्ततो भवेत् ।
आद्यपंक्त्याद्यकोष्ठेषु लिखेदेकं परेषु खम् ॥ २१० ॥

एक ऐसा कोष्ठक बनाना चाहिये जिसमें कि आदि में (पहिले) वा ऊपर ७ स्थल (कोष्ठक) या कोठरी हों, तथा अन्त में (नीचे) १ शेष रह जाय और उसे बाईं तरफ़ से हीन (कम) करना चाहिये । कोष्ठक की पहिली (ऊपर की) पंक्ति में पहिले खाने में १ लिखना चाहिये, शेष सब खानों में ० शून्य लिखना चाहिये ।

आद्यकोष्ठे द्वितीयस्य पंक्तावेकं लिखेदपि ।
पंक्तिपृष्ठास्तिसृष्वन्तु कोष्ठस्याङ्कगुणं न्यसेत् ॥ २११ ॥

दूसरी पंक्ति के पहले कोष्ठक में १ ही लिखना चाहिये । तथा कोष्ठक के ऊपर की तिरछी पंक्तिओं में अङ्क (नव) गुणा करके रखने चाहिये ।

शून्येषु लोष्टकान्दत्त्वा मूलक्रमं ततो लिखेत् ।
उद्दिष्टं तदधो कृत्वा ततो लोष्टस्य चालनम् ॥ २१२ ॥

(ऊपर के) शून्य (खानों) में लोष्टकों (स्वर चिन्हों) को देकर फिर मूल-क्रम लिखना चाहिये । उसके नीचे 'उद्दिष्ट' करके फिर स्वर का सञ्चालन करना चाहिये ।

उद्दिष्टान्तस्वरो मूलक्रमस्यान्त्यात्क्रियत्तमः ।
तावत्संख्याविशिष्टे च कोष्ठे लोष्टकमाक्षिपेत् ॥ २१३ ॥

'उद्दिष्ट' जिसके जानने की इच्छा (उद्देश्य) हो, के अन्त का स्वर मूल के क्रम के अन्त के स्वर से कौनसा है, यह जानकर उतनी ही संख्या के बचने पर कोष्ठक में लोष्टक (ज्ञातव्य स्वर) लिखना चाहिये ।

लोष्टचालनमन्त्यात्स्याल्लब्धंत्यक्त्वाक्रमो भवेत् ।
अन्तयोरुभयोरेको लोष्टस्य चलनं न हि ॥ २१४ ॥

अन्त के स्वर से लोष्ट का चालन होता है, लब्ध (शेष + अविशिष्ट) को छोड़-कर यह क्रम होता है । दोनों के अन्त में लोष्ट का चलना एक नहीं होता है । नियम से नीचे फिर उसके नीचे क्रम से ऐसी बनी पंक्तियों में से चौथी पंक्ति में शून्य के

कोष्ट में स्थित लोष्टक देना चाहिये। इसके पीछे लब्ध को यानी कोष्ट-स्थित प्राप्त अङ्क को जैसे—ऋषभ को छोड़कर क्रम होता है। शेष (बाकी) स्वरों का 'सगम' ऐसा क्रम होता है।

फिर उद्दिष्ट में भी लब्ध के छोड़ने से 'म ग स' ऐसा उद्दिष्ट होता है। इसके पश्चात् उद्दिष्ट के अन्त का षड्ज पहले कही हुई रीति से तीसरा होता है, इसलिए तीसरी पंक्ति के शून्य स्थित लोष्टक को नीचे तीसरे (खाने) जिसमें कि चार का अङ्क है, देना चाहिये। तो फिर षड्ज के लब्ध होने पर उसको भी छोड़कर 'ग म' ऐसा क्रम होगा। 'मग' ऐसा उद्दिष्ट भी होता है। फिर उद्दिष्ट के अन्त के गान्धार के प्रथम कही रीति द्वारा दूसरा होने से दूसरी पंक्ति-शून्य स्थित लोष्टक को नीचे दूसरे कोष्ट (खाने) में जिसमें कि एक का अङ्क है, देना चाहिये। फिर मूल-क्रम तथा उद्दिष्ट इन दोनों में शेष बचे हुए मध्यम के एक होने से पहिली पंक्ति के नीचे कोष्ट (खाने) का अभाव होने से मौलिकाङ्क (मूल-क्रम के अङ्क में) स्थित लोष्ट नहीं चलता है। फिर जहाँ मूल क्रम में तथा उद्दिष्ट तान में स्वरों की अन्तिमता आदि से साम्य (बराबरी) होती है तो वहाँ भी लोष्ट नहीं चलता है और ऐसा होने पर लोष्ट से घिरे अङ्क के संयोग से उद्दिष्ट की संख्या होती है, पूर्व कथित 'म ग स रि' इसकी १८ संख्या होती है, इसी भांति सब तानों में जानना चाहिये।

मूलैकाङ्कं गृहीत्वैव लोष्टाक्रान्ताङ्कमेलने।
उद्दिष्टस्य मितिर्ज्ञेया तस्यामुद्दिष्टता स्मृता॥ २१५॥

मूल के एक अङ्क को लेकर ही लोष्ट से घिरे अङ्क के मिलाने में उद्दिष्ट की संख्या जाननी चाहिये। उसी (संख्या) में उद्दिष्टता कहीगई है।

रूपाभावेन नष्टं स्यात्संख्यामात्रपुरःसरम्।
यैरङ्कैर्नष्टसंख्या स्यान्मूलैकाङ्कसमन्विताः॥ २१६॥

रूप के अभाव (न होने) से नष्ट संख्या मात्र आगे होता है, जिन अङ्कों के द्वारा मूल के एक अङ्क के साथ नष्ट संख्या होती है।

तेष्वेवात्र क्षिपेल्लोष्टं लोष्टस्थानमितिस्वरः।
अवरोहक्रमेणैव मूलं त्यक्त्वा क्रमो भवेत्॥ २१७॥
अथवा लोष्टसंख्यान्त्यो लोष्टस्थानं स्वरस्य च॥२२८॥

उन्हीं अंकों में यहाँ लोष्ट देना चाहिये। यह लोष्ट का स्थान स्वर होगा। अवरोह के क्रमानुसार ही मूल को छोड़ कर क्रम होता है। अथवा लोष्ट संख्या का अन्तिम लोष्ट का स्थान स्वर का होता है।

खण्डमेरु (चित्र)

स	रि	ग	म	प	ध	नि
१	०	०	०	०	०	०
	१	२	६	२४	१२०	७२०
		४	१२	४८	२४०	१४४०
			१८	७२	३६०	२१६०
				९६	४८०	२८८०
					६००	३६००
						४३२०

इति मूर्च्छना-प्रस्तार-नष्टोद्दिष्ट-प्रकरणम् (समाप्त)

ॐ अथ वर्ण लक्षणम् ॐ

गान क्रियोच्यते वर्णः स चतुर्धा निरूपितः ।
स्थाय्यारोह्यवरोही च संचारीत्यथ लक्षणम् ॥ २१६ ॥

गायन (सङ्गीत) की क्रिया (शैली) का वर्ण रूप से अर्थात् स्वरों के पदादि-वर्णन करने से या विस्तार करने से वह 'वर्ण' कहलाता है। जो कि चार प्रकारों से निरूपित किया या बताया गया है। उनमें पहिला 'स्थायी' (टिकाऊ) एक जगह या एकसा रहने वाला, दूसरा—आरोही-नीचे ऊपर चढ़ने वाला, तीसरा—अवरोही-ऊपर से नीचे उतरने वाला, चौथा—सञ्चारी-सम्यक् रूप से या ठीक से (नियमित) चरण करने (चलने) वाला, अब मैं उनके लक्षण कहता हूं। इन्हें ही 'सङ्गीत-सोपान' में प्रकारान्तर से बताया है।

ते स्थायी त्वस्थायी त्वन्तरश्चैवान्तरेणवा ।
आभोगस्त्वन्तिम इति सञ्चारी त्वग्रचारिणि ॥

वे वर्ण या पद (चरण) चार होते हैं। १ स्थायी—एक स्थान पर रहने वाला, २ अस्थायी या अन्तरः—जिसमें अन्तर (फ़र्क़) पड़ता रहे, ३ सञ्चारी—जो गायन को सम-आगे, चार करे-बढ़ाये, अग्रचारि—ऊपर तार-सप्तक के स्वरों पर ले जाये, ४ आभोगः—'आसमन्ताद्भुज्यतेति' गायन का जिसमें 'अस्परितः' बिलकुल भोग हो चुके (समाप्त हो जाये) वह चौथा चरण कहलाता है (कोई २ आभोग को तीसरा चरण भी कहते हैं।)

स्थित्वा स्थित्वा प्रयोगः स्यादेकैकस्मिन्स्वरे पुनः ।
स्थायी वर्णः स विज्ञेयः परावन्त्यर्थनामकौ ॥
एतत्सम्मिश्रणाद्वर्णः सञ्चारी परिकीर्त्तितः ॥ २२० ॥

एक-एक स्वर पर ठहर-ठहर कर फिर प्रयोग हो, उसे स्थायी वर्ण जानना चाहिये। जैसे आदि में—' सा सा सा, री री री ', इस भाँति प्रयोग होता है। दूसरे में ' सा री मा मा ' इत्यादि रूप होते हैं।

पर = दूसरे दोनों आरोही, अवरोही अनु अर्थ नामक, अनु = जिसके नाम में पीछे अर्थ हो—स रि ग म प ध नि सं, आरोही तथा सं नि ध प म ग रि सं, अवरोही होते हैं। इन तीनों से मिश्रित वर्ण 'सञ्चारी' कहाता है।

यथा—' सारी सारीगा सनिधा सारीगा।'

* इति वर्ण लक्षणम् (समाप्तम्) *

क्रमेण स्वरसन्दर्भमलङ्कारं प्रचक्षते ।
तस्य भेदास्तु भूयांसस्तत्र स्थायिगतान्ब्रुवे ॥ २२१ ॥

क्रमानुसार स्वरों का सन्दर्भ-सङ्गठन, सुगुम्फन, जो भली भांति गूँथे गए हों वे अलङ्कार कहलाते हैं। किसी चीज़ के सजाने को अलङ्कार कहते हैं, जिनके द्वारा राग सजाए जायें वह तान, पल्टे, आलाप, अलङ्कार होते हैं। उन अलङ्कारों के भेद तो बहुत से हैं, किन्तु जो अधिक प्रसिद्ध हैं वह कहता हूँ।

जैसे कि प्रकारान्तर से भरत जी ने कहा है—

शशिना रहितेव निशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषितेव कान्ता गीतिरलंकारहीना स्यात् ॥

जैसे कि विना चन्द्रमा के रात अच्छी नहीं लगती और विना पानी के नदी की शोभा नहीं होती तथा विना फूलों की बेल नहीं सुहाती, एवं विना भूषणों के स्त्री की शोभा नहीं होती है, वैसे ही अलङ्कारों से हीन गीत की शोभा नहीं होती।

येषामाद्यन्तयोरेकस्वरास्ते स्थायिवर्णगाः ।
प्रसन्नादिः प्रसन्नान्तः प्रसन्नाद्यन्तसंज्ञकः ॥ २२२ ॥

जिन अलङ्कारों के आदि और अन्त में एक ही स्वर हो अर्थात् जिस स्वर का प्रयोग शुरू में किया गया हो उसी का अन्त में भी, वह स्थायी वर्ण के अलङ्कार होते हैं, जो संख्या में ७ होते हैं। १-प्रसन्नादि, २-प्रसन्नान्त, ३-प्रसन्नाद्यन्त, तथा—

ततः प्रसन्नमध्यः स्यात्पंचमः क्रमरेचितः ।
प्रस्तारोऽथ प्रसादः स्यान्मप्तैते स्थायिवर्णगाः ॥ २२३ ॥

४-प्रसन्न मध्य, ५-पाँचवाँ 'क्रमरे चित' ६-प्रस्तार, ७-प्रसाद, यह सात स्थायी वर्ण के अलङ्कार हैं।

प्रसन्नो मन्द्रहर्य्यायः प्रसन्नाद्यस्तदाद्यदः ।
प्रसन्नान्तस्तदन्तः स्यान्मन्द्राद्यन्तस्तृतीयकः ॥
चतुर्थो मन्द्रमध्यः स्यात्क्रमाच्च क्रमरेचितः ॥ २२४ ॥

मन्द्र (सप्तक) से पर्य्याय (सप्तक) रखने वाला 'प्रसन्न' होता है। तथा उस (मन्द्र) के आदि का 'प्रसन्नाद्य' होता है। एवं मन्द्र के अन्त का 'प्रसन्नान्त' कहलाता है, तथा तीसरा मन्द्र सप्तक के आदि तथा अन्त पूर्वक 'प्रसन्नाद्यन्त' होता है मन्द्र के मध्य का चौथा 'प्रसन्न-मध्य' एवं क्रम से 'क्रमरेचित' कहलाता है। जो क्रमानुसार चलता है।

प्रस्तारोऽन्वर्थनामा स्यात्प्रसादस्तु प्रसन्नता।
ऊर्ध्वरेखाशिरस्कागे मन्द्रो बिन्दुशिरा भवेत् ॥ २२५ ॥

प्रस्तार नामक अलङ्कार के नाम के अनु = पीछे ही अर्थ रहता है. अर्थात् 'प्रस्तार' वह होता है, जिसमें विस्तार, फैलाव किया जाय, जिसमें स्वरों का पर्य्याय-रूप में प्रसरण हो और जिसके सुनने से प्रसन्नता हो, वह सातवाँ अलङ्कार 'प्रसाद' होता है ।

भद्रो नन्दो जितः सोमो ग्रीवो भालः प्रकाशकः ।
इत्यन्यान्यपि नामानि मुनयः संगिरन्ति हि ॥ २२६ ॥

१ भद्र, २ नन्द, ३ जित, ४ सोम, ५ ग्रीव, ६ भाल, ७ प्रकाशक, यह तथा और भी बहुत से नाम (अलंकार) मुनि लोग बताते हैं। जिसमें पहला 'भद्र' अलङ्कार कहते हैं--

यमारभ्याग्रिमं गत्वा पुनः पूर्वस्वरं वदेत् ।
भद्रमंज्ञमलङ्कारमान्जनेयोऽवदच्छुधीः ॥ २२७ ॥
एकैकस्य स्वरस्यात्र हीनादेव क्रमोभवेत् ।

जिसको आरम्भ करके आगे के स्वर पर जाकर फिर पहले का स्वर बोला जाता है। मन्द्र--'स' से आरम्भ किया तथा अग्रिम स्वर रि पर जाकर फिर पूर्व स्वर 'स' बोला तो 'सरिस' यह रूप हुआ, इसे ही 'भद्र' संज्ञा (नाम) वाला अलंकार सुधी-अच्छी बुद्धि वाले, आञ्जनेय-अञ्जनी के पुत्र हनुमान जी.अवदत-बताते हैं। यहां एक-एक स्वर के त्याग से ही यह क्रम होता है। पाठकों को समझ लेना चाहिये कि सब अलङ्कार जिन्हें आज कल 'पल्टे' कहते हैं मध्य सप्तक के षडज से चलकर तार के षडज तक बजेंगे, और ऐसा ही लिपि-नियम मूल संस्कृत पुस्तक का भी है। इन अलङ्कारों को सब स्वर शुद्ध (तीव्र) करके तथा मध्यम कोमल बेलावली मेल (बिलावल) थाट में बजाने चाहिये सुषिर वाद्य (हारमोनियम) में इसी विधान से सुविधा होगी, रुचि अनुकूल दूसरे रागों के थाटों पर भी (उसी थाट के मुताबिक कोमल-तीव्र स्वर लगा कर) बजा सकते हैं--भद्रालङ्कार इस प्रकार है--

स रि स। रि ग रि। ग म म। म प म।
प ध प। ध नि ध। नि स नि। स नि स।

इसी प्रकार अवरोहण भी होता है यथा--

स नि स। नि ध नि। ध प ध। प म प।
म ग म। ग रि ग। रि स रि। स नि स।

इति भद्रः। प्रसन्नादिः ॥ १ ॥

नन्दः स्याद्रूपकेणात्र स्वरद्वन्देन पूर्ववत् ॥ २२८ ॥

नन्दालङ्कार रूपक ताल से दो दो स्वर के प्रयोग से पूर्ववत्-पहले के समान पूर्ण स्वर पर लौटने से होता है।

सस रिरि सस । रिरि गग रिरि ।
गग मम गग । मम पप मम ।
पप धध पप । धध निनि धध ।
निनि सस निनि । सस निनि सस ।

(इसी भांति अवरोही जानना)

इतिनन्दः । प्रसन्नान्तः ॥ २ ॥

जितः स्याल्लघुकालेन स-ग-रि-सन्न्यसं क्रमः ।

जित-नामक अलङ्कार का 'स ग रि स' यह क्रम होता है । पहिले (षड्ज) के बाद तीसरा (गान्धार) फिर दूसरा (ऋषभ) फिर पहिला (षड्ज) इसी क्रम से शेष पल्टे भी जानने चाहिये । यहां चार स्वरों की चार ही मात्रा या काल बनाये हैं । "तालः काल क्रिया मानम्" । (अमरकोषः)--काल की क्रिया का मान (नाप) ताल कहाता है । उपरोक्त अलङ्कार में कथित १ लघुकाल । चारमात्रा 'स ग रि स' जिसमें २ तालें बनती हैं, १ तो सङ्गीत रत्नाकर की--

"लघ्वादितालो लोकेऽसौ रासः दौ लो द्वितीयकः ।

अर्थात्--१ लघु (।, मात्रा ४) होने से 'आदितालं' होती है, सब से पहिली का नाम 'आदि' है , इससे भाव यह है कि चार मात्रा से कम की ताल नहीं होती है । यही 'आदि ताल' लोक में 'रास ताल' नाम से प्रसिद्ध है । कोई कोई 'एक ताल' को ही आदि ताल कहते हैं । कोई एक मात्रा की 'यक तालो' ताल २ मात्रा की 'पट ताल', कहरवा, कव्वाली, तथा ३ मात्रा की 'मदन ताल' बनाते हैं । चार मात्रा (विलम्बित) में बजने वाले १ धीमा, २ जलद, ३ पन्जाबी, ४ अद्धा, आदि ठेके होते हैं । दूसरी 'नट ताल' ४ मात्रा की है ।

स ग रि स। रि म ग रि। ग प म ग।
म ध प म। प नि ध प। ध स नि ध।

इति जितः प्रसन्नाद्यन्तः ॥ ३ ॥

गुरुकालेन सोमः स्यात् स्वरद्वन्द्वेन पूर्ववत् ॥ २२९ ॥

'सोम' अलङ्कार पूर्ववत्-पहिले के समान स्वर द्वन्द्व-दो दो स्वरों के प्रयोग से १।१ छोड़ कर जैसे 'सस गग रिरि सस' होता है । इसमें गुरु काल ८ एक गुरु आठ मात्रा होती हैं । यहां ८ मात्रा वाली कितने ही तालें हो सकती हैं ।

सस, गग, रिरि सस । रिरि मम, गग रिरि ।
गग पप, मम गग । मम धध, पप मम ।
पप निनि, धध पप । धध सस, निनि धध ।

इति सामः । प्रसन्नमध्यः ॥ ४ ॥

स-गौ रि-गौ समुच्चार्य्य म-गौ रि-मौ तथैव च ।

ग्रीवं लघुद्वयेनात्र हनूमानवदच्छुभं ॥ २३० ॥

सग रिग, उच्चारण करके फिर उसी भांति मग रिम (बोले) तो 'ग्रीवालंकार' होता है। ऐसा बुद्धिमान हनुमान जी कहते हैं। इस अलङ्कार को दो लघु ।, ।, मात्रा ८ की उपरोक्त श्लोक की किसी भी ताल में बजा सकते हैं। कहरवा, कव्वाली आदि ।

स ग रि ग म ग रि स । रि म ग म प म ग रि ।
ग प म प ध प म ग । म ध प ध नि ध प म ।

इतिग्रीवः । क्रमरेचितः ॥ ५ ॥

स-गौ रि-मौ [illegible] म-गौ रि-मौ तथैव च ।

द्रुताभ्यां लघुकालेन भालं वदति मारुतिः ॥ २३१ ॥

स ग रि म बोल कर फिर उसी भाँति म ग रि स बोले तो यह 'भाल' नामक अलंकार होता है। ऐसा मारुत् (पवन) के पुत्र हनुमान जी कहते हैं। यहां दो द्रुत ००, एक लघु ।, कुल ८ मात्रा की कोई भी ताल बताते हैं ।

स ग रि म, म ग रि स । रि म ग प, प म ग रि ।
ग प म ध, ध प म ग । म ध प नि, नि ध प म ।
प नि ध स, स नि ध प ॥

इतिभालः । प्रस्तारः ॥ ६ ॥

सौरी-गौ मो ग-री गश्च रि-साविति स्वरैश्च तैः ।

हनुमानद्रुतालेन प्रकाशालंकृतमब्रवीत् ॥ २३२ ॥

दो षड्ज, दो ऋषभ, दो गान्धार एक मध्यम, तथा १ गान्धार १ ऋषभ, फिर १ गान्धार १ ऋषभ १ षड्ज इस प्रकार क्रम से स्वर हों, जैसे—'सस रिरि गग म ग रि ग रि स' तो हनुमान जी उसे 'प्रकाश' अलङ्कार बताते हैं। इसमें 'अड्डु' ताल होनी चाहिये। "अड्डुताली दो लघु द्वयम । ३०३। इसमेवो चिरे तालं केचिन्त्रिपुट संज्ञया ।" इत्यड्डुताली । (सङ्गीत रत्नाकरे)

अर्थात्—अड्डुताली ताल में १ द्रुत ०, २ लघु ।, कुल १० मात्रा हैं। इसी (अड्डुताल) को कोई २ 'त्रिपुट' संज्ञा (नाम) वाली ताल भी कहते हैं। तथा कोई आड़ा (चौ) ताल को ही 'अड्डुताल' कहते हैं, किन्तु उसमें तो १४ मात्रायें होती हैं, और इसमें १० ही। अलङ्कार स्वरसम्य मात्रायें १२ हैं, २ मात्रायें द्रुत करके 'त्रिपुट' की किसी भी ताल (अङ्ग) में मिला कर बजा सकते हैं। तथा-चौताल (ध्रुवपद) एवं इकताली ताल की १२ मात्रायें उपरोक्त अलङ्कार में सर्वथोपयुक्त बैठती हैं। जैसे-चौताला सम से—

+	०	१	०	२	३
स म	रि रि	ग ग	म ग	रि ग	रि स
१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०	११ १२ (कुल १२ मात्रा)

सस रिरि गग मगरि गरिस ।
रिरि गग मम पमग मगरि ।
मम पप धध निधप धपम ।
पप धध निनि सनिध निधप ।

इति प्रकाशः । प्रसादः ॥ ७ ॥

यत्र च नोच्यते कालः स्वरैस्तत्र तु बोध्यते ।
स्यातां विस्तीर्ण निष्कर्षौ विन्दुरभ्युच्छ्रयः परः ॥ २३३ ॥

जहाँ कि काल (मात्रा तालादि) नहीं बताया जाता है, वहाँ (उस अलङ्कार में) स्वरों के द्वारा (काल) जाना जाता है. जैसे कि पहिले भद्रालङ्कार में कोई काल नहीं बताया जाता है तो उसके स्वर की 'सरिस' यह तीन मात्रा लेकर दून में ६ करके 'यति लग्न' या दादरा ताल हो सकती है. अलङ्कार के ८ चरण होने से 'धा धि ना धा ति ना' की ४ आवृत्ति ठीक बैठती हैं। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना चाहिये। अब आगे आने वाले अलङ्कारों की सूची बताते हैं—

१—विस्तीर्ण, २—निष्कर्ष, ३—विन्दु, ४—अभ्युच्छ्रय, इससे आगे—

हसितं प्रेङ्खिन्नाक्षिप्तौ सन्धिप्रच्छादनस्तथा ।
उद्गीतोद्वाहितौ तद्वत् त्रिवर्णो वेणिरित्यत्री ॥ २३४ ॥

५—हसित, ६—प्रेङ्खित, ७—आक्षिप्त, ८—सन्धि प्रच्छादन, ९—उद्गीत, १०—उद्वाहित, ११—त्रिवर्ण, १२—वेणि, यह सब। इस श्लोक के बाद प्रसङ्ग-भङ्ग हो जाता है, मालूम पड़ता है कि इसके पश्चात् कुछ और भी होगा तदनन्तर पहिले अलङ्कार 'विस्तीर्ण' का लक्षण कहा होगा। अतः 'सङ्गीत रत्नाकर' में इसके बाद यह श्लोकार्ध है—

द्वादशाऽऽरोहिवर्णस्थालङ्काराः परिकीर्त्तिताः ।

ऊपर के श्लोक के अन्तिम शब्द से प्रसङ्ग भी ठीक बैठता है, यानी (इत्यमी) यह सब आरोही वर्ण में रहने वाले १२ अलङ्कार बताए गए हैं।

मूर्च्छनादेः स्वराद्यत्र क्रमेणारोहणं भवेत् ।
स्थित्वा स्थित्वा स्वरैर्दीर्घैः सविस्तीर्णोऽभिधीयते ॥ २३५ ॥

मूर्च्छना के आदि स्वर (स) से जहाँ ठहर-ठहर कर (रुक-रुक कर) दीर्घ

(बड़े) स्वरों के द्वारा (२+२ मात्रा में) क्रम से आरोहण हो तो वह 'विस्तीर्ण' नामक अलङ्कार कहा जाता है। जैसे—(विलम्बित लय)

सा री गा मा पा धा नी सा ।

इति विस्तीर्णः ॥ १ ॥

ह्रस्वैः स्वरैः स निष्कर्षो द्विद्विरुक्तैर्निरन्तरैः ।

छोटे स्वरों के द्वारा यानी पूर्ववत् एक-एक मात्रा के स्वरों में दो-दो बार प्रयोग किये जाने पर लगातार, यानी बीच में न रुक कर (बोला जाय) तो वह निष्कर्ष अलङ्कार होता है।

ससस रिरिरि गगग ममम पपप धधध निनिनि ससस ।

इति निष्कर्षः ॥ २ ॥

त्रिश्चतुर्वा स्वरोच्चारो गात्रवर्णमिमं विदुः ।
निष्कर्षस्यैव द्वौ भेदौ केचिदेतौ बभाषिरे ॥ २३६ ॥

तीन-तीन या चार-चार स्वरों का उच्चारण करना इसे 'गात्र वर्ण' कहते हैं। कोई-कोई यह दोनों भेद निष्कर्ष के ही हैं, ऐसा बताते हैं।

ससस, रिरिरि, गगग, ममम, पपप, धधध, निनिनि, ससस ॥ १ ॥

अथवा—

ससससस, रिरिरिरि, गगगग, मममम, पपपप, धधधध, निनिनिनि, सससस ।

इति गात्र वर्णः ॥ २ ॥

'आद्यं दीर्घत्रयं प्राह द्वितीयं ह्रस्वमेव च ।
विन्दुर्विन्दुत्रयेणापि हनूमान्सार्द्ध विन्दुना ॥ २३७ ॥

आदि का स्वर (स) तीन बार दीर्घ (द्विमात्रिक) तथा द्वितीय (रि) ह्रस्व १ मात्रा का हो तो उसे हनूमान जी 'विन्दु' अलङ्कार कहते हैं। जो 'विन्दु त्रयेण, सार्ध विन्दुना अपि' अर्थात् ०००, ०, कुल तीन द्रुत एक द्रुत विराम, अर्थात्—६ मात्रा 'महेश' या 'मत्त ताल' में होता है। यथा—

\+ ३ ० १
धा गे तू ना क त्ता धी धी ना ।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ (कुल ९ मात्रा)

१ "प्लुतं ह्रस्वं प्लुतं ह्रस्वं प्लुतं ह्रस्वं प्लुतं तथा ।" (इति रत्नाकरे)

अथवा ६ मात्रा की 'अङ्ग ताल' मृदङ्ग सागर की या षट्ताली, वसन्त, विष्णु या 'सङ्गीत रत्नाकर' की "गारुगिस्तु चतुर्द्रुती ॥ २६५ ॥ विरामान्ता बुधै रुक्ता" ०००, ६, इति गारुगिः' ६ मात्रा, ऐसी किसी भी ताल में हो सकता है।

सासासारि, रीरीरीग, गागागाम, मामामाप, पापापाध, धाधाधानि, नीनीनीस।

इति विन्दुः ॥ ३ ॥

एकान्तरस्वरारोहमाहुरभ्युरभ्युच्छ्रयं बुधाः ॥ २३८ ॥

एक स्वर का अन्तर देकर (छोड़कर) आरोहण करने पर पण्डितों ने उसे 'अभ्युच्छ्रय' अलङ्कार बताया है। सङ्गीत रत्नाकर में इसे 'अभिउच्चय' बताया है।

'पारिजात' में इसका उदाहरण नहीं है। अतः रत्नाकर से लिया है। यथा—

स ग प नि । रि म ध स ।

इत्यभुच्छ्रयः ॥ ४ ॥

यत्रैकोत्तरवृद्धाभिरावृत्तिभिरुदीरिताः ।
आरुह्यन्ते स्वराः प्राह हसितं तं शिवप्रियः ॥ २३९ ॥

जहाँ (जिस अलङ्कार में) उत्तरोत्तर प्रत्येक स्वर की वृद्धि हो (बढ़ता जाये) ऐसी आवृत्तियों (पदों) के द्वारा (क्रम से) स्वर ऊपर चढ़ें या स्वरों का आरोहण हो तो उसे, शिवजी के प्रिय नारद जी या भरतमुनि 'हसितालङ्कार' कहते हैं।

स, सरि, सरिग, सरिगम, सरिगमप, सरिगमपध, सरिगमपधनि, सरिगमपधनिस।

अथवा—

स, रिरि, गगग, मममम, पपपप, धधधधधध, निनिनिनिनिनिनि, ससससससससस।

इति हसितः ॥ ५ ॥

स्वरद्वयं समुच्चार्य्य पूर्वपूर्वयुतं परम् ।
यदान्दोलितमारोहे प्रेङ्खितस्य क्रमं जगुः ॥ २४० ॥

पूर्व-पूर्व यानी पहिले-पहिले स्वर को साथ लेकर क्रम से पर दूसरे को या 'परम्' दीर्घ स्वर द्विमात्रिक को अर्थात् २-२ स्वरों का उच्चारण करके आरोहण में आन्दोलन किया जाय तथा २-२ स्वरों की आवृत्तियाँ बनाई जायें तो इसे 'प्रेङ्खित' अलङ्कार का क्रम कहते हैं।

उपरोक्त श्लोक 'मूल पुस्तक' में शायद भूल से दो जगह लिखा है। अर्थात्

२४१ नम्बर पर भी यही श्लोक लिखा है। अतः यहाँ पर २४१ नम्बर पर कोई श्लोक नहीं दिया।

सारी. रीगा. गामा. मापा. पाधा. धानी. नीसा ।

इति प्रेङ्खितः ॥ ६ ॥

एकान्तरस्वरद्वन्द्वं त्यक्तपूर्वयुतं परम् ।
क्रमादारोहणं यत्र तदाक्षिप्तं प्रचक्षते ॥ २४२ ॥

एक-एक स्वर का अन्तर देकर (छोड़कर) दो-दो स्वरों को बोले. फिर छोड़े हुए पहिले वाले. दूसरे स्वर को बोले (इस भांति) क्रम से जहाँ आरोहण हो. उसको 'आक्षिप्त' अलङ्कार कहते हैं।

सम्गम. रिग्मिम. गमपप. ममधध. पपनिनि. धधसस ।

इत्याक्षिप्तः ॥ ७ ॥

ह्रस्वमाद्यद्वयं कृत्वा दीर्घं कृत्वा तृतीयकम् ।
हनुमानाह सर्वज्ञः सन्धिप्रच्छादनं परम् ॥ २४३ ॥

आदि (शुरू) के २ स्वर ह्रस्व १-१ मात्रा के करके तथा तीसरा (स्वर) दीर्घ २ मात्रा का करके जैसे—'स रि ग ऽ' या 'गा' (बोला जाय तो उसे) सर्वज्ञः सब कुछ जानने वाले हनूमान जी परम-अच्छे या बड़े अलङ्कार को 'सन्धि प्रच्छादन' नाम से बताते हैं। (स्वर की या दो स्वरों के बीच की जगह 'सन्धि' या मूर्च्छना को ढकने वाला 'सन्धि प्रच्छादन')

सरिगा. रिगमा. गमपा. मपधा. पधनी. धनिसा ।
सनिधा. निधपा. धपमा. पमगा. मगरी. गरिसा ॥

(कुल अलङ्कारों का 'वामात्स्यादवरोहणम्' अर्थात् उल्टी तरफ़ से पढ़ने पर अवरोहण बन जाता है।)

इति सन्धिप्रच्छादनः ॥ ८ ॥

आद्यं द्विवारमुच्चार्य्य स्वरं द्वितीयमेकदा ।
तथा दीर्घं तृतीयञ्च तदोद्गीतः प्रकीर्त्तितः ॥ २४४ ॥

पहिले स्वर (स) को दो बार बोलकर दूसरे (रि) को एक बार बोले. तथा तीसरे स्वर (ग) को दीर्घ (द्विमात्रिक) 'गा' बोले तो 'उद्गीत' अलङ्कार कहा गया है। जैसे—

+	०	१	०	२	३
स स	रि रि	ग ग	म ग	रि ग	रि स
१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०	११ १२ (कुल १२ मात्रा)

सस रिरि गग मगरि गरिस ।
रिरि गग मम पमग मगरि ।
मम पप धध निधप धपम ।
पप धध निनि सनिध निधप ।

इति प्रकाशः । प्रसादः ॥ ७ ॥

यत्र च नोच्यते कालः स्वरैस्तत्र तु बोध्यते ।
स्यातां विस्तीर्ण निष्कर्षौ विन्दुरभ्युच्छ्रयः परः ॥ २३३ ॥

जहाँ कि काल (मात्रा तालादि) नहीं बताया जाता है, वहाँ (उस अलङ्कार में) स्वरों के द्वारा (काल) जाना जाता है, जैसे कि पहिले भद्रालङ्कार में कोई काल नहीं बताया जाता है तो उसके स्वर की 'सरिस' यह तीन मात्रा लेकर दून में ६ करके 'यति लग्न' या दादरा ताल हो सकती है, अलङ्कार के ८ चरण होने से 'धा धि ना धा ति ना' की ४ आवृत्ति ठीक बैठती हैं। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना चाहिये। अब आगे आने वाले अलङ्कारों की सूची बताते हैं—

१—विस्तीर्ण, २—निष्कर्ष, ३—विन्दु, ४—अभ्युच्छ्रय, इससे आगे—

हसितं प्रेङ्खिन्नाक्षिप्तौ सन्धिप्रच्छादनस्तथा ।
उद्गीतोद्वाहितौ तद्वत् त्रिवर्ण वेणिरित्यमी ॥ २३४ ॥

५—हसित, ६—प्रेङ्खित, ७—आक्षिप्त, ८—सन्धि प्रच्छादन, ९—उद्गीत, १०—उद्वाहित, ११—त्रिवर्ण, १२—वेणि, यह सब। इस श्लोक के बाद प्रसङ्ग-भङ्ग हो जाता है, मालूम पड़ता है कि इसके पश्चात् कुछ और भी होगा तदनन्तर पहिले अलङ्कार 'विस्तीर्ण' का लक्षण कहा होगा। अतः 'सङ्गीत रत्नाकर' में इसके बाद यह श्लोकार्ध है—

द्वादशाऽऽरोहिवर्णस्यालङ्काराः परिकीर्त्तिताः ।

ऊपर के श्लोक के अन्तिम शब्द से प्रसङ्ग भी ठीक बैठता है, यानी (इत्यमी) यह सब आरोही वर्ण में रहने वाले १२ अलङ्कार बताए गए हैं।

मूर्च्छनादेः स्वराद्यत्र क्रमेणारोहणं भवेत् ।
स्थित्वा स्थित्वा स्वरैर्दीर्घैः सविस्तीर्णोऽभिधीयते ॥ २३५ ॥

मूर्च्छना के आदि स्वर (स) से जहाँ ठहर-ठहर कर (रुक-रुक कर) दीर्घ

(बड़े) स्वरों के द्वारा (२+२ मात्रा में) क्रम से आरोहण हो तो वह 'विस्तीर्ण' नामक अलङ्कार कहा जाता है। जैसे—(विलम्बित लय)

सा री गा मा पा धा नी सा ।

इति विस्तीर्णः ॥ १ ॥

ह्रस्वैः स्वरैः स निष्कर्षो द्विद्विरुक्तैर्निरन्तरैः ।

छोटे स्वरों के द्वारा यानी पूर्ववत् एक-एक मात्रा के स्वरों में दो-दो बार प्रयोग किये जाने पर लगातार, यानी बीच में न रुक कर (बोला जाय) तो वह निष्कर्ष अलङ्कार होता है।

सस रिरि गग मम पप धध निनि सस ।

इति निष्कर्षः ॥ २ ॥

त्रिश्चतुर्वा स्वरोच्चारो गात्रवर्णमिमं विदुः ।
निष्कर्षस्यैव द्वौ भेदौ केचिदेतौ बभाषिरे ॥ २३६ ॥

तीन-तीन या चार-चार स्वरों का उच्चारण करना इसे 'गात्र वर्ण' कहते हैं। कोई-कोई यह दोनों भेद निष्कर्ष के ही हैं, ऐसा बताते हैं।

ससस, रिरिरि, गगग, ममम, पपप, धधध, निनिनि, ससस ॥ १ ॥

अथवा—

ससससस, रिरिरिरि, गगगग, मममम, पपपप, धधधध, निनिनिनि, ससससस ।

इति गात्र वर्णः ॥ २ ॥

'आद्यं दीर्घत्रयं प्राह द्वितीयं ह्रस्वमेव च ।
विन्दुर्विन्दुत्रयेणापि हनूमान्मार्द्ध विन्दुना ॥ २३७ ॥

आदि का स्वर (स) तीन बार दीर्घ (द्विमात्रिक) तथा द्वितीय (रि) ह्रस्व १ मात्रा का हो तो उसे हनूमान जी 'विन्दु' अलङ्कार कहते हैं। जो 'विन्दु त्रयेण, सार्ध विन्दुना अपि' अर्थात् ०००, ०, कुल तीन द्रुत एक द्रुत विराम, अर्थात्—६ मात्रा 'महेश' या 'मत्त ताल' में होता है। यथा—

+		३		०		१		
धा	गे	तू	ना	क	त्ता	धी	धी	ना ।
१	२	३	४	५	६	७	८	९ (कुल ९ मात्रा)

'"प्लुतं ह्रस्वं प्लुतं ह्रस्वं प्लुतं ह्रस्वं प्लुतं तथा ।' (इति रत्नाकरे)

अथवा ६ मात्रा की 'अङ्ग ताल' मृदङ्ग सागर की या षट्ताली, वसन्त, विष्णु या 'सङ्गीत रत्नाकर' की "गारुगिस्तु चतुर्द्रुतौ ॥ २६५ ॥ विरामान्ता बुधै रुक्ता" ०००, ६, इति गारुगिः ६ मात्रा, ऐसी किसी भी ताल में हो सकता है।

सासासारि, रीरीरीग, गागागाम, मामामाप, पापापाध, धाधाधानि, नीनीनीस।

इति विन्दुः ॥ ३ ॥

एकान्तरस्वरारोहमाहुरभ्युरभ्युच्छ्रयं बुधाः ॥ २३८ ॥

एक स्वर का अन्तर देकर (छोड़कर) आरोहण करने पर पण्डितों ने उसे 'अभ्युच्छ्रय' अलङ्कार बताया है। सङ्गीत रत्नाकर में इसे 'अभिउच्चय' बताया है।

'पारिजात' में इसका उदाहरण नहीं है। अतः रत्नाकर से लिया है। यथा—

स ग प नि । रि म ध स ।

इत्यभुच्छ्रयः ॥ ४ ॥

यत्रैकोत्तरवृद्धाभिरावृत्तिभिरुदीरिताः ।
आरुह्यन्ते स्वराः प्राह हसितं तं शिवप्रियः ॥ २३९ ॥

जहाँ (जिस अलङ्कार में) उत्तरोत्तर प्रत्येक स्वर की वृद्धि हो (बढ़ता जाये) ऐसी आवृत्तियों (पदों) के द्वारा (क्रम से) स्वर ऊपर चढ़ें या स्वरों का आरोहण हो तो उसे, शिवजी के प्रिय नारद जी या भरतमुनि 'हसितालङ्कार' कहते हैं।

स, सरि, सरिग, सरिगम, सरिगमप, सरिगमपध, सरिगमपधनि, सरिगमपधनिस।

अथवा—

स, रिरि, गगग, मममम, पपपप, धधधधधध, निनिनिनिनिनि, ससससससससस।

इति हसितः ॥ ५ ॥

स्वरद्वयं समुच्चार्य्य पूर्वपूर्वयुतं परम् ।
यदान्दोलितमारोहे प्रेङ्खितस्य क्रमं जगुः ॥ २४० ॥

पूर्व-पूर्व यानी पहिले-पहिले स्वर को साथ लेकर क्रम से पर दूसरे को या 'परम्' दीर्घ स्वर द्विमात्रिक को अर्थात् २-२ स्वरों का उच्चारण करके आरोहण में आन्दोलन किया जाय तथा २-२ स्वरों की आवृत्तियाँ बनाई जायें तो इसे 'प्रेङ्खित' अलङ्कार का क्रम कहते हैं।

उपरोक्त श्लोक 'मूल पुस्तक' में शायद भूल से दो जगह लिखा है। अर्थात्

२४१ नम्बर पर भी यही श्लोक लिखा है। अतः यहाँ पर २४१ नम्बर पर कोई श्लोक नहीं दिया।

सारी. रीगा. गामा. मापा. पाधा. धानी. नीसा ।

इति प्रेङ्खितः ॥ ६ ॥

एकान्तरस्वरद्वन्द्वं त्यक्तपूर्वयुतं परम् ।
क्रमादारोहणं यत्र तदाक्षिप्तं प्रचक्षते ॥ २४२ ॥

एक-एक स्वर का अन्तर देकर (छोड़कर) दो-दो स्वरों को बोले, फिर छोड़े हुए पहिले वाले, दूसरे स्वर को बोले (इस भांति) क्रम से जहाँ आरोहण हो, उसको 'आक्षिप्त' अलङ्कार कहते हैं।

सम्गम. रिग्मम. गमपप. मपधध. पधनिनि. धधसस ।

इत्याक्षिप्तः ॥ ७ ॥

ह्रस्वमाद्यद्वयं कृत्वा दीर्घं कृत्वा तृतीयकम् ।
हनुमानाह सर्वज्ञः सन्धिप्रच्छादनं परम् ॥ २४३ ॥

आदि (शुरू) के २ स्वर ह्रस्व १-१ मात्रा के करके तथा तीसरा (स्वर) दीर्घ २ मात्रा का करके जैसे—'स रि ग ऽ' या 'गा' (बोला जाय तो उसे) सर्वज्ञः सब कुछ जानने वाले हनूमान जी परम-अच्छे या बड़े अलङ्कार को 'सन्धि प्रच्छादन' नाम से बताते हैं। (स्वर की या दो स्वरों के बीच की जगह 'सन्धि' या मूर्च्छना को ढकने वाला 'सन्धि प्रच्छादन')

सरिगा. रिगमा. गमपा. मपधा. पधनी. धनिसा ।
सनिधा. निधपा. धपमा. पमगा. मगरी. गरिसा ॥

(कुल अलङ्कारों का 'वामात्स्यादवरोहणम्' अर्थात उल्टी तरफ़ से पढ़ने पर अवरोहण बन जाता है।)

इति सन्धिप्रच्छादनः ॥ ८ ॥

आद्यं द्विवारमुच्चार्य्य स्वरं द्वितीयमेकदा ।
तथा दीर्घं तृतीयञ्च तदोद्गीतः प्रकीर्त्तितः ॥ २४४ ॥

पहिले स्वर (स) को दो बार बोलकर दूसरे (रि) को एक बार बोले, तथा तीसरे स्वर (ग) को दीर्घ (त्रिमात्रिक) 'गा' बोले तो 'उद्गीत' अलङ्कार कहा गया है। जैसे—

ससरि गा, रिरिग मा, गगम पा, ममप धा, पपध नी, धधनि सा।
इत्युद्गीतः । ६ ।

आद्यं स्वरं चतुर्वारं द्विवारश्च द्वितीयकम् ।
सकृदुक्तं तृतीयन्तु तथा सकृच्चतुर्थकम् ॥
उद्गाहितस्त्वलङ्कारो हनूमता प्रकीर्त्तितः ॥ २४५ ॥

पहिला स्वर (स) चारवार तथा दूसरा (रि) २ वार एवं तीसरा (ग) १ वार और चौथा (म) भी १ वार बोला जाये, जैसे 'स स स स रि रि ग म' तो 'उद्गाहित' अलङ्कार होता है, यह हनूमान जी ने बताया है।

ससससस रिरिगम, रिरिरिरि गगमप, गगगग ममपध, मममम पपधनि,
पपपप धधनिस ।

इत्युद्गाहितः । १० ।

तृतीयस्य त्रिरावृत्तौ त्रिवर्णं वर्णयन्त्यमुम् ।

तीसरे स्वर (ग) की तीन आवृत्तियां होने पर अर्थात् ३ वार प्रयोग होने पर तथा पहिले और दूसरे स्वर (स, रि,) का १-१ वार, तो इस अलङ्कार को 'त्रिवर्ण' इस प्रकार वर्णन किया जाता है।

सरि गगग, रि ग ममम, ग म पपप, म प धधध, प ध निनिनि, ध नि ससस।
इति त्रिवर्णः । ११ ।

त्रयाणान्तु त्रिरावृत्तौ पृथग्वेणिरुदीरितः ॥ २४६ ॥

तीनों (स रि ग) स्वरों की पृथक् २ तीन २ आवृत्तियां होने पर, अर्थात् ३-३ वार प्रयोग होने पर उसे 'वेणि' अलङ्कार कहते हैं।

ससस रिरिरि गगग । रिरिरि गगग ममम । गगग ममम पपप । ममम पपप धधध । पपप धधध निनिनि । धधध निनिनि ससस ।

इति पृथग्वेणिः । १२ ।

इत्यारोह्यलङ्काराः ।

यह आरोही (वर्ण) के १२ अलङ्कार समाप्त हुए।

अवरोहक्रमादेते द्वादशाप्यवरोहिणः ।
गौरवादवरोहस्य लेखनं न कृतं मया ॥ २४७ ॥

अवरोह (स्वरों के ऊपर से यानी 'तार' से 'मध्य' के उतरने) के क्रम से इतने या ऐसे अवरोही के भी १२ अलङ्कार होते हैं। वह मैंने उनके गौरव से अर्थात्-अवरोहस्थालङ्कारों के विस्मृत होने से, या ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से अवरोह का लेखन नहीं किया है, अर्थात् अवरोही के अलङ्कार नहीं लिखे हैं।

इत्यवरोह्यलङ्काराः । (अवरोही के अलङ्कार समाप्त हुए)

अब सञ्चारी वर्ण के अलङ्कारों की (नाम) सूची कहते हैं—

मन्द्रादिर्मन्द्रमध्यश्च मन्द्रान्तः स्यादतः परम् ।
प्रस्तारश्च प्रसादोऽथ व्यावृत्तश्चलितस्तथा ॥ २४८ ॥

मन्द्रादि (जिसमें मन्द्र 'स' आदि-पहिले हो) २-मन्द्रमध्य (जिसमें वह बीच में हो) ३ मन्द्रान्त (जिसमें वही अन्त में हो) अतः परंस्यात् इसके बाद में होना है। (छन्द की पूर्त्ति में ऐसे अनावश्यक प्रयोग किये जाते हैं) ४—प्रस्तार. ५—प्रसाद. ६—व्यावृत्त. ७—चलित।

परिवर्त्ताख्य आक्षेपो विन्दुमंज्ञस्ततः परम् ।
अथोद्वाहित ऊर्म्मिः स्यात्समः प्रेङ्खस्ततः परम् ॥ २४९ ॥

८—परिवर्त्त. ९—आक्षेप. १०-विन्दु. ११-उद्वाहित. १२-ऊर्म्मि. १३-सम. १४-प्रेङ्ख या प्रेंखित. इसके पश्चात्।

ततो निष्कूजितः श्येनः क्रम उद्घाटितः परम् ।
रञ्जितः सन्निवृत्तश्च प्रवृत्तो वेणुसंज्ञकः ॥ २५० ॥

१५-निष्कूजित, १६-श्येन. १७-क्रम. १८-उद्घाटित, १९-रञ्जित, २०-सन्निवृत्त. २१-प्रवृत्त. २२-वेणु।

ललितस्वरहुङ्कारौ ह्लादमानावलोकितौ ।
सञ्चारिणोऽप्यलङ्काराः पञ्चविंशतिरीरिताः ॥ २५१ ॥

२३-ललित स्वर. २४-हुङ्कार. २५-ह्लादमान. २६-अवलोकित. यह सञ्चारी (वर्ण) के अलङ्कार भी २५ बताये हैं। यहां 'सम' और 'प्रेंखित' इन दोनों अलङ्कारों की १३ ही १३ यानी एक ही संख्या लिखी है। अतः २५ होते हैं। पहिले स्थायी वर्ण के अलङ्कारों की भांति १ के २ भेद जानना चाहिये।

सञ्चारिताश्चसर्वत्र सञ्चारिणो यतस्ततः ।
मन्द्रो विन्दुशिरा ज्ञेयस्तारो मस्तकरेखकः ॥ २५२ ॥

पहिले की भाँति फिर पारिभाषिक-शब्दों का अभिप्राय समझाते हैं। यतस्ततः या इतस्ततः-यहाँ से वहाँ अथवा-जहाँ से तहाँ (वहाँ) सर्वत्र सब जगह, सञ्चारित होने से-जाने से, फैलने से, या प्रसार पाने से वह सञ्चारी (अलङ्कार) कहलाते हैं। 'मन्द्र' स्वर वह है जिसके शिर पर विन्दु हो जैसे-'सं' तथा मस्तक यानी ऊपर रेखा हो जैसे-'स' उसे तार स्वर जानना चाहिये।

स-री ग-मौ म-गौ यत्र रि-सौं स-री ग-री म-री ।
ग-मौं गुरुढयेनैव म मन्द्रादिस्तदा भवेत् ॥
स्थानत्रयविशिष्टोऽयमारम्भे मन्द्रपूर्वकः ॥ २५३ ॥

जहां जिस अलङ्कार में 'सरिगम मगरिस सरिगरि सरिगम' यह स्वर क्रमानुसार हो' तो वह 'मन्द्रादि' नामक अलङ्कार होता है। और यह 'स्थानत्रय विशिष्ट' तीनों १-स्थायी २-आरोही ३-अवरोही स्थानों में विशिष्ट शेष (बाक़ी) संचारी (वर्ण) चौथे स्थान के आरम्भ में (पहिला) 'मन्द्र पूर्वक' अर्थात्-मन्द्र स्वर (सं) पूर्व पहिले (क) करने वाला, वह 'मन्द्रादि' नामक (मन्द्र का आदि पहिला) अलङ्कार होता है। जिसे दो गुरुओं के द्वारा ऽ, ऽ, १६ सोलह मात्राओं में जैसे-पञ्चम ताल, रुद्र १६ मात्रा (११ मात्रा की भी रुद्र होती है) ध्रुवपद की बड़ी सवारी, तिताला, धीमा, जलद, पंजाबी, तिलवाड़ा, आदि १६ मात्राओं की किसी भी ताल में होसकता है, संगीत रत्नाकर की १२० देशी तालों में ऐसी तो कोई ताल नहीं है कि जिसमें २ गुरु काल में ही १ आवृत्ति समाप्त हो, किन्तु २ गुरु यानी १६ मात्राओं की तो अनेक तालें हैं जैसे—१ वीर विक्रम ।००ऽ वर्णाभिन्नताल ००।ऽ राजविद्याधर ।ऽ००, मल्लिकामोद—॥०००० मकरन्द, ००॥। उद्दीक्षण ।ऽ, पूर्णताल ००००ऽ, अभङ्ग ।ऽ, ललित ताल ००।ऽ, उत्सव ताल ।ऽ गजताल ।॥। राजमृगाङ्कः ००।ऽ, इत्यादि, ऊपर के 'स्थान त्रय विशिष्टः' का दूसरा अर्थ यह है—'मन्द्र' मध्य तथा तार तीनों स्थानों में "विशेषेण शिष्टः विशिष्टः" अर्थात् विशेष अच्छा या बड़ा मन्द्र (सं) पूर्वक, अलंकार 'मन्द्रादि' होता है। किन्तु यह गौड़ अर्थ है, मूलअर्थ तो उपरोक्त ही है। यह अलङ्कार 'संगीत रत्नाकर' में अन्य प्रकार से बताया है, यथा—

त्रिस्वराऽऽद्या कलैकैकमन्द्रन्यासेन चापराः।
त्रिस्वराश्चेत्कला मन्द्राद्या मन्द्रादिस्तदा भवेत्॥

अर्थात्—मन्द्र (सं) से एक-एक कला (मात्रा या स्वर) छोड़ने से तीन स्वर आदि वाला, मन्द्रादि कला पूर्वक (पुनः त्यक्त कला प्रयुक्त) अन्य तीनों स्वर हों तो 'मन्द्रादि' अलंकार होता है। यथा—'सगरी, रिमगा, गपमा, मधपा, पनिधा, (धसनी, निरीसा) किन्तु उपरोक्त अलङ्कार का स्वरूप निम्न है—

स रि ग म म ग रि स स रि ग रि स रि ग म।
रि ग म प प म ग रि रि ग म ग रि ग म प।
ग म प ध ध प म ग ग म प म ग म प ध।
म प ध नि नि ध प म म प ध प म प ध नि।
प ध नि स स नि ध प प ध नि ध प ध नि स।

+ ३ ० १
१६ मात्रा—ता धिं धिंता ता धिं धिंता धातिं तिंता तांधिं धिंता।

॥ इति मन्द्रादिः ॥

एवं ज्ञेयोऽवरोहस्तु गीतशास्त्रविचक्षणैः ॥ २५४ ॥

संगीत के शास्त्र (नियम) समझने में निपुण पुरुषों को चाहिये कि जैसे अलङ्कारों के आरोहण ही सिर्फ लिखे हैं, उसी भांति उनके अवरोहण भी जानें!

यानी उसी भांति उल्टी ओर (ऊपर) से या- 'सं' (तार षड्ज) से चलने पर अवरोह होजाता है। जैसे 'स रि ग म' का अवरोहण 'म ग रि स।

म-गौ रि-गौ म-गौ यत्र रि-गौ रि-गौ रि-सौ म-री।
ग-मौ ज-गण युक्तोऽसौ मन्द्रमध्यो सुशोभितः ॥ २५५ ॥

सग, रिग, मग, रिग, रिग, रिस, सरि, गम, जहां (जिस अलङ्कार में) उपरोक्त नियम से स्वरों का समावेश हो तो वह 'जगण' के साथ 'मन्द्र मध्य' नाम का सुशोभित (सुन्दर-अच्छा) अलंकार होता है। जगण ।ऽ। मध्य गुरु इधर उधर दो लघु त्रिवर्ण होता है ताल १६ मात्रा।

सगरिग, मगरिग, रिगरिस, सरिगम ।
रिमगम, पमगम, गमगरि, रिगमप ।
गपमप, धपमप, मपमग, गमपध ।
मधपध, निधपध, पधपम, मपधनि ।
पनिधनि, सनिधनि, धनिधप, पधनिस ।

इति मन्द्रमध्यः ॥ २ ॥

मन्द्रान्तश्च स विज्ञेयो न-गणेन सुशोभितः।
स-द्वयं रि-द्वयं गौ च यस्मिन्म-गौ रि-गौ रि-सौ ॥
मन्द्रस्थानश्च यस्यान्ते मन्द्रान्तं तं प्रचक्षते ॥ २५६ ॥

'मन्द्रान्त' नाम अलङ्कार उसे जानना चाहिये जो 'नगण' के साथ सुशोभित हो। जिसमें २ स, २ रि, तथा २ ग, २ मग, रिग, फिर रिस। इस प्रकार स्वर-क्रम हो, मन्द्र का स्थान या मन्द्र स्थान का 'स' जिसके अन्त में हो उसे 'मन्द्रान्त' कहते हैं।(नगण में ।।। तीनों लघु होते हैं) मात्रा १२ की ताल।

सस रिरि गग मग रिग रिस ।
रिरि गग मम पम गम गरि ।
गग मम पप धप मप मग ।
मम पप धध निध पध पम ।
पप धध निनि सनि धनि धप ।

इति मन्द्रान्तः ॥ ३ ॥

त्यक्तान्तरं स्वरद्वन्द्वं त्यक्तादारभ्यते पुनः ।
युगं तादृक्समारोहे तदा प्रस्तार उच्यते ॥ २५७ ॥

मन्द्र (सं) से २-२ स्वर अन्तर (बीच) में छोड़कर जो अलङ्कार आरम्भ किया जाता है। फिर उसी भाँति उस छोड़े हुए स्वर से २-२ स्वर छोड़कर जहाँ ठीक से आरोहण होता है, तो उसे 'प्रस्तार' अलङ्कार कहते हैं। जैसे—

स म रि प ग ध म नि ध स ।
स ध नि म ध ग प रि म स ।

इति प्रस्तारः ॥ ४ ॥

आद्यं द्वयं त्रिरावृत्त्या तृतीयश्च द्वितीयकम् ।
उक्त्वा तत्र प्रसादन्तमलङ्कारं जगुर्बुधाः ॥ २५८ ॥

पहिले स्वर (स) तथा दूसरे (रि) को मिलाकर तीन-आवृत्ति के द्वारा अर्थात् ३ बार कहकर फिर तीसरे (ग) तथा दूसरे (रि) को (१-१ बार) कहे । तब-तो या वहां उस अलङ्कार को पण्डित-जन 'प्रसाद' नाम से बताते हैं ।

सरि सरि सरि गरि । रिग रिग रिग मग ।
गम गम गम पम । मप मप मप धप ।
पध पध पध निध । धनि धनि धनि सनि ।

इति प्रसादः ॥ ५ ॥

स-गौ रि-मौ म-री गो मो यस्मिन्निति क्रमो भवेत् ।
व्यावृत्तं तं विजानीयाद्गीत-शास्त्र विशारदः ॥ २५९ ॥

जिस (अलङ्कार) में 'स ग रि म—स रि ग म' इस प्रकार से स्वर-क्रम हो, उसे सङ्गीत-शास्त्र के विशारद (तत्त्व-वेत्ता) को 'व्यावृत्त' जानना चाहिये ।

स ग रि म, स रि ग म । रि म ग प, रि ग म प ।
ग प म ध, ग म प ध । म ध प नि, म प ध नि ।
प नि ध स, प ध नि स ।

इति व्यावृत्तः ॥ ६ ॥

स-गौ रि-मौ म-री गः सः स-री गोम इति क्रमः ।
यदा भवेत्तदा ज्ञेयोऽलङ्कारश्चलितो बुधैः ॥ २६० ॥

जिस जगह 'स ग रि म म रि ग स स रि ग म' ऐसा स्वरों का क्रम हो तो इस जगह पण्डितों को 'चलित-अलङ्कार' जानना चाहिये ।

'रत्नाकर' में इसे 'स्खलित' बताया है । यथा—

कलां प्रयुज्य मन्द्रादेर्द्विरुक्तोर्ध्वस्वरान्विताम् ।
अवरुह्येत चेदेव स्खलिताख्यस्तदा भवेत् ॥

स ग रि म, म रि ग स, स रि ग म ।
रि म ग प, प ग म रि, रि ग म प ।
ग प म ध, ध म प ग, ग म प ध ।

म ध प नि, नि प ध म, म प ध नि ।
प नि ध स, स ध नि प, प ध नि स ।
इति चलितः ॥ ७ ॥

आद्यं तृतीयमुच्चार्य्य तूर्य्यं द्वितीयमेव च ।
परिवर्त्तस्तदा ज्ञेयो यति–तालेन शोभितः ॥ २६१ ॥

पहिले (स) तथा तीसरे (ग) स्वर को बोलकर फिर चौथे (म) तदनन्तर दूसरे (रि) स्वर को बोले तो वह 'यति' ताल से शोभित (मनोरञ्जक) 'परिवर्त्त' नामक अलङ्कार जानना चाहिये ।

'यति' ताल का अपभ्रंश 'यत्' हुआ फिर उसका 'जत्' । उसे ही 'चाचर' तथा 'दीपचन्दी' एवं 'होली का ठेका' भी कहते हैं ।

ताल यति मात्रा १४

	+		०
ध ग	धि न	धा धि न	त ग	ति न	ता ति न
१ २	३ ४	५	६ ७	८ ९	१० ११ १२ १३ १४

अथवा (दीपचन्दी)

+	२	०	३
धा धीं ऽ	धा धा धीं ऽ	ता तीं ऽ	ता ता तीं ऽ
१ २	३ ४	५ ६	७ ८ ९	१० ११ १२ १३ १४

यति ताल—"लघुद्रुतौ यत्र तालौ यतितालः स कथ्यते ।" (ताल मञ्जरी)

। ०, १ लघु, १ द्रुत ६ मात्रा, इसी यति तालमें यह 'परिवर्त्त' अलङ्कार बैठता भी ठीक है, क्योंकि इसकी स्वर मात्रा भी १२ हैं, जो द्रुत में कहने पर ताल की विलम्बित लय समान भाग में आजायेगी । ऊपर की (आधुनिक) यति–ताल तो १४ मात्रा की है, अतः इस अलङ्कार में उपयुक्त नहीं होती, तथा–श्लोक नं० २२९ के पूर्वार्द्ध के 'जित' अलंकार में बनाई तालों में भी ठीक बैठेगा, क्योंकि इस अलंकार का प्रत्येक चरण (टुकड़ा) ४–४ मात्रा का है । २२९ के उत्तरार्द्ध के 'साम' अलंकार की तालों में भी संगत होगा, क्योंकि–अलंकार के सब चरण (टुकड़े) ६ हैं जिनकी ८ मात्रा की तालों की ३ आवृत्तियाँ बन जाती हैं, सङ्गीतरत्नाकर की १२० देशी तालों में 'यति ताल' नाम की तो कोई ताल नहीं है, अपितु 'यति' शब्द से सम्बन्ध रखने वाली कतिपय तालें हैं, जो अलंकारस्थ मात्राओं के योग में उपयुक्त नहीं होती, यथा 'यति लग्नो द्रुतं लघु' ०।, ६ मात्रा शायद इसी को 'तालमञ्जरी' में कालक्रम वैपर्य्यय (उल्टा) कर अर्थात्–पहिले लघु फिर द्रुतकर 'यतिताल' लिखा है । करण यति' ०००० ८ मात्रा 'वर्ण यति' ॥ ०० १२ मात्रा, इसमें भी अलंकार की मात्राएँ सम होती हैं । अस्तु ।

स ग म रि, रि म प ग, ग प ध म ।
म ध नि प, प नि स ध, ध स रि स ।
इति परिवर्त्तः । ८ ।

क्रमात्स्वरत्रयं यत्र जगुराक्षेपकं बुधाः ॥ २६२ ॥

जिसमें क्रमानुसार तीन तीन स्वरों का प्रयोग होता है, उसे पण्डित जन 'आक्षेप' अलंकार बनाते हैं)

नोट – इसे ही व्रज के रासधारी प्रायः कृष्ण लीलाओं में नाचते हुए गाते हैं। (अन्तिम वर्ण दीर्घ कर 'कहरवे' के ठेके में)

स रि ग, रि ग म, ग म प, म प ध, प ध नी, ध नि स ।
स नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रि, ग रि स ॥

इत्याक्षेपः । ६ ।

आद्यो दीर्घस्त्रिरावृत्तः स्वरो ह्रस्वस्तदुत्तरः ।
पुनराद्यस्तु दीर्घोऽपि तथा दीर्घस्तृतीयकः ॥
विन्दुसंज्ञे त्वलङ्कारे प्रोक्ता गीतविचक्षणैः ॥ २६३ ॥

आद्य (पहिला) 'स' स्वर तीन आवृत्तियों में अर्थात् ३ बार दीर्घ (गुरु) हो, तथा उसके उत्तर (पीछे-बाद) का स्वर 'रि' ह्रस्व (लघु १ मात्रा का) हो, फिर आदि का 'सा' दीर्घ ही हो तथा तीसरा 'गा' भी दीर्घ हो, तो ऐसा स्वरों का क्रम 'विन्दु' संज्ञा (नाम) वाले अलङ्कार में होता है, ऐसा सङ्गीत प्रवीण पुरुषों के द्वारा कहा गया है। यथा—

सा सा सा रि सा गा, री री री ग री मा ।
गा गा गा म गा पा, मा मा मा प मा धा ।
पा पा पा ध पा नी, धा धा धा नि धा सा ।

इति विन्दुः । १० ।

स-रि-ग-रीत्यलङ्कार उद्ग्राहिते स्वरा इमे ॥ २६४ ॥

स, रि, ग, रि, क्रम से यह (इतने) स्वर उद्ग्राहित अलंकार में होते हैं।

स रि ग रि, रि ग म ग, ग म प म ।
म प ध प, प ध नि ध, ध नि स नि ।

इत्युद्ग्राहितः । ११ ।

आद्यात्तुर्य्यंस्तिरावृत्तः पुनराद्यश्चतुर्थकः ।
इत्येते स्युरलङ्कारे ऊर्मिसंज्ञे सुखप्रदे ॥ २६५ ॥

आदि से चौथा तीन आवृत्तियों में हो, अर्थात्—आद्य-पहिला (स) १ बार, तुर्य्य-चौथा (म) ३ बार, फिर पहिला, १ बार तथा चौथा १ बार, यह सब स्वर 'ऊर्मि' संज्ञा वाले अलङ्कार में जो सुख का देने वाला है, (यानी जिसके सुनने या

गाने से सुख होता है, या-छन्दः पूर्त्ति के हेतु यूं ही लगा लिया है) उपरोक्त क्रम से होते हैं। यथा—

स ममम सम, रि पपप रिप. ग धधध गध.
म निनिनि मनि, प समस पस।
इत्यूर्मिः। १२।

नोट—'ऊर्मि' नाम तरङ्गों का है, जिस अलङ्कार के गायन में 'तरंगें' सी उठती हैं उसे "ऊर्म्मि" कहते हैं।

स-रि-ग-मानां तथा मस्यारोहणञ्चावरोहणम्।
पुनरारोहणं यत्र समं वदति तं सुधीः ॥ २६६ ॥

स. रि. ग. म, इन चार स्वरों का जिस अलङ्कार में प्रथम आरोहण हो फिर अवरोहण हो. तथा फिर आरोहण हो तो उसे बुद्धिमान 'सम' नामक अलङ्कार बताते हैं।

स रि ग म म ग रि स स रि ग म।
रि ग म प प म ग रि रि ग म प।
ग म प ध ध प म ग ग म प ध।
प ध नि स स नि ध प प ध नि स।
इति समः। १३।

द्विद्व्यन्तरं स्वरद्वन्द्वे त्यक्तादारम्भ ईदृशः।
क्रमादेकैकहानाच्च प्रेङ्ख उक्तो मनीषिभिः ॥ २६७ ॥

दो-दो स्वरों के अन्तर पर दो-दो स्वर छोड़ने से इस प्रकार का आरम्भ किया जाये. तथा—एक एक (स्वर) के हान = हनन (प्रयोग) से क्रमानुसार हो. तो वह बुद्धिमानों ने 'प्रेङ्ख' अलङ्कार बताया है।

सस मम, रिरि पप, गग धध, मम निनि, पप, सस।
सस पप. निनि मम, धध गग. पप रिरि, मम सस।
इति प्रेङ्खः। १३।

उपरोक्त 'सम' तथा 'प्रेङ्खित' एक ही अलङ्कार के २ भेद हैं।

आद्यतुर्य्यौ द्विरावृत्त्या पुनस्तावत्क्रमो भवेत्।
क्रमादेकैकहानाच्च निष्कूजितः प्रकीर्त्तितः ॥ २६८ ॥

पहिला स्वर (स) तथा तुर्य्य (चौथा) 'म' यह दोनों २ आवृत्तियों द्वारा अर्थात् २-२ बार प्रयोग किये गए हों, फिर उसी भांति १-१ स्वर प्रयोग क्रम से वैसा ही क्रम हो तो वह 'निष्कूजित' अलङ्कार कहलाता है।

सम सम सरिगम, रिप रिप रिगमप ।
गध गध गमपध, मनि मनि मपधनि ।
पस पस पध निस ।
इति निष्कूजितः । १४ ।

आद्यस्वरः क्रमात्सर्वान्स्पृशन्नेकैकमात्रजेत् ।
अलङ्कारस्तु श्येनः स्यादनिबद्धः सुखप्रदः ॥ २६९ ॥

आदि का स्वर (स) क्रम से सब स्वरों को छूता हुआ एक एक स्वर पर जाये तो वह सुख का देने वाला, अनिबद्ध (बिना ताल का) जिसमें मात्राओं की सम-संख्या नहीं है, 'श्येन' नामक अलङ्कार होता है ,

नोट—श्येन बाज़ पक्षी को कहते हैं जैसे वह दूर से चिड़िया पर टूट कर उसे उठा ले जाता है, फिर उससे आगे वाली चिड़िया पर दुबारा झपटता है, वैसे ही यहां 'स' तथा अन्य स्वरों का 'दृष्टान्तालंकार' समझना चाहिये । जैसे—'स-म', 'स-प', 'स-ध' आदि ।

सरि सग सम सप सध सनि सस ।
रिग रिम रिप रिध रिनि रिस ।
गम गप गध गनि गस ।
मप मध मनि मस ।
पध पनि पस ।
धनि धस ।
निस ।
इति श्येनः । १५ ।

स-री रि-गौ ग-मौ चेति क्रमाख्यालङ्कृतिक्रमः ॥ २७० ॥

स, रि, रि, ग, तथा ग, म, यह 'क्रम' नामक अलंकार का (स्वर) क्रम होता है ।

सरि रिग गम, रिग गम मप, गम मप पध ।
मप पध धनि, पध धनि निस ।
इति क्रमः । १६ ।

स-गौ स-गौ स-री गो-म इति क्रमो यदा भवेत् ।
उद्घाटितस्तदा ज्ञेय आन्दोलनेन शोभितः ॥ २७१ ॥

स, ग, स, ग, स, रि, ग, म, ऐसा स्वरों का क्रम जब हो तो उसे 'उद्घाटित' अलंकार जानना चाहिये जो कि आन्दोलन 'ताल के साथ' में ८ मात्रा की कहरवा आदि एवं श्लोक नं० २२९ में बताई तालों में सुशोभित होता है ।

सग सग सरि गम । रिम रिम रिगमप ।
गप गप गम पध । मध मध मपधनि ।
पनि पनि पधनिस ।
इत्युद्घाटितः ॥ १७ ॥

स-गौ रि-गौ स-री गो म इति क्रमो यदा भवेत् ।
रञ्जितः स्यादलङ्कारः करुणा ताल शोभितः ॥ २७२ ॥

स, ग, रि, ग, स, रि, ग, म यह स्वर क्रमानुसार जिस अलंकार में आयें तो वह 'रञ्जित' नामक अलङ्कार होता है, जो कि 'करुणा' ताल में शोभित अर्थात्—अच्छा लगता है। 'गुरुणा करुणो मतः' (सङ्गीत रत्नाकरे) १ गुरु ५ मात्रा = की करुण ताल होती है। अथवा श्लोक नं० २२६ के समान अन्य तालें समझें।

सग रिग सरिगम। रिम गम रिगमप।
गप मप गमपध। मध पध मपधनि।
पनिधनि पधनिस।
इति रञ्जितः ॥ १८ ॥

स-रि-गा रि-ग-मा यत्र ग-रि-सा रि-ग-मास्तथा।
सन्निवृत्तः स विज्ञेयः सर्वदा सुखदायकः ॥ २७३ ॥

जिसमें सरिगा, रिगमा तथा गरिसा, रिगमा, इस भांति स्वर-प्रयोग हो तो उसे 'सन्निवृत्तालङ्कार' समझना चाहिये। जो कि सदैव सुख देने वाला होता है।

स रि ग रि ग म ग रि स रि ग म।
रि ग म ग म प म ग रि ग म प।
म प ध प ध नि ध प म प ध नि।
प ध नि ध नि स नि ध प ध नि स।
इति सन्निवृत्तः ॥ १९ ॥

सन्निवृत्तस्वरैरेव द्विगुणः सन् प्रवृत्तकः।

सन्निवृत्त अलंकार ही दुगुने स्वर-प्रयुक्त होने पर 'प्रवृत्तक' कहलाता है। यथा—सस, रिरि गग, रिरि गग मम, गग रिरि सस, रिरि गग मम,
इति प्रवृत्तकः ॥ २० ॥

वेणुः स-म-ग-मैर्ज्ञेयः स-रि-ग-मैस्तथैव च ॥ २७४ ॥

स, म, ग, म, तथा (उसी भांति) स, रि, ग, म, स्वर-प्रयोग से वह 'वेणु' अलङ्कार जानना चाहिये।

समगम सरिगम। रिपमप रिगमप।
गधपध गमपध। मनिधनि मपधनि।
पसनिस पधनिस।
इति वेणुः ॥ २१ ॥

आद्यं तूर्यं तृतीयश्च द्विरावृत्या रि-मौ म-री।
ग-गी स-री ग-मौ यत्र सुखदो ललितस्वरः ॥ २७५ ॥

आद्य-पहिला (स) चौथा (म) तीसरा (ग) यह स्वर २।२ बार हों, फिर रिस, सरि, गरि, सरि, गम, यह स्वर-क्रम जिस (अलङ्कार) में हो उसे 'ललित स्वर' अलंकार कहते हैं। क्योंकि उसके स्वर ही 'ललित' हैं—अतएव वह 'सुखद' सुखदायक भी होता है।

सस मम गग रिस सरि गरि सरि गम।
रिरि पप मम गरि रिग मग रिग मप।
गग धध पप मग गम पम गम पध।
मम निनि धध पम मप धप मप धनि।
पप सस निनि धप पध निध पध निस।

इति ललित स्वरः ॥ २२ ॥

द्वाभ्यां द्वाभ्यां स्वराभ्यां यः सम्वादिभ्यां स हुङ्कृतिः ॥

दो-दो सम्वादी स्वरों के द्वारा (जोकि ८ या १२ श्रुति के फासले पर माने जाते हैं अथवा सम श्रुतिक या छटवें पांचवें पर्दे माने जाते हैं) जैसे 'स' का सम श्रुतिक 'प' तथा 'रि' का 'ध' एवं 'ग' का 'नि' तथा 'म' का (तार) 'सं' (देखो श्लोक नं० ८१ की टीका) जिसमें ऐसा स्वर-प्रयोग हो उसे 'हुङ्कृति' या 'हुङ्कार-लंकार' कहते हैं।

सस पप। रिरि धध। गग निनि। मम सस।

इति हुंकारः ॥ २३ ॥

म-म-ग-रीत्यलङ्कारे ह्लादमाने स्वराइमे ॥ २७६ ॥

स. म. ग. रि. ऐसा स्वर-प्रयोग 'ह्लादमान' नामक अलंकार में होता है,

स म ग रि। रि प म ग। ग ध प म। म नि ध प। प स नि ध।

इति ह्लादमानः ॥ २४ ॥

आद्यं तूर्य्यं त्रिरावृत्त्याऽवलोकितः प्रकीर्त्तितः ॥

पहिला स्वर (स) तथा चौथा (म) यह तीन-तीन बार प्रयुक्त हों तो उसे 'अवलोकित' अलङ्कार कहते हैं।

ससस मममं। रिरिरि पपप। गगग धधध।
मममं निनिनि। पपप ससस।

इत्यवलोकितः ॥ २५ ॥

एवं सञ्चार्य्यलङ्कारा आरोहे चावरोहिणि ॥ २७७ ॥
पुनः सप्त च गीतज्ञैरलङ्काराः प्रकीर्त्तिताः ॥ २७८ ॥

यह सञ्चारी चतुर्थ (वर्ण) के अलङ्कार २५ बताये हैं। जिनके आरोहण ही केवल लिखे हैं उन्हें उलट कर अवरोहण करने चाहिये। इनके अतिरिक्त संगीतज्ञों ने और भी सात अलङ्कार बताए हैं।

इन्द्रनीलो महावज्रो निर्दोषः सीर- कोकिलौ ।
आवर्त्तकः सदानन्दः इत्येषां लक्ष्म कथ्यते ॥ २७९ ॥

१—इन्द्रनील, २—महावज्र, ३—निर्दोष, ४—सीर, ५—कोकिल, ६-आवर्त्तक, ७—सदानन्द, यह सात अलङ्कार हैं। अब मैं इनके लक्षण बताता हूं।

स-री-ग-मौ ग-री यत्र स-री ग-री स-री ग-मौ ।
इन्द्रनीलः स विज्ञेयो ध्रुवतालेन शोभितः ॥ २८० ॥

जिस अलङ्कार में 'सरि गम गरि' तथा 'सरि गरि सरि गम' इस भांति स्वर आते हों तो उसे इन्द्रनील अलङ्कार जानना चाहिये और यह 'ध्रुव' ताल में शोभित होता है। "द्रुतत्रयं गुरुश्चापि ध्रुवतालः प्रकीर्त्तितः" (ताल मञ्जर्य्याम्) ००००३ द्रुत १ गुरु ८ १४ मात्रा की ताल।

सरि गम गरि सरि गरि सरि गम ।
रिग मप मग रिग मग रिग मप ।
गम पध पम गम पम गम पध ।
मप धनि धप मप धप मप धनि ।
पध निस निध पध निध पध निस ।
इतीन्द्रनीलः ॥ १ ॥

स-री ग-री स-री यत्र स-री ग-मौ तथैव च ।
अलङ्कारो महावज्रो मण्ठ-तालेन शोभितः ॥ २८१ ॥

जिस जगह 'स, रि, गरि, सरि, सरिगम' इस भाँति स्वर-प्रयोग होता हो वह 'महावज्र' नाम अलङ्कार कहलाता है। और वह मण्ठ-ताल में शोभित होता है।

विरामादिद्रुतौ द्वौ च मण्ठिका परिकीर्त्तिता ।

यह आदि में द्रुतविराम ० ३ मात्रा तथा २ द्रुत ०० चार मात्रा कुल ७ मात्रा की ताल होती है।

द्वौ लौ द्वौ दौ लघुर्द्वौ कीर्त्तिता वर्णमण्ठिका ।

दो लघु ॥, दो द्रुत ००, एक लघु ।, दो द्रुत ०० कुल २० मात्रा 'वर्ण मण्ठिका ताल।'

कोल्लकोऽन्यैरयं प्रोक्तः सोभो वा प्रतिमण्ठकः ।

अन्य आचार्य्यों ने इसे 'कोल्लक' ताल बताया है कि जिसे 'प्रतिमण्ठ' कहते हैं। इसमें सगण ॥ऽ, दो लघु १ गुरु, तथा भगण ऽ॥, एक गुरु दो लघु कुल ३२ मात्राएँ होती हैं।

चतुर्लघुर्भवेत्तद्वद्गुरुर्वल्लभमण्ठके ।

चार लघु ॥॥, ऽ, एक गुरु, अथवा—तद्वत् गुरु ऽऽऽऽ चार गुरु यह २४ या ४८ मात्रा की 'वल्लभ मण्ठ' ताल कहलाती है। उपरोक्त 'मण्ठ' तालें हैं किन्तु मेरी

समझ में अलङ्कार की मात्राओं के वज़न में आधुनिक 'सुरवाक्' ताल जिसे मुसलमान 'शलफ़ाका' कहते हैं, सर्वथोपयुक्त है। यथा—

+	०	१	२	०
धा धेड़	नग दी	धेड़ नग	ग दी	धेड़ नग
स रि	ग रि	स रि	स रि	ग म
१ २	३ ४	५ ६	७ ८	९ १०

अथवा शूल ताल—

+	२	३
धा ऽ दिं दिं	ना ऽ तिट	कत गदि गन
१ २ ३	४ ५ ६	७ ८ ९ १०

दस मात्राओं की अन्य, शङ्ख, निःसारु, चतुः, झप, इत्यादि तालों में भी हो सकता है।

सरि गरि सरि सरिगम । रिग मग रिग रिगमप ।
गम पम गम गमपध । मप धप मप मपधनि ।
पध निध पध पध निस ।
इति महावज्रः । २ ।

स-री म-री ग-मावेति क्रम एव यदा भवेत् ।
निर्दोषः स्यादलङ्कारो रूपकेण सुशोभितः ॥ २८२ ॥

जब कि 'सरि सरि गम' ऐसा स्वरों का क्रम होता है, तो वह 'निर्दोष' नामक अलङ्कार होता है।

उपरोक्त अलङ्कार को 'रूपक' ताल द्वारा सु-शोभित होना बताया है। आधुनिक रूपक में ७ मात्राएँ होती हैं। अतः अलङ्कारान्तिम स्वर दीर्घोच्चारित (द्विमात्रिक) होने पर उपयुक्त होगा। यथा—

१। । २। । (०+)। । ।
धी न धी ना धो ना त्रिक
स रि स रि ग म ऽ

अथवा—"रूपके स्याद्द्रुतं लघुः" रूपक में १ द्रुत एक लघु कुल ०।, ६ मात्रा होती हैं तो उपरोक्त षण्मात्रिक अलङ्कारोपयुक्त ही ताल है, यदि 'द्रुत' के अर्थ में द्रुत विराम की ३ मात्रा ली जाएँ तो वही बात (७ मात्रा की ताल) हो जाती है।

(ताल मञ्जरी)

सरि सरि गम । रिग रिग मप ।
गम गम पध । मप मप धनि ।
पध पध निस ।
इति निर्दोषः ॥ ३ ॥

स-री ततः स-री गश्चेत्ततः स-री ग-मौ तदा ।
सीराख्योऽयमलङ्कारो झम्पतालेन शोभितः ॥ २८३ ॥

पहिले सरि, फिर सरि ग, फिर सरि गम, यह स्वर हों तो 'सीर' नामक अलङ्कार होता है और यह 'झम्प ताल' से शोभित होता है।

झम्पातालो विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वं लघुस्तथा । (रत्नाकरे)

पहिले विरामान्त (द्रुत) द्रुत द्वन्द्व ० ० फिर १ लघु। कुल १० मात्रा। इसे कोई-कोई ९ मात्रा की ताल भी कहते हैं। उचित है कि अन्तिम वर्ण गुरु बोला जाये। यथा—स रि ग म ऽ.

स रि सरिग सरिगम । रिग रिगम रिगमप ।
ग म गमप गमपध । मप मपध मपधनि ।
पध पधनि पधनिस ।

इति सीरः ॥ ४ ॥

स-री गश्च स-री गो-म इत्येतैः कलिका भवेत् ।
त्रिपुटाख्येन तालेन कलितः कोकिलो भवेत् ॥ २८४ ॥

सरिग, तथा सरिगम इन इतने स्वरों के द्वारा 'कलिका' नामक कलित (सुन्दर) अलंकार होता है। वही 'कोकिल' कहलाता है, तथा 'त्रिपुट' (या अद्रु-ताल) नामक ताल के द्वारा शोभा पाता है।

सरिग सरिगम, रिगम रिगमप ।
गमप गमपध, मपध मपधनि ।
पधनि पधनिस ।

इति कोकिलः । ५ ।

स-री ग-री म-री सश्च रि-स्वरस्तु स-री ग-मौ ।
यत्र स्युरद्रुतालेन तमावर्त्तं बुधा जगुः ॥ २८५ ॥

जिस जगह सरि, गरि, सरि सरि, सरिगम, इस भाँति स्वर-प्रयोग हुआ हो, उसे 'अद्रु' ताल के द्वारा पण्डित जन 'आवर्त्त' नामक अलंकार बताते हैं। २३२ वें श्लोक में भी इन्होंने 'अद्रुताली' ताल लिखी है। यह रत्नाकर की अद्रुताल है, जिसका दूसरा नाम 'त्रिपुट' है तथा मात्राएँ १० हैं। किन्तु २३२ अलंकार की मात्रा १२ हैं और इसकी भी १२, अतः यह जाना जाता है कि किसी अन्य मत या ग्रन्थ की यह 'अद्रुताल' १२ मात्रा की है जिसमें ताली या काल ५ या ६ हो सकते हैं, वैसे ही ऊपर

श्लोक में कही गई त्रिपुट भी ७ मात्रा की कोई दूसरी ताल हो सकती है। रत्नाकर की १० मात्रा वाली नहीं। १२ मात्रा की तालें लिखी जा चुकी हैं, इकताला आदि में भी यह अलंकार हो सकता है।

सरि गरि सरि सरि सरिगम ।
रिग मग रिग रिग रिगमप ।
गम पम गम गम गमपध ।
मप धप मप मप मपधनि ।
पध निध पध पध पधनिस ।

इत्यावर्त्तः । ६ ।

म-रि-ग-मैः सदानन्दो लघुतालेन शोभितः ॥ २८६ ॥

'सरिगम' ऐसे चतुः स्वर-प्रयोग से 'सदानन्द' नामक अलंकार होता है और वह लघु ताल द्वारा शोभित होता है। 'लघु ताल' का दूसरा नाम 'रास' ताल है यही ४ मात्रा की ताल है। यथा—

"लघ्वादितालो लोकेऽसौ रासः द्वौ लौ द्वितीयकः।"

—रत्नाकरे।

सरिगम, रिगमप, गमपध, मपधनि पधनिस ।

इति सदानन्दः । ७ ।

गीतोपयोगिनः सप्त तालयुक्ताः प्रदर्शिताः ।
अलङ्काराः पुनः पञ्च रागोपयोगिनः स्मृताः ॥ २८७ ॥

इन सब अलङ्कारों के अतिरिक्त पाँच अलङ्कार और भी बताये गये हैं। जो गीतों के उपयोगी हैं अर्थात्—गाने में (सम से आगे) बीच २ में लगाने लायक हैं। तथा सात तालों में प्रदर्शित (दिखाए गए) या बाँधे गये हैं और यह रागों में बड़े उपयोगी कहे गए हैं। अर्थात्—जिस राग में चाहो उसी के प्रकृति-अनुकूल स्वर करके इन्हें गा बजा सकते हैं, किन्तु सम्पूर्ण जाति की राग-रागनियों में ही, औडुव-षाडव या षाडव-सम्पूर्ण तथा औडुव सम्पूर्णों में नहीं।

चक्राकारो जवश्चैव शङ्खः पद्मनिभः स्मृतः ।
वारिदश्चेति तेषां हि लक्षणान्यपि कथ्यते ॥ २८८ ॥

१-चक्राकार, २-जव, ३-शंख, ४-पद्मनिभ या पद्माकार, ५-वारिद, यह ५ अलङ्कार हैं। अब उनके लक्षण भी कहे जाते हैं।

स्वरैरिभिश्चतुर्भिश्च षड्जेनापि त्रिभीरिभिः ।
चक्राकारः स विज्ञेयश्चक्रसादृश्यरूपवान् ॥ २८६ ॥

जहाँ पहिले चार रि-स्वर आएँ फिर षड्ज भी १ बार तथा 'रि' ३ बार हो तो वह चक्र के समान रूपवाला 'चक्राकार' अलङ्कार जानना चाहिये। 'स' बीच में तथा इधर उधर कईबार रि होने से वह 'रि' का चक्र सा बन जाता है। जैसे चक्रमें घुमाने के लिये मध्य भाग में एक विवर या खूँटी होती है वैसे ही यहाँ षड्ज समझो और इधर-उधर की लकड़ियाँ या चाकू के फलों के समान बहुत से ऋषभ जानो। जैसे चक्र भी 'सरररर' करके चलता है एवं गाड़ी का चक्र (पहिया) भी 'खरररर' करके चलता है। उसी भाँति यह अलङ्कार भी 'चक्र सादृश्य' चलता है। इसमें कहरवा आदि ८ मात्रा की कई तालें उपयुक्त होती हैं।

रि रि रि रि स रि रि रि ।
ग ग ग ग रि ग ग ग ।
म म म म ग म म म ।
प प प प म प प प ।
ध ध ध ध प ध ध ध ।
नि नि नि नि ध नि नि नि ।
स स स स नि स स स ।

इति चक्राकारः ॥ १ ॥

क्रमात्सर्वान्स्वरानुक्त्वाऽथान्त्यादेकैकहानतः ।
अलङ्कारो जवो नाम प्रकाशितो हनूमता ॥ २६० ॥

क्रमानुसार सब स्वरों को बोल करके (अवरोही पूर्व) अन्त के एक-एक स्वर को छोड़ता जाये तो 'जव' नामक अलङ्कार होता है. ऐसा हनुमान् जी ने प्रकाशित किया (कहा) है। अन्य अलङ्कारों की भाँति इसकी आरोही न लिखकर अवरोही लिखी है. प्रायः सङ्गीतज्ञ इसे 'स्वर मेरु' कहते हैं। और नियमानुकूल आरोही से चलते हैं ।

स रि ग म प ध नि स नि ध प म ग रि स ।
स रि ग म प ध नि ध प म ग रि स ।
स रि ग म प ध प म ग रि स ।
स रि ग म प म ग रि स ।
स रि ग म ग रि स ।
स रि ग रि स ।
स रि स ।
स रि ।

स
इति जवः ॥ २ ॥
स

स रि ।
स रि स ।
स रि ग रि स ।
स रि ग म ग रि स ।
स रि ग म प म ग रि स ।
स रि ग म प ध प म ग रि स
स रि ग म प ध नि ध प म ग रि ।
स रि ग म प ध नि स नि ध प म ग रि स ।

दीर्घान्त्यस्य द्विरावृत्तिरुपान्त्यो तदधः स्वरो ।
यत्रेति स्वरसम्बन्धः शङ्खो ज्ञेयो मनीषिभिः ॥ २६१ ॥

अन्त का स्वर (सं) दीर्घ (द्वि मात्रिक) द्विरावृत्ति (दो बार) बोला जाये तथा उसके नीचे के उपान्त्य के दोनों अन्त के इधर का एक (नि) तथा उसके और एक इधर का (ध) स्वर दोनों (निध) स्वर एक बार आयें तो जहां ऐसा स्वरों का सम्बन्ध (योग) हो तो बुद्धिमानों ने इसे 'शंख' नामक अलङ्कार समझा है ।

सासा निध । नीनी धप । धाधा पम ।
पापा मग । मामा गरि । गागा रिस ।

यह अलङ्कार भी उल्टा अवरोही की ओर से लिखा है। आरोही में 'सा सा-रि ग. रीरी गम' इत्यादि रूप चलेंगे।

इति शङ्खः ॥ ३ ॥

स-री षड्जतृयं रिश्च पद्माकारेऽत्र ग-द्वयम् ॥ २६२ ॥

पहिले सरि, फिर तीन स, फिर रि, फिर दो ग, इस 'पद्माकार' नामक अल-ङ्कार मे यह स्वर होते है।

सरि ससस रि गग । रिग रिरिरि ग मम ।
गम गगग म पप । मप मममम प धध ।
पध पपप ध निनि । धनि धधध नि सस ।

इति पद्माकारः ॥ ४ ॥

आद्यं स्वरं सकृत्प्रोच्य त्रिरावृत्त्या च सप्तमम् ।
वारिदः स्यादलङ्कारः क्रमादेकैकहानतः ॥ २६३ ॥

आदि का स्वर 'स' एक बार बोल कर फिर सातवां 'नि' तीन आवृत्तियों मे (३ बार) बोले तथा 'नि' के बाद (अवरोह में) क्रम से एक एक छोड़ते से वह 'वारिद' नाम का अलङ्कार होता है।

स निनिनि । स धधध । स पपप । स मममम ।
स गगग । स रिरिरि । स ससस ।

इति वारिदः ॥ ५ ॥

इति गर्वोऽलङ्कार अष्टषष्टिः प्रकीर्त्तिताः ॥ २६४ ॥
अलङ्कारादिना रागा विस्तारं नाप्नुवन्ति हि ।
एतैः कृत्वा प्रगानृणां स्वरतालप्रवीणता ॥ २६५ ॥

यह सब (जोड़ कर) ६८ अलङ्कार बनाये गये हैं। अलङ्कारों के बिना राग विस्तार को प्राप्त नहीं होते (फैलते नहीं हैं) और न वे अच्छे ही लगते हैं। यह तान पल्टे, आलापचारी, रागों की आरोही अवरोही सब अलङ्कार ही कहलाते हैं। इन अलङ्कारों के द्वारा (अभ्यास से) गायक स्वर ताल मे प्रवीण हो जाते है। सच बात तो यह है—

'न तत्काव्यं न तद्गानं त्वलङ्कारैश्च वञ्चितम्।'

अर्थात्—न तो वह कविताओं में कविता है और न वह गानों में गाना है कि जो अलङ्कारों से वञ्चित (विहीन) हो, क्यों कि—

'अलं भूषणपर्याप्तिः शक्तिवारणवाचके।'

शक्ति वारण के लिये जो वाचक हो, किसी काम में 'बस' कह दिया जाय—हद हो चुके, तो उससे आगे न होने को 'अलं' 'बस' 'कार' 'शब्द' कहते हैं। किसी चीज़ के सजाने को भी अलङ्कार कहते हैं।

अलङ्काराश्च रागेषु त्रिविधेषु त्रिधा मताः।
त एते मेलभेदेन ह्यनन्ताः शास्त्रसम्मताः ॥ २६६ ॥

औडुव-षाडव-सम्पूर्ण रागों में तीन ही प्रकार के अलङ्कार माने गये हैं और वे सब मेल (थाटों) के भेदों के द्वारा ७२ तथा उससे भी अधिक विधान एवं प्रकारों से 'यह सब निश्चय ही अनन्त हैं' ऐसा शास्त्र का सिद्धान्त है।

इत्यलङ्कार प्रकरणम्

❋ अथ जाति निरूपणम् ❋

शुद्धाः स्युर्जातयः सप्त ताः षड्जादिस्वराभिधाः ।
आद्या षड्जा तु विज्ञेया द्वितीया चार्षभी स्मृता ॥ २९७ ॥

षड्जादि स्वरों के नाम वाली वे सात शुद्ध जातियां होती हैं। (उनमें) पहिली षड्जा जाति जाननी चाहिये और दूसरी ऋषभी कही गई है।

गान्धारी तु तृतीया सा चतुर्थी मध्यमा पुनः ।
पञ्चमी पञ्चमी ज्ञेया षष्ठी तु धैवती पुनः ॥ २९८ ॥

तीसरी जाति गान्धारी तथा चौथी मध्यमा होती है। एवं पांचवीं पञ्चमी तथा छठवीं धैवती जाननी चाहिये।

सप्तमी स्यात्तु नैषादी तासां लक्ष्म च कथ्यते ।
इमा वंशस्वरे स्थित्वा स्थित्वा यदि विलम्बितः ॥ २९९ ॥

सातवीं नैषादी जाति होती है। अब इनके लक्षण कहे जाते हैं—

यह जातियां यदि बंश- वर बांस के या बांसुरी के अथवा छिद्र युक्त शुषिर वाद्य (हारमोनियम) प्रभृति स्वरों में रुक रुक कर विलम्बित (लय) से—

गायेतां जातयस्ताः स्युस्तत्तदंशस्वराभिधाः ।
रागाणां जीवभूता ये प्रोक्तास्तेऽशस्वरा बुधैः ॥ ३०० ॥

गाया जाय तो वे जातियां उन-उन षड्जादि 'अन्श-स्वर' नामवाली होती हैं। अर्थात्—उन्हीं-उन्हीं स्वरों का 'अन्श' ऐसा अभिधान (नाम) होता है। रागों के जीवभूत-प्राण स्वरूप जो होते हैं, उन्हें पण्डितों ने 'अन्श-स्वर' ऐसा बताया है।

प्रत्येक राग में २ या तीन स्वरों का एक समूह होता है, जिससे राग का विस्तार तथा मूर्च्छना अथवा टाट या मेल का प्रकाश होता है उसे ही राग की जान या रूह भी कहते हैं। अनेक रागों में एक ही स्वर अन्श रूप रहा करता है। भरताचार्य्य ने लिखा है—

"रागश्च यस्मिन्वसति यस्माच्चैव प्रवर्त्तते ।
तेनैव तारमन्द्राणां योन्यर्थमुपलभ्यते ॥
ग्रहापन्यासविन्याससंन्यासन्यासयोगतः ।
अनुवृत्तश्च यश्चेह सोऽशः स्याद्दशलक्षणः ॥

जिसमें कि राग बसता है, तथा जिससे कि राग का अस्तित्व है और उसी के तार तथा मन्द्र सप्तकों के अन्यर्थ-सार्थकता को जिससे राग प्राप्त होता है, ग्रह, अपन्यास, विन्यास, सन्यास एवं न्यास के योग से जो अनुवृत रहता है वह दश लक्षणों वाला अन्श कहलाता है।

एकास्फालनसंजातश्च्यवितः स्वर उच्यते ।
च्यवनं जायते येषु तस्मात्ते च्यविता मताः ॥ ३०१ ॥

एक के अस्फालन से उत्पन्न अर्थात—एक स्वर की कमी से किसी अन्य स्वर-प्रयोग से उत्पन्न स्वर 'च्यवित' कहलाता है। जिन स्वरों में 'च्यवन' होता है वे "च्यवित" माने जाते हैं।

आरीगेऽपि स विज्ञेयो स्थानत्यागेन सम्मतः।
एकत्र कम्पितो ज्ञेयो हननाभ्यां स्वरद्वयम् ॥ ३०२ ॥

अपने स्थान के त्याग से माना गया स्वर 'आरीर' समझना चाहिये जो वीणा में नियत स्थान से सार के सरक जाने पर बोलता है। एक ही बार दो स्वरों पर अँगुली के हनन (कँपाने) से वह 'कम्पित' कहलाता है। कोई-कोई इसे ज़मज़मा भी कहते हैं।

प्रत्याहत इति ख्यातो हन्त्येकया स्वरद्वयम्।
एकत्र हन्यते यस्तु द्विवारं स द्विराहतः ॥ ३०३ ॥

एक अँगुली द्वारा ही दो स्वरों पर आघात करने से वह 'प्रत्याहत' इस प्रकार प्रसिद्ध है। एक स्वर को ही दो बार हनन करने से वह 'द्विराहत' कहलाता है जैसे 'स स'।

स्फुरितो गमको ज्ञेयो हन्त्याऽत्यन्तं स्वरद्वयम्।
यत्र च हननादूर्ध्वं तत्रैवानाहतः स्वरः ॥ ३०४ ॥

'स्फुरित' नामक गमक उसे कहते हैं, जब कि बार-२ दो स्वरों पर हनन (आघात) किया जाता है। और जहाँ पर हनन से ऊपर के स्वरों पर जाते हैं उन्हें 'अनाहत' स्वर कहते हैं।

गमकः शान्तसंज्ञोऽसाविति सूरिविनिर्णयः।
चतुर्थांशाऽपरेभ्योऽसौ द्रुतस्य तिरिपो मतः ॥ ३०५ ॥

'शान्त' संज्ञा (नाम) वाली वही गमक होती है, यह पण्डितों का विशेष निर्णय है। और उसे 'अपरेभ्यः' दूसरे आचार्यों ने द्रुत (लय) का चतुर्थांश (चौथा भाग) 'तिरिप' नाम से माना है।

एकत्राऽस्फालनादेव सर्वे ते बोधिता यदा।
नष्टाभिव्याप्तिगत्यागतः। घर्षण उच्यते ॥ ३०६ ॥

एक जगह या एक स्वर की अवनति से ही (अन्य) वे सब स्वर जहां बोधित किये दिखाये या जाने जाते हैं। तथा—जब स्वर नष्ट (अस्पष्टोच्चारित) अभिव्याप्त (श्रुति गत) हों तब उसे 'घर्षण' कहते हैं।

अवघर्षणमप्येवं ज्ञेयं लक्ष्मविचक्षणैः।
विकर्षणः स विज्ञेयः स्वस्थानेऽन्यं विकर्षति ॥ ३०७ ॥

लक्षणों के विचक्षण-पण्डित या गुणियों को इसी भाँति 'अवघर्षण' भी जानना चाहिये। और जो अपने स्थान पर अन्य (स्वर) को खींचता है उसे 'विकर्षण' जानना चाहिये।

अग्रे गत्वा निवृत्तोऽसौ पुनः स्वस्थान उच्यते।
पश्चाद्गत्वा निवृत्तोऽसावग्रस्थान इति स्मृतः ॥ ३०८ ॥

आगे जाकर लौटा हुआ (स्वर) 'पुनः स्वस्थान' कहलाता है। पीछे जाकर लौटा हुआ स्वर 'अग्र स्वस्थान' संज्ञा वाला होता है।

रेफयुक्तस्य वर्णस्य कारणं कर्त्तरी मता।
मध्यमातर्जनीभ्यां या क्रमात् सा सम्भवा बहिः ॥ ३०९ ॥

रेफ़वाले वर्ण का कारण कर्त्तरी मानी गई है। जो कि मध्यमा (बीच की अँगुली) तथा तर्जनी (अँगूठे के पास की अँगुली) इन दोनों से क्रम से वह कर्त्तरी बाहर उत्पन्न होती है।

यदुद्दिश्य क्रियारम्भस्तस्यैव श्रवणं स्फुटः।
स्वरस्याभिभवान्नैनमन्यस्यादुर्मनीषिणः ॥ ३१० ॥

जिसको उद्देश (ध्यान) में रखकर क्रिया का आरम्भ होता है (वीणा बजाई जाती है) उसी स्वर का स्फुट (साफ़ २) सुनना तथा उसके अभिभवादभाव से इस स्वर को पण्डित (चतुर) पुरुष दूसरे का (व्युत्पादक) नहीं बताते। 'वैमन्यं' ऐसे पाठ में 'अधोगत' अर्थ होता है।

स्वरद्वयमभिव्याप्य मृदालुः पूर्ववद्भवेत्।
हुम्फितस्यैकदेशत्वान्न मुद्रा पृथगुच्यते ॥ ३११ ॥

दो स्वरों में भली भांति व्यापक होकर वह मृदालु-स्वरों का क्रमशः रोचक उतार (अवरोह) पहिले जैसा (आरोह सदृश) होता है।

'हुम्फित' नामक गमक का एक देशी होने से एक जगह ही रहने से 'मुद्रा' नामक गमक पृथक्-नहीं कही जाती है। (हुम्फित और मुद्रा एक ही के दो नाम हैं)

एवं लक्षणसंयुक्ता गमका बहवो मताः।
न ते मयोदिताः सर्वे ग्रन्थविस्तारभीतिना ॥ ३१२ ॥

इस भाँति के लक्षणों के सहित गमकें तो बहुत सी मानी गई हैं। वे सब हमने ग्रन्थ के बढ़ जाने के भय से नहीं बताईं।

इति गमकाः (गायक प्रकरणम्)

स्वरस्य हेतुभूताया वीणायाश्चाक्षुषत्वतः ।
तत्र स्वरविबोधार्थं स्थानलक्षणमुच्यते ॥ ३१३ ॥

स्वर की हेतुभूत-कारण स्वरूप वीणा का चाक्षुषत्व अर्थात् नेत्रत्व होता है। भाव यह है कि-जिन्हें वीणा का बोध नहीं है, वे स्वर-मार्ग में अन्धे के समान हैं। अतः उस स्वर-विबोध (ज्ञान) के लिये स्थानों का लक्षण कहा जाता है।

ध्वन्यवच्छिन्नवीणायां मध्ये तारकमःस्थितः ।
उभयोः षड्जयोर्मध्ये मध्यमं स्वरमाचरेत् ॥ ३१४ ॥

जिसकी ध्वनि अवच्छिन्न शुद्ध या सही हो ऐसी वीणा के बीच में तार सप्तक का 'स' षड्ज स्थित रहता है। तथा उससे मध्य सप्तक के षड्ज तक इन दोनों षड्जों के मध्य भाग में मध्यम स्वर को रखना ठीक है। दोनों षड्जों के मध्य में ही रहने से वह 'मध्यम' कहलाता है।

त्रिभागात्मकवीणायां पञ्चमः स्यात्तदग्रिमे ।
षड्जपञ्चमयोर्मध्ये गान्धारस्य स्थितिर्भवेत् ॥ ३१५ ॥

त्रिभागात्मक—जो मन्द्र, मध्य, तार इन तीन भागों में विभाजित है, ऐसी वीणा में उपरि वर्णित उस 'मध्यम' के आगे 'पञ्चम' स्वर होता है। तथा-षड्ज और पञ्चम के बीच में 'गान्धार' स्वर की स्थिति (स्थान) होता है। भाव है कि षड्ज से गान्धार तीसरा है तथा पञ्चम से भी तीसरा ही होता है। अतः 'स+प' के बीच में बताया है।

स-पयोः पूर्वभागे च स्थापनीयोऽथ रि-स्वरः ।
स-पयोर्मध्यदेशे तु धैवतं स्वरमाचरेत् ॥ ३१६ ॥

अथ—अब 'रि' ऋषभ स्वर कहते हैं यह 'स+प' के पूर्व (पहिले) भाग में स्थापन करना (रखना) चाहिये। 'स+प' का मध्य भाग गान्धार होता है तो पूर्व भाग ऋषभ ही होगा और 'स+प' के मध्य देश (बीच के हिस्से) में धैवत स्वर को रखना ठीक है। जैसे—'सं नि ध प' या 'प ध नि सं'।

तत्रांशद्वयमंत्यागान्निषादस्य स्थितिर्भवेत् ॥ ३१७ ॥

वहां से आगे २ अंश के छोड़ने पर निषाद की स्थिति होती है।

इति शुद्धस्वराः। यह शुद्ध स्वर होते हैं।

भागत्रयान्विते मध्ये मेरौ ऋषभसंज्ञितान् ।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात्कोमल-रि-स्वरम् ॥ ३१८ ॥

'मेरु' वीणा के दण्डस्थ उपरि स्वर से तीन भागों के समेत जो है उसके बीच में ऋषभ संज्ञित (नामक) स्वर से २ भाग या दूसरे भाग के उत्तर (बाद)

में मेरु से ऋषभ स्वर कोमल करना चाहिये। तात्पर्य्य यह निकला कि 'मेरु' षड्ज से दूसरा स्वर कोमल ऋषभ, तथा तीसरा शुद्ध 'रि' होता है।

मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगान्धारमाचरेत् ॥ ३१९ ॥

मेरु और धैवत के बीच में तीव्र गान्धार रहा करता है। जैसे 'स रि रि ग ग म म प ध' कुल षड्ज से लेकर ये सब ९ स्वर हुये ४ इधर ४ उधर बीच में तीव्र या शुद्ध गान्धार है।

भागत्रयविशिष्टेऽस्मिन् तीव्रगान्धार-षड्जयोः।
पूर्वभागोत्तरं मध्ये मं तीव्रतममाचरेत् ॥ ३२० ॥

तीव्र गान्धार तथा षड्ज दोनों के बीच में शेष तीन भागों में से पूर्व भाग के उत्तर (आगे) में तीव्रतम मध्यम को रखना चाहिये।

भागत्रयान्विते मध्ये पञ्चमोत्तरषड्जयोः।
कोमलो धैवतःस्थाप्यः पूर्वभागे मनीषिभिः ॥ ३२१ ॥

पञ्चम से उत्तर-आगे तथा षड्ज के बीच में तीन भागों में से पूर्व (पहिले) भाग में बुद्धिमानों के द्वारा कोमल धैवत स्थापित किया जाता है।

तथैव ध-मयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत् ॥ ३२२ ॥

उसी भांति धैवत तथा षड्ज दोनों के बीच में तीन भागों में से पूर्व भाग के दूसरे स्वर के ऊपर तीव्र निषाद रखा जाता है।

ऋषभः शुद्ध एवासौ पूर्वगान्धार इष्यते।
गान्धारः शुद्ध एवासौ रिस्तीव्रतर इष्यते ॥ ३२३ ॥

शुद्ध ऋषभ ही "पूर्वगान्धार" कहलाता है। तथा शुद्ध गान्धार ही 'तीव्रतर ऋषभ' कहा जाता है।

अतितीव्रतमो गः स्यान्मध्यमः शुद्ध एव हि।
धैवतः शुद्ध एवासौ निषादः पूर्वसंज्ञकः ॥
निषादः शुद्ध एवासौ धस्तीव्रतर इष्यते ॥ ३२४ ॥

शुद्ध मध्यम को ही 'अति तीव्रतम गान्धार' कहते हैं। और शुद्ध धैवत ही 'पूर्व निषाद' ऐसी संज्ञा वाला होता है। एवं शुद्ध निषाद ही 'तीव्रतर-धैवत' यूं कहलाता है।

एवं स्यात्सर्वयन्त्रेषु स्वरस्थानस्य लक्षणम् ॥ ३२५ ॥

इसी प्रकार सब यन्त्र (वाद्यों) में स्वरों के स्थानों के लक्षण होते हैं।

* इति विकृतस्वराः *

स्वरज्ञानविहीनेभ्यो मार्गोऽयं बोधितो मया।
स्वरसंवादिताज्ञानं स्वरस्थापनकारणम् ॥ ३२६ ॥

स्वरों के ज्ञान से जो विहीन हैं अर्थात्—जिन्हें शुद्ध-विकृतों का नाम तथा स्थान-भेद नहीं मालूम है, उनके लिये यह मार्ग (रास्ता) हमने बताया है। स्वर संवादिता का ज्ञान स्वर स्थापन का कारण होता है। अर्थात्—स्वरों का परस्पर वादि संवादित्व का ज्ञान स्वरों के स्थापन से होता है। जैसे पीछे सम-श्रुतिक बता आये हैं 'स-प' 'रि-ध' 'ग-नि' 'म-स' उसे ही आगे फिर कहते हैं।

प्रवर्त्तन्ते स्वराः सर्वे सदा संवादिरूपिणः।
षड्ज-पञ्चम-भावेन षड्जे ज्ञेयाः स्वरा बुधैः ॥
ग-नि-भावेन गान्धारे म-स-भावेन मध्यमे ॥ ३२७॥

परस्पर सब स्वर हमेशा ही सम्वादि-रूप में रहा करते हैं। जैसे षड्ज-पंचम के भाव से षड्ज में पण्डितों के द्वारा स्वर (सम्वादित्व) जानना चाहिये। वैसे ही ('रि-ध' का और) गान्धार और निषाद के भाव से गान्धार में, एवं मध्यम और षड्ज के भाव से मध्यम में (सवादित्व) जानना चाहिये।

* इति स्वर स्थानलक्षणम् *

अथ शुद्धैः स्वरैर्मेलाः कथ्यन्ते विकृतैरपि।
तेषां मितिः ख-वेदौ च वन्हिश्चन्द्रद्वयं तथा ॥ ३२८ ॥

अब 'मेल' थाटों के विषय में कहते हैं, वे मेल शुद्ध स्वरों के भी होते हैं तथा विकृत (कोमलों) के द्वारा भी। उन सब मेला की संख्या २१३४० होती है।

मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यञ्जनशक्तिमान्।
श्लिष्टोच्चारणमेवात्र स तूदारः प्रकीर्त्तितः ॥ ३२९ ॥

किसी भी प्रकार के स्वरों का एक समूह (संघ) मेल (थाट) कहलाता है। वह मेल राग को व्यञ्जन-व्यक्त (प्रकट) करने की शक्ति वाला होता है।

रागों में (मेलान्तरगत) जो श्लिष्ट या सीधा (सरल) उच्चारण होता है वही यहाँ "उदार" कहलाता है।

आद्याद्यमूर्च्छनाभिश्च मेला ज्ञेया विचक्षणैः ॥ ३३० ॥

वे मेल प्रत्येक पहिली २ मूर्च्छनाओं के द्वारा बुद्धिमानों को जानने चाहिये।

सप्तभिश्च स्वरैः पूर्णः षड्भिस्तैः षाडवो मतः ।
औडुवः पञ्चभिः प्रोक्त एवं मेलास्त्रिधाः मताः ॥ ३३१ ॥

सात स्वरों के प्रयोग से 'सम्पूर्ण' तथा छै स्वरों से 'षाडव' एवं पाँच स्वरों के प्रयोग से 'औडुव' कहलाते हैं। यह तीन प्रकार के मेल माने हैं।

षाडवा औडुवाः षड्जं विना मेला न ते मताः ।
शुद्धत्वविकृतत्वाभ्यामिति मेला मयोदिताः ॥ ३३२ ॥

ये 'षाडव' छै स्वर के तथा 'औडुव' ५ स्वर के मेल विना षड्ज के नहीं माने जाते। भाव यह है कि किसी राग में १ स्वर न लगाने या वर्जित होने से षाडव, तथा-दो स्वरों के वर्जित होने पर औडुव होना है। किन्तु वे वर्जित होने वाले स्वर षड्ज के अतिरिक्त ही हुआ करते हैं। अर्थात्—षड्ज किसी भी औडुव-षाडव राग में वर्जित नहीं होता। अतः 'षड्ज के बिना मेल नहीं माने जाते' ऐसा लिखा है। मैंने भी शुद्ध तथा विकृत दोनों प्रकार के स्वरों के मेल इस ग्रन्थ में कहे हैं।

तत्र ये च प्रसिद्धाः स्युरञ्जका ये विशेषतः ।
लक्षणानि ब्रुवे तेषां सम्मत्या च हनूमतः ॥ ३३३ ॥

उनमें जो विशेषतया प्रसिद्ध हैं, तथा जो अधिक रञ्जक (चित्त को प्रसन्न करने वाले) हैं, हनूमान जी की सम्मति के द्वारा उनके लक्षण मैं कहता हूँ।

गीतियुक्ताश्च ये रागाः शुद्धास्ते शास्त्रसम्मताः ।
शुद्धा भिन्ना तथा गौडी वेसरा च ततः परम् ।
साधारणीति पञ्चैतास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ ३३४ ॥

जो राग गीतियों के सहित हैं या उनके लक्षणों से सम्पन्न हैं वे ही शास्त्र से माने जाते हैं। गीतियां पांच प्रकार की होती हैं। १ शुद्धा, २ भिन्ना, ३ गौड़ी, ४ वेसरा, ५ साधारणी, अब मैं इनके लक्षण बताता हूँ।

शुद्धा वक्रस्वरा ज्ञेया ललितस्वरसंयुता ।
भिन्ना सूक्ष्मस्वरैर्युक्तैर्मधुरैर्गमकैर्युता ॥ ३३५ ॥

'शुद्धा' नाम की गीति वह होती है जिसमें स्वर वक्र होकर लगते हैं यानी बिना क्रमके आगे के पीछे तथा पीछे के आगे वक्र स्वर लगने पर वह 'वक्र स्वरा' कहलाती है जैसे आसावरी में—'स नि ध म प ग रे स'। और वह 'ललित' (सुन्दर अच्छे स्वरों वाली है) 'भिन्ना' उसे कहते हैं जो सूक्ष्म—विस्तार हीन थोड़े (अनालापित) स्वरों सहित-मधुर-गमकों के साथ होती है।

आरोहणावरोहाभ्यां स्थानत्रयसु—शोभिता ।
अखण्डितस्थितिः स्थानत्रये गौडी मता सताम् ॥ ३३६ ॥

आरोहण तथा अवरोहण इन दोनों ही के द्वारा जो स्थान त्रय-मुदार-उदार, तारक, इन तीनों में सु-शोभित होती है, अथवा जिस (गीति) के द्वारा तीनों स्थान सुशोभित होते हैं। क्योंकि उन मन्द्र मध्य, एवं तारों में उसकी अखण्डितत्व (परिपूर्ण) स्थिति, या निवास होता है, वह गीतिज्ञों की मानी हुई 'गौड़ी' नामक गीति है।

हुम्फितकम्पिताभ्याश्चाऽनुद्रुतसरलैः स्वरैः ।
वेगस्वरैश्चतुर्भिश्च वर्णैः सा वेसरा मता ॥ ३३७ ॥

अब 'वेसरा' नामक गीति का लक्षण कहते हैं—हुम्फित नामक गमक जो एक जगह पर ही रहकर मुद्राऽऽकार हुआ करती है। तथा 'कम्पित' गमक (एकत्र कम्पितो ज्ञेयो हननाभ्यां स्वरद्वयम) एक स्थान पर ही दो स्वरों के हनन (आघात) से स्वर कम्पन से, तथा उन सरल-सीधे स्वरों के प्रयोग- द्वारा 'ग म प ध नि' कूट स्वर वर्जित-यथा-'प नि म ध ग' तथा उन 'अनुद्रुत' स्वरों के द्वारा जो पहिले विलम्बित (लय) में होकर पीछे द्रुत (लय) में हों यथा।

+ ३
स रि ग म रि ग म प ।
+ ३
सरि गम रिग मप गम पध मप धनि ।

यह चार प्रकार के ग्रह तथा चार वर्णों द्वारा (उपलक्षित) 'वेसरा' नामक गीति मानी गई है।

चतुर्गीतिगतं लक्ष्म श्रिता साधारणी मता ॥ ३३८ ॥

'साधारणी' नामक गीति वह है-जो ऊपर कहे गये, चार प्रकार की गीतियों के लक्षणों समेत हो वह 'साधारणी' मानी गई है।

इति गीतयः। (यहाँतक गीतियाँ कहीं हैं)

रञ्जकः स्वरसन्दर्भो राग इत्यभिधीयते ।
सर्वेषामपि रागाणांसमयोऽत्र निरूप्यते ॥ ३३९ ॥

स्वरों का एक रञ्जक संदर्भ (सुसङ्गठित-समूह) राग कहलाता है।

अब यहाँ सभी रागों के (गायन के) समय का निरूपण (निर्णय) या वर्णन किया जाता है।

धन्याश्रीर्मालवश्रीश्च रक्तहंसो वसन्तकः ।
देशाख्यो देशकारी च भूपाली प्रभमस्तथा ॥ ३४० ॥

१-धन्याश्री (श्रीराग की धन्या 'रागिनी' भरत मत) या धनाश्री, २-मालव श्री ('मालव' जिसे अब 'मारवा' राग कहते हैं उसकी 'श्री' शोभा यानी पत्नी है

"भरत मत") इसे अब 'मालसिरी' कहते हैं। ३-रक्त हंस, ४-बसन्त, ५-देशाख्य, देश नामक राग, मतान्तर में देश, देशाख्य, देशाख, देशाक्षी यह चारों पृथक् २ हैं तथा रूप भी पृथक्। वास्तव में देशाख्य का भ्रन्शित नाम 'देशाख' है, तथा देशाक्षी, देशी आदि पृथक। ६—देशकारि, ७—भूपाली, भरत मत में यह दोनों मेघ राग की रागिनी मानी हैं। ८—प्रभभ,

मध्यमादिः कोल्लहासो बङ्गाली भैरवस्तथा।
नारायणी विभासश्च प्रातर्गेया इमे बुधैः ॥ ३४१ ॥

९ मध्यमादि, मध्यम स्वर, आदि ग्रह है जिसका, भरत मत में 'मधुमाधवी' कोई २ मधु (चैत्र) माधव (वैशाख) यानी वसन्त ऋतु का संगीत बताते हैं। '१० कोल्लहास' इसे कोई 'कोहलास्य' कोहलाचार्य्य के 'आस्य' मुख से कथित राग मानते हैं।

११ बङ्गाली १२ भैरव १३ नारायणी १४ विभास, यह राग पण्डितों के द्वारा प्रातःकाल ३ से ६ तक गाए जाते हैं।

रागों के गायन-समय में नितान्त मतभेद हैं अतः वे सब लिखना अप्रासंगिक है क्या कि यह ग्रन्थ 'हनुमत मत' का है।

गुर्ज्जरी वेरगुप्तिश्च कौमारी कज्जली तथा।
शङ्काराभरणस्तोडी सोरठी रामकृत्तथा ॥ ३४२ ॥

१ गुर्ज्जरी, २ वेरगुप्ति, ३ कौमारी, ४ कज्जली, ५ शङ्काभरण, ६ तोड़ी, ७ सोरठी, ८ रामकृत् (रामकरी) या रामकली।

नादः रामक्रिया रागो वेलावली कुडायिका।
गुणकरी च जयश्रीश्च तथैव शिवबल्लभा ॥ ३४३ ॥

९ नाद, (मेघनाद राग) १० रामक्रिया राग (कोई २ रामकली को ही 'रामक्रिया' तथा गुणकली को गुणक्रिया या 'क्रिय' कहते हैं,) ११ वेलावली (विलावल), १२ कुडायिका, १३ गुणकरी, १४ जयश्री अथवा 'जयति श्री', १५ शिवबल्लभा-गौरी या 'पार्वती' (पहाड़ी) रागिनी।

एते रागाः प्रगीयन्ते प्रथमप्रहरोत्तरम् ॥ ३४४ ॥

यह इतने राग दिन के प्रथम प्रहर में गाए जाते हैं। यहां 'उत्तर' शब्द का अर्थ 'आगे, पीछे या बाद में न होकर केवल पाद 'पूर्ति' के निमित्त है।

हंसाख्यो दीपको रागः काम्भोदी कङ्कणस्तथा।
सारङ्गो देवगान्धारो रागो देवगिरिः परः ॥ ३४५ ॥

१ हंसाख्य राग (हंस+आख्य-नामक) २ दीपक राग ३ काम्भोदी इसे कोई आचार्य्य-काम्बोजी, काम्भोजी (काम्बोज देश की) रागिनी बताते हैं, कोई २

इसे ही खम्माच भी कहते हैं। ४ करुण राग, ५ सारङ्ग, ६ देवगान्धार राग। ७ देवगिरि। आगे—

ऐरावतोऽर्जुनो रागो रत्नावली ततः परम्।
आमावरी च हिन्दोलो मनोहरस्तथैव च॥ ३४६॥

८ ऐरावत, ९ अर्जुन राग, १० रत्नावली, ११ ततः परम-इससे आगे आमावरी, १२ हिन्दोल, १३ मनोहर।

वैजयन्ती तथा रागाः सर्वाश्चैव वराटिकाः।
एते रागाः प्रगीयन्ते द्वितीयप्रहरोत्तरम्॥ ३४७॥

१४ वैजयन्ती या जय जयन्ती (जैजैवन्ती) १५ सर्वा, १६ वराटिकाया वैराटी यह राग दिन के दूसरे प्रहर में गाये जाते हैं।

घण्टारागस्तथा ढक्कः श्रीरागः कोकिलः पुनः।
सौदामिनी कुरङ्गश्च त्रिवर्णा च सुरालयः॥ ३४८॥

१ घण्टाराग, २ ढक्क (डँवरू राग) ३ श्रीराग, ४ कोकिल, ५ सौदामिनी, ६ कुरङ्ग, ७ त्रिवर्णी (शुद्ध नाम 'त्रिवेणी') ८ सुरालय-देवालय राग या 'कलारी' (ताड़ीखाने का राग)

पूर्वी विहङ्गड़ो रागः सामन्तः कुमुदस्तथा।
वडहंसः पहाडी च चक्रधारस्तथैव च॥ ३४९॥

९ पूर्वी, १० विहङ्गड़ा, यह आधुनिक हिन्दी का मुसलमानों द्वारा अपभ्रन्शित प्रचलित शब्द श्लोक में लिखा है। इसका शुद्ध रूप 'विहङ्गमरागः' है। ११ सामन्त-राग १२ कुमुद राग कोई आचार्य कुमोद, कामोद, कामोदी, कुमोदिनी इत्यादि कहते हैं। १३ बड़हंस, शुद्ध शब्द 'वर हंस' भरत ने इसे मालकोश का तृतीय पुत्र राग बताया है। १४ 'पहाड़ी' यह राग 'हनुमत' मत का कभी नहीं होसकता, और न हनुमान् जी ने यह शब्द ही लिखा होगा। क्योंकि यह शब्द तो आधुनिक हिन्दी का है जो उस ज़माने में असम्भव था अलबत्ता पार्वती या पर्वत राग होसकते हैं। १५-चक्र-धार यह 'चक्रधार' प्रसिद्ध राग है छन्द की मात्रा समान रखने को 'धर' का 'धार' किया है।

कल्याणाख्यवराली च मञ्जुभाषा ततः परम्।
सिंहरवस्तथा रागस्तथैव पटमञ्जरी॥ ३५०॥

१६ कल्याणाख्य, कल्याण नामक राग, १७ वराली १८ मञ्जुभाषा, १९ सिंह-रव राग, २० पटमञ्जरी।

सर्वे गौलास्तथा नाटाः कल्पतरुस्तथैव च ।
एते रागाः प्रगीयन्ते तृतीयप्रहरोत्तरम् ॥ ३५१ ॥

२१ सब तरह के 'गौलराग' तथा- २२ कई प्रकार के 'नाट' राग २३ कल्पतरु, इतने राग दिन के तीसरे प्रहर में गाये जाते हैं ।

सैन्धवो मेघरागश्च मल्लारी पञ्चमस्तथा ।
नीलाम्बरी मुखारी च भैरवी ललितस्तथा ॥ ३५२ ॥

१ सैन्धव राग, २ मेघराग, ३ मल्लारी, ४ पञ्चम राग, ५ नीलाम्बरी, ६ मुखारी, ७ भैरवी, ८ ललित ।

मेघनादस्तथा देशी रागो मङ्गलकोशकः ।
गौण्डरागश्च मल्लारो राग आनन्दभैरवी ॥ ३५३ ॥

९—मेघनाद, १०—देशी, ११—मङ्गल कोश, १२—गौण्ड (गौड़), १३—मल्लार, १४—आनन्द भैरवी ।

शङ्करानन्दमानव्यौ राजधानी च शर्वरी ।
सावेरीराग इत्येताः सर्वदा च सुखप्रदाः ॥ ३५४ ॥

१५-शङ्करानन्द, १६-मानव्य, (मानवी) १७-राजधानी, १८-शर्वरी, १९-सावेरी । यह इतने राग सदैव (हमेशा) सुख के देने वाले हैं । अर्थात्—हर समय गाए जाते हैं ।

असाधारणधर्म्मा ये लक्षणत्वेन कीर्त्तिताः ।
तैरेव रागभेदाः स्युस्तांस्तु वक्ष्येऽत्र कालतः ॥ ३५५ ॥

रागों के जो असाधारण (खास २) धर्म्म या नियम हैं वे तो लक्षण से कहे गए हैं । यानी मुख्य २ बातें समझाई गई हैं । उन्हीं के द्वारा रागों के (अन्य) भेद होते हैं । अर्थात्—उसी भाँति बहुत से ऐसे विषय हैं जो साधारण होने से नहीं बताये । वे सब तो अब (आगे) समय आने पर अर्थात् 'आवश्यकता पड़ने पर' कहेंगे ।

न्यासांशौ यत्र नोच्येते तत्र षड्जं विदुर्बुधाः ।
आदावुद्गृह्यते येन स तानोद्ग्राहकारकः ॥ ३५६ ॥

किसी वस्तु को छोड़ना, रख देना, समाप्त करना न्यास कहलाता है। सङ्गीत में वह न्यास होता है जिस पर राग न्यस्त (समाप्त) होता है, और वह प्रायः 'सम' पर ही आया करता है। तथा 'अंश' जिसके विषय में पूर्व पर्याप्त कहा जा चुका है। प्रायः 'अंश' ही स्वर वादी हुआ करता है। जहाँ यह दोनों नहीं बताए होंगे तो पण्डित या चतुर लोग वहाँ षड्ज समझ लेंगे। अर्थात्—न्यास, अंश बिना वर्णन किये राग में 'षड्ज' जानना चाहिये।

प्रारम्भ में जिस स्वर से 'उन' ऊपर के भाग को 'गृह्यते' ग्रहण किया जाता है, वह तान (तनु विस्तारे) या प्रस्तार का 'उद्ग्राहकारक' स्वर कहलाता है। अर्थात्-ऊपर तार सप्तक तक फैलाने या बिछाने के स्वरों में से पहिला स्वर राग का 'उद्ग्राह' होता है। यथा रत्नाकरे—

'गीतमुद्ग्राह्यते येन स उद्ग्राहः प्रकीर्त्तितः।'

अर्थात्—जिस स्वर से गीत को अन्तरा या अवहरोही पर ले जाने या ग्रहण किया जाता है वह 'उद्ग्राह' कहा गया है।

————इति समय निरूपणम्————

यह रागों का (गायन) समय वर्णन-भाग समाप्त हुआ।

—:❀:—

शुद्धमेलोद्भवः पूर्णो धैवतादिकमूर्च्छनः ।
आरोहे ग-नि-वर्जः स्याद्रागः सैन्धवनामकः ॥
आम्रेडितस्वरैर्युक्तः स्फुरितेन च शोभितः ॥ ३५७ ॥

प्रथम 'सैन्धव' राग का लक्षण या स्वर विवरण कहते हैं। शुद्ध स्वरों से उत्पन्न होनेवाला, जिसमें धैवत स्वर की आदि मूर्च्छना है, इसके आरोह में गान्धार व निषाद वर्जित हैं। इस प्रकार यह "सैन्धव" नाम का राग होता है। आम्रेडित स्वरैर्युक्तः अर्थात किसी स्वर को २ बार उच्चारण करने पर उस द्वितीय स्वर को 'आम्रेडित' कहते हैं। यथा "सं ऽ प प" सं ऽ ध ध" इस प्रकार हन्ति होने से (गमक) "स्फुरित" होता है अर्थात स्वर स्पष्ट होकर शोभा धारण करता है।

स्वरगमनम्-प्रस्तारोऽथवाऽऽलापचारि—

धमरिममपपधधा। सनिधधपमपमा गग, गरिसा। धमरिममम गरि गरि, पम गरि। निनिधम पम गरि पपमगरिग गगरिस ॥

इति सैन्धवः। सर्वकालीयः। १।

यह सैन्धव राग हुआ। जो सदैव गाया जाता है।

आरोहे रि-ध-हीना स्यात पूर्णा शुद्धस्वरैर्युता ।
गान्धारस्वरपूर्वा स्याद्धनाश्रीर्मध्यमान्तगा ॥ ३५८ ॥

'धनाश्री' का लक्षण (राग-भेद) कहते हैं यह रागिनी इस (हनुमत) मतमें ३ प्रकार की (सम्पूर्ण, षाडव, औडुव) मानी गई है। पहिले-सम्पूर्ण-स्वर प्रयुक्ता 'पूर्णा' होती है। इसके आरोहण में ऋषभ, धैवत दोनों स्वर नहीं लगते अतः इसे 'आरोहे रि-ध-हीना' लिखा है। किन्तु वे (रि, ध) अवरोही में लगते हैं, अतः यह 'औडुव-सम्पूर्ण उपजाति की होती है। इसमें सब स्वर शुद्ध लगते हैं। जो आधुनिक 'वेलावली' मेल में जाननी चाहिये। इसका ग्रह-गान्धार, है। अतः पहिला स्वर गान्धार लिखा है। 'मध्यम' पर इसका न्यास है। (जहाँ राग समाप्त होता है) अतएव-'मध्यमान्तका' बताई है। इसके 'स + प' वादी-सम्वादी जानने चाहिये।

ध-नाश्रीश्च ध-हीना सा रि-ध-हीनापि सम्मता ॥ ३५९ ॥

मूल पुस्तक में 'ध' के आगे समास-सूचक '-' यह चिन्ह देकर 'ध-नाश्री' यूँ लिखने का यह भाव भी होसकता है कि (ध) धैवत (ना) नहीं है (श्री) शोभा या अस्तित्व जिसमें, वह ध- हीना धैवत वर्जित 'षाडव धनाश्री' होती है। आरोही तथा अवरोही दोनों ही में 'रि-ध' ऋषभ तथा धैवत दोनों स्वरों से हीन (वर्जित) होने से वह औडुव धनाश्री मानी गई है।

इति सम्पूर्ण-धनाश्रीः । प्रातः कालीया ॥ २ ॥
ऊपर 'सम्पूर्ण-धनाश्री' बनाई गई है जो प्रातःकाल गाई जाती है ।
इति षाडव-धनाश्रीः । ३ । इत्यौडुव-धनाश्रीः ॥ ४ ॥

आधे श्लोक में यह षाडव औडुव दोनों प्रकार की धनाश्री बनाई । इस भांति १ सैन्धव (राग) तथा ३ धनाश्री कुल ४ राग हुये । यह पारिजात (हनुमत) मत की धनाश्री हुई, अब 'रत्नाकर' (कृष्ण मत) की धनाश्री भी देखियेः—

तज्ज्ञा धन्नासिका षड्जग्रहांशन्यासमध्यमा ।
रिवर्जिता गपाल्पा च वीरे धीरैः प्रयुज्यते ॥

'धन्नासिका' रागिनी उस (चन्द्रप्रियः मेल) से उत्पन्न होती है । इसका ग्रह षड्ज है । तथा वही (स) अंश (वादीस्वर) है । मध्यम पर न्यास (गीत-समाप्ति) है । एवं ऋषभ वर्जित होने से 'षाडव-वर्ग' है । गान्धार इसमें अल्प (कम) लगता है जो अनुवादी है । यह धीर (निपुण-गायक) पुरुषों के द्वारा वीर रस में प्रयुक्त होती (गाई जाती) है । अथवा 'वीर' तथा 'धीर' शान्त रस (ज्ञान-वैराग्य) में गाई जाती है ।

अब 'राग विबोध' (शिवमत) की धनाश्री देखिये—

'धन्याशिका रिधोना सांशन्यासग्रहा प्रातः ।'

धन्याशिका (धनाश्री) रागिनी में रि० ध० यह दोनों स्वर ऊन (स्वल्प) या दुर्बल रहते हैं । षड्ज स्वर इसका अंश (वादी) तथा (ग्रह आदि स्वर) एवं न्यास भी वही है । यह प्रातः काल गाई जाती है और 'श्रीराग' के मेल (थाट) में है ।

उपरोक्त तीनों मतों की 'धनाश्री' आप देख चुके । अब केवल एक भरत मत शेष रह गया, और वही इस समय विशेषतया उत्तर भारत में विशेष प्रचलित एवं मान्य है । भरत-मत की पुस्तकें इस समय हिन्दी तथा संस्कृत में भी 'भरत नाट्य शास्त्र' के अतिरिक्त छोटी बड़ी अनेकों विद्यमान हैं ।

उन संस्कृत पुस्तकों में भी २-१ के अतिरिक्त शेष सब आधुनिक (कुछ पूर्व) लिखित ही हैं । उनमें वर्णित राग-समुदाय कार्य्य रूप में परिणित भी होरहा (गाया जाता) है । अतः वे इस समय मान्य भी हैं । जैसे—

१-सङ्गीत मार्त्तण्ड २-राग विनोद ३-सङ्गीत समयसार ४-राग तरङ्गिणी ५-सङ्गीत मञ्जरी, ६-रागमञ्जरी ७-राग लक्षण ८-भरत कल्पलता मञ्जरी ९-अभिनवरागमञ्जरी १०-स्वर-मेल कलानिधि, ११-राग चन्द्रोदय १२-सङ्गीत दर्पण १३-राग कल्पपुष्प, १४-रागबोधिनी, १५-राग कल्पद्रुम, १६-नादविनोद, १७-कल्पद्रुमाङ्कुर, १८-मल्लयज्ञसङ्गीत, १९-राग चन्द्रिका, २०-सङ्गीत दामोदर, २१-सङ्गीत सारामृतोद्धार, २२-हृदय कौतुक, २३-अनूप सङ्गीत रत्नाकर, २४-सङ्गीत सोपान, २५-सङ्गीत सुदर्शन, २६-रागार्णव, २७-सङ्गीतराज कुम्भकर्ण नरेश मेदपाट (मेवाड़) अधिपतिप्रणीत, इत्यादि ।

'धनाश्री' तथा आगे और भी किसी राग पर यदि टीका में श्लोक उद्धृत होंगे वह इन्हीं सबका संग्रह होगा. अतः ग्रन्थों के प्रथक् २ नाम न लिखकर उदाहरण रूप में केवल प्राचीन-अर्वाचीन राग विवेचन पर आलोचना मात्र होगी।

'राग विबोध' (शिवमत) में धनाश्री 'श्रीराग' के मेल ठाठ में है किन्तु 'भरत-मत' में वही श्रीराग की चौथी रागिनी के रूप में है। अस्तु! बात एक ही है! अब केवल देखना है 'स्वर विधान' या वर्णन प्रकार? यथा—

चतुर्थी रागिनी ज्ञेया धन्याश्री 'धानसी' श्रियः।
गान्धारो प्राकृतोऽप्यस्यामृषभो कोमलो मतः॥
केचित्कौशिकरागस्य भार्य्याञ्चैमां जगुर्जना।
यस्यां कृत्रिमगान्धारस्तीव्रत्वमृषभे गतौ॥

अर्थात्—धन्याश्री या 'धानसी' श्री राग की चौथी रागिनी जाननी चाहिये। इसमें तीव्र गान्धार तथा कोमल ऋषभ माना जाता है। और कोई २ आचार्य्य इसे कौशिक (मालकोश) राग की भार्या बताते हैं। जिसमें कोमल गान्धार तथा ऋषभ तीव्र करके (गति में) लगाते हैं।

स्यातामारोहणे वक्रावृधौ वक्रोपजातिका।
निः वादी गश्च सम्वादी पञ्चमाऽस्याः स्वरग्रहम्॥
मध्यमे स्याच्च क्लिष्टत्वं तृतीयप्रहरे दिने। (सं० स० सा०)

आरोही में ऋषभ-धैवत दोनों वक्र होकर लगते हैं। यथा—'स ग रि म ध प नि सं'। अतः इसकी 'वक्र' उपजाति होती है। निषाद वादी तथा गान्धार सम्वादी है एवं पञ्चम इसका स्वर ग्रह है। मध्यम इसमें चढ़ी लगती है और दिन के तीसरे प्रहर में यह गाई जाती है। 'सङ्गीत दामोदर' में यह 'मालव' राग की रागिनी बताई है। यथा—

धानसी मानसी चैव रामकीरी च सिन्धुना।
आसावरी भैरवी च मालवस्य प्रिया इमाः॥

अर्थात्—१—धानसी (धनाश्री), २—मानसी, ३—रामकीरी (रामकली), ४—सिन्धुना (सैन्धवी), ५—आसावरी, ६—भैरवी। यह 'मालव' राग की रागिनियां हैं।

धन्याश्री साऽत्र सम्पूर्णा गनी स्याताञ्च विकृतौ।
मध्यमोऽप्यत्र शुद्धः स्याद्रागेऽहे स्याद्रधोऽभिधा॥

धन्याश्री सम्पूर्ण जाति की रागिनी है। गान्धार और निषाद इसमें विकृत (कोमल) होकर (आधुनिक 'काफी' मेल में) लगते हैं और मध्यम इसमें शुद्ध (कोमल) है। आरोही में ऋषभ-धैवत नहीं लगते। अतः औडुव-सम्पूर्ण (उप जाति) है।

कैश्चिन्मध्यमक्लिष्टस्य व्यवहारो विधीयते ।
सारूप्यं जायते तस्मान्मुल्तान्याः नोचितं भवेत् ॥

किसी-किसी के मत से इसमें कड़ी मध्यम का व्यवहार किया जाता है। जिससे 'मुल्तानी' का स्वरूप बन जाता है, किन्तु यह मान्य नहीं है।

न्यासो स्यात्पञ्चमोऽप्यस्यो गान्धारश्च ग्रहे मतः ।
पञ्चमान्शा प्रधानोऽपि चैतस्याः भैरवस्य च ॥
तोटिकायाश्च गान्धारमृदुता साम्यरूपिणी ।

इसका न्यास (समाप्ति) पञ्चम स्वर पर है। तथा ग्रह में गान्धार माना गया है। इसका अंश (या वादी) पञ्चम है और वही प्रधान स्वर (प्राण) भी है। इसके तथा भैरव एवं तोटिका (तोड़ी) के तीनों गान्धारों की कोमलता एक सी है। अर्थात्—इन तीनों में कोमल-गान्धार का प्रयोग एक ही ढँग से किया जाता है।

कल्याणीमेलके केचिद्गीयतेऽपि गविकृते ।
तथा केचित्तु गान्धर्वाः काफिमेलेऽपि गीयते ॥
रसे वीरे च शृङ्गारे हेमन्ते वा दिनोत्तरे ॥

कोई-कोई इसे 'कल्याणी मेल' (चढ़ी मध्यम) में भी गान्धार कोमल करके गाते हैं। तथा कोई-कोई गन्धर्व (गायक) काफी मेल में (ग. नि. कोमल म. शुद्ध) करके वीर रस या शृङ्गार में हेमन्त ऋतु अथवा दिन के उत्तर भाग (३-४ प्रहर) में गाते हैं।

धन्याश्रीः काफिमेले स्यान्निसौ च गमपाः धपौ ।
निधपाः गो पगौ चैव रसौ तुर्य्ये दिने मता ॥

धनाश्री काफी थाट की रागिनी है, इसके स्वर (ग्रहण) "निस गमप धप निध पग पग रिस" इस प्रकार हैं। और यह दिन के चौथे प्रहर में (३ से ६ बजे शाम तक) गाई जाती है।

द्वितीया या च धनाश्रीः भैरव्याः मेलके मता ।
निसौ गमौ च पनिसां निधौ पमपगाः रसौ ॥

दूसरे प्रकार की धन्याश्री जो भैरवी के मेल (थाट) में मानी जाती है, वह-'निस गम पनिसंनिध पम पग रिस' इस प्रकार है।

इस समय देश में एक अन्य प्रकार की धनाश्री भी प्रचलित है जिसे 'पूर्य्या धनाश्री' कहते हैं। अतः उसके विषय में भी उल्लेख कर देना भी उचित ही है।

१—वस्तुतः 'मुल्तानी' भी मत-भेद में एक प्रकार की धनाश्री ही मानी जाती है, कोई कोमल शुद्ध मध्यम की मार्गी तथा चढ़ी मध्यम की 'देशी—मुल्तानी, धनाश्री' मानते है। क्योंकि स्वर ग्रहण (पकड़) दोनों की एक-सी ही है। तथा कोई मिश्रित रागिनी मानते है।

पूर्णिकाधानसी सा च पूर्व्या मेले सुमिश्रिता।
निरभ्यां विकृता ज्ञेया मक्रिष्टा धद्वयोदिता॥

इस श्लोक में 'निरभ्यां' शायद प्रमाद-ग्रस्त है 'रिधभ्यां' होना चाहिये था, क्योंकि पूर्वी मेल में जिसका पूर्व-नाम 'काम वर्द्धिनी' है, रि ध कोमल है वह 'पूर्णिका धानसी' होती है (पूर्व्या धनाश्री) जो पूर्वी के मेल में है मध्यम चढ़ी तथा धैवत दोनों, मिश्रित रागिनी जाननी चाहिये।

निऋगाश्च मपौ चैव धपौ चैव मगौ तथा।
मऋगाः धमगाश्चैव रमौ स्याद्विवसान्तरे॥
मृदुलो धैवतश्चेतः नभोजश्च ततो मतः॥

अब इसकी स्वर ग्रहण (पकड़) बता रहे हैं। 'नि रि ग मप, धप मग, मरिग, धमग, रिस" यूँ है। यह दिवस (दिन) के अन्त (चौथे प्रहर) में (३ से ६ बजे तक) गाई जाती है। और इसमें इधर से यानी आरोही में धैवत मृदु (कोमल) लगता है। तथा उधर से (अवरोही में) प्राकृतिक (तीव्र) लगता है।

पूर्णिका धानसी शुद्धा मक्रिष्टा चर्षकृत्रिमा।
निषादमन्द्रमारभ्याऽऽरोह्यां षड्जेन वञ्चिता॥
साऽवरोह्यां निषादेन धवका गपुनर्भवा।
मध्यमान्शा परागह्ने सा गीयते गायनोत्तमैः॥

शुद्ध-पूर्व्या धनाश्री में मध्यम चढ़ी तथा ऋषभ-धैवत दोनों कोमल लगते हैं। मन्द्र सप्तक के निषाद से आरम्भ करके आरोही में षड्ज से वञ्चित होती है। भाव यह है कि मन्द्र 'नि' इसका ग्रह है तथा आरोही में षड्ज छूट जाता है। किन्तु यहां पारिजात 'मेल निर्णय' के इस नियम से विरोध होता है कि-'षड्जं बिना मेलाः न ते मताः। अर्थात्—कोई भी मेल (थाट) षड्ज के बिना (प्रारम्भ के) नहीं माने जाते हैं। अस्तु। और वह अवरोही में निषाद द्वारा वञ्चित रहती है। अर्थात्—'नि' नहीं लगता। धैवत इसमें वक्र रूप से (उल्टा होकर) लगता है। जैसे 'संपधमग' गान्धार इसका पुनर्भव है अतः इसे 'गपुनर्भवा' लिखा है। यानी गान्धार की पुनुरुक्ति होती है। जैसे—धप मग, मरिग, धमग, रिस। मध्यम इसका अंश (वादी-स्वर) है। और यह उत्तम (अच्छे) गायकों के द्वारा अपरान्ह-काल में (दिन के १ से ३ बजे तक) गाई जाती है।

तीव्रास्तु निगमाः यस्यां कोमलर्षभधैवतौ।
पान्शा सम्वादिनी षड्जे सायं पूर्व्या धनाश्रिका॥
(राग चन्द्रिका)

जिसमें निषाद, गान्धार और मध्यम यह स्वर तीव्र (शुद्ध) हैं। अर्थात्—मध्यम चढ़ी है। और ऋषभ, धैवत कोमल हैं। पंचम-अंश (वादी) है। षड्ज सम्वादी है, यह 'पूर्व्या धनाश्री' सन्ध्या समय गाई जाती है, जाति सम्पूर्ण-सम्पूर्ण है।

'पारिजात धनाश्री' का आरोहाऽवरोह तथा आलाप स्वरूप आधुनिक प्रचलित विहाग की भाँति है, यथा—

आरोही—स ग म प नि सं। अव०—सं नि ध प म ग रि स ॥

षड्ज और पंचम में सम्वाद होने से (चतुः श्रुतिक) स्वरित कफ प्रकृति है। अतः यह पित्तज रोगों पर लाभ कारक है। इसका गायन भी दिन के तीसरे प्रहर ही उचित है, क्योंकि उस समय पित्त बढ़ा करता है। यथा—

दूर्वाभेविभाविरहा सहालिखन्ती पटे पतिं रुदती ।
स्नपितकुचा चितगल्ला स्थिरधम्मिला धनाश्रीः स्यात॥

(राग विबोधः)

अर्थात्—दूर्वा-दूब (एक प्रकार की घास) की हरी आभा के समान जिसके शरीर की विभा (कान्ति) है। अपने प्राणेश्वर के चिर वियोग से जो असह्य-वेदना को प्राप्त होरही है। अतएव-वह किसी भांति अपने दुःखित और व्याकुल चित्त को शान्ति देने के हेतु—एक प्रकार विशेष के पट (चित्रपट) पर अनेक प्रकार के धातुराग रङ्गों के द्वारा पति देव के चित्र को तल्लीनता से बना रही है। और रोदन करने से अश्रु बिन्दुओं के द्वारा अपने कुचों को स्नान करा रही है, भाव यह है कि नितान्त-काल की वियोगाग्नि से जिसके उरोज तप्त होरहे हैं। उन्हें वह उन वारि-बिन्दुओं को छिड़क कर मानो-शीतल कर रही है। तथा विरह-वेदना की आग से जिसके कपोलस्थल पीले पड़ रहे हैं और वह 'स्थिर-धम्मिला' अति काल से जिसने अपने केश पाशको फिर खोल कर ही नहीं बाँधा है, वही पुराना बँधा हुआ है, समस्त-शरीर जिसका मलिन पड़ रहा है। वह 'श्री' राग की प्रियतमा—धन्या 'धनाश्री' रागिनी इस दशा में है।

गमपनिस, रिसनिधपम, गमपम गरिस, गमपनिपनि।
सरि सनिसनिधपम, गमपमपमा गमगरिस, गमगम पनि।
पनिसगसमा, पमपमगरिस, निधपम, गमपमपगरिसा ।
पनिसरि सनिसस ।

(इति सम्पूर्ण—धनाश्रीः। प्रातःकालीया)

अथ मेघो मल्लारोऽपि

षड्जादिमूर्च्छनोपेतः षड्जत्रयसमन्वितः ।
ग-नि-हीनोऽपि मल्लारो वर्षासु सुखदायकः ॥ ३६० ॥

अब 'मेघ-मल्लार' राग का लक्षण लिखते हैं। यह षड्ज आदि मूर्च्छना के उपेत या समेत है। अर्थात्—प्रथम बताए हुये 'आद्याद्यमूर्च्छनाभिश्च' इत्यादि नियम से 'षड्जादि मूर्च्छना' अर्थात्—'उत्तरा मन्द्रा' या शुद्ध मध्या—'स रि ग म प ध नि। नि ध प म ग रि स आरोहाऽवरोह जानना चाहिये। 'ग-नि-हीनोऽपि' इसमें गान्धार तथा निषाद हीन करने पर राग का आरोहावरोह स्वरूप बनता है। जैसे—स रि म प ध सं। अव-सं ध प म रि स। यह राग तीनों षड्जों के सहित है, अर्थात्—मन्द्र के षड्ज से लेकर तार के षड्ज तक पूरे दो सप्तकों में गाया बजाया जाता है। इसमें गान्धार व निषाद दोनों स्वर वर्जित हैं। अतः इसका 'औडुव-औडुव' वर्ग है। ऊपर बताया है—'अथ मेघो मल्लारोऽपि' यानी यही मेघ-राग है, और 'मल्लार' भी।

यह मल्लार राग वर्षा ऋतु में सुखदायक होता है या गाने पर सुहावना मालूम देता है। शेष स्वर शुद्ध आधुनिक-बेलावली मेल (कोई काफ़ी मेल) में मानते हैं। इसके न्यास, अंश, ग्रह षड्ज पर होते हैं।

पारिजात मतानुसार 'मेघ मल्लार' का आरोहाऽवरोह स्वरूपः—

आरोही—स रि म प ध सं। अव—सं ध प म रि स।

स्वर ग्रहणम्—स रि मम पप, मप, धसं धपम।

आरोही में रि, ध, स्वल्प प्रयुक्त होते हैं। स्वर प्रस्तारः—आलाप—

ससस सरिमधस सधपमरिस। ससस रिमरिमपधधसा सधपधरिस।
सासाध ससपधधममरि सा। सस रिम रिम पमरिस रिसरि धमसा।

सारि मरि, रिमप, मपध, मरि, ध, मरि, सरिमपध, मरि, रिमप, मरि, मरि, पम, ध, मप, रिम, पधमपध, सरिमरि, रि, धसां।

यह आलाप पारिजात का ही है और उसी के अनुसार एक छोटी-सी गति—

\+ ३ ० २

स्थायी (सम से)—सारेमापा, धासांधापा, मापाधापा, मारे मरि सा।

अन्तरा— रेमापाधा, मापामांसां, पाधासारें, मारें सांसां।
रेसाधापा, साधापामा, मापाधापा, मारे मरिसा।

तानें—सरिमरिमरिमप, रिमपध, मपधसं, संधमंध रिंसंधप मपधप पमरिस।
सरिमरिसऽसरि, मपमरिसाऽसरि, मपधपमरिसा, सरिमपधपधसं।
धपमरिसाऽ सरिमप धसं रिंसं धपमरिसाऽ सरिमप धसंरिंमंरिंसं धप।
मरिसाऽ सरिमप धसंरिंमं पंमंरिंसं धपमरिसा सरिमप धसंधप मरिसा

यतो वर्षासु गेयोऽयं मेघ इत्यपि कीर्त्तितः।
अकालरागगानेन जातदोषं हरत्ययम् ॥ ३६१ ॥

अर्थात्—क्योंकि यह वर्षा में गाया जाता या गाने योग्य है। अतः इसे 'मेघराग' भी कहते हैं।

असमय राग को गाने से जो दोष उत्पन्न होता है उस दोष को यह राग नाश करता है। अतः इसे वर्षा ऋतु में हर समय गा सकते हैं।

रागिनी 'मल्हारी' का ध्यान –

सु-गौरवर्णा मलिनांशुकान्विता वियोगिनी चम्पकमालभूषिता।
रहस्युपस्था रसिकप्रियाऽऽर्द्रिता मल्हारिका सा ऽश्रुदृगातिमन्दगा ॥

सुन्दर तथा गौर-वर्ण शरीर है, जिसपर मलिन वस्त्र पहिन रखे हैं। वह वियोगिनी है और चम्पा के फूलों की मालाओं से विभूषित है। एकान्त (अकेले) में बैठी हुई है, रसिक प्रिया जल से भीगी हुई है, आंखों में आँसू भरे हैं, बहुत धीमी चाल से चलने वाली वह मल्हारी रागिनी है।

अथवा—

स्मरातुरा क्षीणकलेवरा नता वनागमे प्राग्विरहेण तापिता।
निराश-गीता किल वल्लकीकरा मल्हारिका रोदनवत्स्वरा हि सा॥

जो कामातुर होरही है, शरीर (कमज़ोर) पड़ गया है, नीचे की ओर (पृथ्वी पर) झुक रही है, बरसात के प्रारम्भ से ही विरह द्वारा तपाई गई है। हाथ में वीणा लिए निराशा के गीत गा रही है तथा रोने जैसी आवाज़ गाने की होरही है अर्थात्—वह करुण-स्वर पूर्ण मल्हारी रागिनी है।

रागविबोध और 'पारिजात' दोनों ही के मत में 'मल्लार' और 'मल्लारी' अथवा 'नट मल्लारि' दो प्रकार के राग हैं, वैसे ही उनके प्रथक् २ स्वरूप देखें—

नीलो घनान्तरालोल्लसितः पीताम्बरो वरो वीरः।
मृदुहसितो ऽतिपिपासितचातकपोष्येषु मल्लारिः ॥

'मल्लारि' का स्वरूप (ध्यान) बताते हैं—नीलवर्ण उसके शरीर का है, तथा—घनान्तराल में यानी मेघाऽम्बर के मध्य में जो उठी हुई (उन्नत) आभा के द्वारा लसित (सुशोभित) होरहा है। अर्थात्—बादलों के बीच में उद्भासमान है। पीताम्बर पहिने हुए जो अति उत्तम है। वीर है, अथवा वीररस जिसे प्रिय है और मन्द मन्द (मधुर) मुसकान सहित है। तथा बहुत दिनों से प्यासे चातकों (पपीहों) के निमित्त जो जल पिला रहा है, वह उनका पोषक मल्लारि राग है। लोकोक्ति है कि "जब मेघजल बरसाता है तभी चातक की चोंच में जाता है" और वह भी स्वाति नक्षत्र में! शेष दिनों में वह प्यासा ही रहता है, और न पृथ्वी का जल पीता है! 'स्वाति-वारि' 'चातक-तृषा' के अतिरिक्त 'सीप में मोती' 'केले में कपूर'

'नाग फन में विष' इतने काम अतिरिक्त भी करता है। उपरोक्त श्लोक में वर्णित 'मल्लारि' राग का स्वरूप 'मेघ' के समान ही है।

नीलाम्बरी तु सम्पूर्णा षडजपूर्वकमूर्च्छना।
शुद्धमेलसमुद्भूता बहुकम्पमनोहरा ॥ ३६२ ॥
अंशन्यासौ प-मौ यत्र ग-री म-नी तथैव च।
षड्जान्त्यपञ्चम उद्गानं पञ्चमात् म-स्वरे पुनः ॥ ३६३ ॥

नीलाम्बरी नामक राग या रागिनी सम्पूर्ण जाति की है। अर्थात्—इसमें समस्त स्वरों का प्रयोग होता है। और षड्ज पूर्व में (पहिले) करने वाली -षड्जपूर्वक मूर्च्छना से उत्पन्न होती है। यथा—उत्तरामन्द्रा 'स रि ग म प ध नि। नि ध प म ग रि स। यह रागिनी शुद्ध मेल जिसे इस समय बेलावली मेल (थाट) कहते हैं, उससे उत्पन्न होती है। स रि ग म प ध नि स। सं नि ध प म ग रि स। यह आरोहाऽवरोह स्वरूप होता है। बहुत सी कम्पों के द्वारा (कम्प गमक) बाज़ के तार पर उङ्गली रखकर कंपाने से मनोहर मनमोहक (रक्ति युक्त) हो जाती है।

इसका अंश पञ्चम (वादी) तार षड्ज सम्वादी स्वर है तथा मध्यम स्वर पर न्यास (तोड़) है। उसी भाँति गान्धार और ऋषभ तथा षड्ज और निषाद को जानना चाहिये। मतभेद बताते हैं, यदि किसी मत में गान्धार अंश हो तो न्यास ऋषभ पर है। और यदि षड्ज अंश हो तो निषाद स्वर पर न्यास है। इसमें षड्ज स्वर से पञ्चम पर उद्गान (ऊपर-गान) यानी 'स-प' स से प पर मींड़ द्वारा पात होता है, तथा पञ्चम स्वर से फिर षड्ज स्वर पर उसी भाँति (प सं) पात होता है यह 'स-प' स्वर-संगति इसकी प्रधान रक्ति कारक है। 'नीलाम्बरी' अन्य किसी ग्रन्थ में (पारिजात के अतिरिक्त) नहीं पाई जाती। इसके स्वरों से सम्मिलित (सम स्वर) राग तो अनेकों होंगे, किन्तु नाम में समानता नहीं है। "सङ्गीत रत्नाकर" के 'नीलोत्पली' राग को तथा इसे कुछ गुणीजन एक मानते हैं, किन्तु इसके तथा उसके स्वर गमन में पर्य्याप्त अन्तर है। यथा—

धैवतांशग्रहा तार-षड्जन्यासा पमन्द्रजा।
समस्वरा हीननिगा, ज्ञेया नीलोत्पली बुधैः।

अर्थात्—'नीलोत्पली' में धैवत अंश (वादी) तथा ऋषभ सम्वादी स्वर हैं। मन्द्र सप्तक के पञ्चम से यह उत्पन्न या प्रारम्भ होती है। भाव यह है कि मन्द्र का पञ्चम तथा धैवत भी ग्रह माना जाता है। और यह 'समस्वरा' है। अर्थात्—सब स्वरों का सम-मात्रिक व्यवहार होता है। इसकी 'सम-स्वरा' शब्द की विशेष व्याख्या आगे 'मालवश्री' की टीका में देखें। इसमें गान्धार तथा निषाद दोनों स्वर वर्जित हैं। अतः इसकी 'औडुव-औडुव जाति होती है। सङ्गीतज्ञों को यह 'नीलोत्पली' रागिनी जाननी चाहिये। अब पाठक समझे होंगे कि 'नीलोत्पली' और 'नीलाम्बरी' एक नहीं हैं। अब इसका स्वर प्रस्तार दिखाते हैं।

सरिगमपधनिसा, सनिधपमपमा, सरिगमपमा, गरिगमपमरिगसस, सप्पप्पपम पपपप्पपम। पप्पमपप्पसनिधपम गरिगम पसासरिगम सपधनिधपमगरिगमपमगरिसगापगागरिगमा गागरिसरिसा सस्ससस्सनिसस्ससनिधनिसरिसनिसस्स।

॥ इति नीलाम्बरी सर्वदा ॥

यह 'नीलाम्बरी' हर समय गाई जाती है। ६॥

रि-हीना मालवश्रीः स्यात्शुद्धमेलम्वरोद्भवा।
मध्यमादिस्वरोद्ग्राहा धांशयुक्तान्त्यपा स्मृता ॥ ३६४ ॥

अब 'मालवश्री' रागिनी का लक्षण कह रहे हैं, जिसे 'मालश्रिरी भी कहते हैं। इसमें ऋषभ स्वर वर्जित है, अतः इसकी षाडव जाति है। यह शुद्ध-मेल स्वरों से उत्पन्न होती है, इसका उद्ग्राह, अर्थात्-स्वरग्रहण, मध्यम स्वर आदि में है जो 'सौवीरी' मूर्च्छना- म प ध नि सं रें गं। गं रें सं नि ध प म से उत्पन्न होती है। धैवत इसका अंश (वादी) तथा गान्धार सम्वादी स्वर हैं। पञ्चम पर न्यास है। यह 'मालवश्री' रागिनी बताई गई है।

भरत मत में 'मालवश्री' श्री-राग की रागिनी मानी गई है, किन्तु 'सङ्गीत-दामोदर' में इसे मालव राग की रागिनी बताया है। यथा—

धन्याश्रीः मालवश्रीश्च मालवस्य प्रिया इमाः।

और है भी ठीक कि-मालव देश या राग की श्री-शोभा। शिवमत में इसे श्री राग के मेल (थाट) में माना है। यथा—

श्रीरागमालवश्री धन्याश्यो भैरवी तथा धवला।
सैन्धव्याद्याश्चान्ये देशविशेषैर्विभिन्नाख्याः ॥

इनके मत में इसका स्वरूप निम्न प्रकार से दिया है—

सग्रहसांशन्यासा मालाश्री निग्रहांशा वा।
पूर्णा तथा रिधालपा गेयाऽहौ मंगलाय शाश्वतिकी ॥

इसके ग्रह, अंश, न्यास षड्ज पर हैं। सम्वादी पञ्चम, तथा निषाद भी ग्रह और अंश होता है, तो गान्धार सम्वादी है। सम्पूर्ण जाति है। ऋषभ धैवत दोनों स्वरों का प्रयोग कम होता है। मंगलादि कार्यों में गीतारम्भ में गाई जाती है। इसके गायन का समय शश्वत् (सदैव) है।

इसमें कोमल या शुद्ध कैसे स्वर प्रयुक्त होते हैं-तीव्र ऋषभ, साधारण धैवत तीव्र, कैशिकी १।४।२०।१३ (श्रुतियां) षड्ज, मध्यम, पञ्चम शुद्ध यही श्री राग मेल कहलाता है। (राग विबोध से)

'रत्नाकर' की मालव श्री—

मालवकैशिकरागोऽयं मालवश्रीस्तदुद्भवा।
समस्वरा तारमन्द्रषड्जांऽशन्यासषड्जभाक् ॥

अर्थात्—'मालव कैशिक' राग की भाषा (मेल) से मालव श्री रागिनी उत्पन्न होती है। कल्लिनाथ जी ने लिखा है—'अनुक्रमजन्यजनकान्मालव कैशिकाद्वा'

अर्थात्—मालव कैशिक के जन्य जनक अनुक्रम से। यहाँ जनक 'मालव कैशिक' राग है तथा उसकी जन्य 'मालव श्री'। भरत मत में 'मालव-कौशिक' मिश्रित राग माना जाता है। अस्तु—

यह तार सप्तक तथा मन्द्र सप्तक दोनों के षड्जों से युक्त होती है, इससे इसकी मन्द्र (निषाद) से तार षड्ज तक की अवधि प्रदर्शित की है। इसका अन्श (वादी) षड्ज ही है, और सम्वादी, पञ्चम तथा न्यास भी (तोड़) षड्ज पर ही है। यह रागिनी 'सम स्वरा' है, अर्थात्—सब स्वर सम (बराबर) ही प्रयुक्त होते हैं। प्रश्न उठता है कि-'सब स्वरों का समान प्रयोग होने पर वादी सम्वादी' कौन तथा कैसे माने जायेंगे? क्योंकि-सब से अधिक लगने वाला वादी (वही राग की रूह तथा अन्श भी होता है) एवं उससे कुछ कम या उतना ही दूसरा स्वर सम्वादी और उसके बाद के अनुवादी होते हैं। इस पर कल्लिनाथ जी का मत निम्न प्रकार है:—

"स्वराणां समत्वमत्राल्पत्वबहुत्वकृतवैषम्यरहितत्वं विवक्षितम्। तेनास्यां षड्जस्यांशत्वेपि तदितरेषामपि तत्समबलत्वेन प्रयोगे कृते रक्तिलाभ एव स्यान्न रक्तिहानिरित्यर्थः एवं सर्वत्र समस्वरता द्रष्टव्या।"

अर्थात्—स्वरों की समानता, यहाँ कमी-बेशी की विषमता की हीनता बताई है। यानी कोई भी स्वर न्यूनाधिक नहीं हैं, सब बराबर हैं। इससे इस मालव श्री में षड्ज स्वर अंश (वादी) होते हुये भी उसके (षड्ज के) अलावा स्वरों का समबलत्व है। अर्थात्—अन्य स्वर भी उतने ही गीत में प्रयुक्त होते हैं जितना कि षड्ज तथा उनके इस भांति प्रयोग होने से रक्ति-लाभ, यानी राग की सत्ता ही बनाती है, न कि रक्तिहानि? राग की शकल नहीं बिगड़ती।

'सङ्गीत रत्नाकर' से भी अति प्राचीन-ग्रन्थ 'शैव संगीत' स्वयं शिव-प्रणीत बताया जाता है। जो भी हो, कल्लिनाथ जी ने अनेक रागों के टिप्पण इसी से उद्धरण किये हैं। निशंक जी ने इसे स्वयं शिव लिखित माना है, राग विबोध के रचयिता श्री सोमनाथ जी ने भी 'यथोक्तमुमापतिना' कहकर पार्वती पति-शंकर प्रणीत बताया है। कलानिधि के लेखक ने "प्रसङ्गादौमापत्योक्तं रागाणां त्रैविध्यं प्रदर्श्यते" इत्यादि कहकर शुद्ध, छायालग, (सालङ्ग) संकीर्ण राग भेद बताया है। अस्तु! यदि अति पुरातन 'उमापति' नामक किसी भी सङ्गीतज्ञ लेखक का लिखा इसे मान भी लिया जाय, किन्तु इसके लेखक ने तो इसमें स्वयं अपने मुंह से कहा है—

'मयैव पञ्चभिर्वक्त्रैः सृष्टाः पूर्वं कुतूहलात्।'

अर्थात्—मयैव 'मया+एव,' यानी मैंने ही अपने पांच मुखों से पहिले पहल कुतूहल-आश्चर्य्य जिज्ञासात्मक खेल में यह पांच राग निकाले या बनाये थे।' यदि ऐसा ही है? जब तो आधुनिक सङ्गीतज्ञों का यह कहना अक्षरशः सत्य मालूम देता है कि—

'पार्वती मुखतें प्रकट 'कोशिक राग' अमोल। (भृगुनाथ) 'कौशिक' मालकोश या मालकंस, पार्वतीजी ने अपने मुंह से निकाला, तथा अन्य पाँच राग—भैरव,

हिन्दोल, मेघ, दीपक, श्री, शिवजी के पूर्व पश्चिमोत्तर दक्षिणादि चतुर्मुख से तथा आकाशोन्मुख से मेघ राग निकला कहा जाता है ? ठीक है ! क्योंकि शिवजी पञ्चानन (पञ्चमुखी) हैं ! अस्तु !

इस ग्रन्थ में 'मालव श्री' यह नाम तो नहीं है किन्तु इसकी जगह मालव वेसरी' नामक रागिनी अवश्य पाई जाती है। सम्भव है उस समय इसे इसी नाम से शिवजी ने बताया हो ? पीछे नामान्तर में परिणित होगई हो !

कितना पुराना इतिहास और कितना पुराना सङ्गीत और उसके ग्रन्थ ? भला 'रत्नाकर' की भांति हम इसके भी सन्-सम्वत् की जाँच पड़ताल करें तो किस आश्रय को लेकर की जाय ? अब आप देखें भारत में सबसे ऊंची 'एवरिष्ट' की चोटी पर बैठ कर लिखी गई संस्कृत कविता ! इसमें उपरोक्त रागिनी २ प्रकार से निर्णीत की गई है:—

गापन्यासा सग्रहान्ता मपयोर्गमकान्विता।
रिधत्यक्ता च हिन्दोल भाषा 'मालववेसरी'।

अर्थात्—'मालववेसरी' 'हिन्दोल' राग की भाषा या मेल (थाट) में है, जिसमें ऋषभ तथा धैवत उभयस्वर त्यक्त (वर्जित) हैं। (यह आधुनिक प्रचलित हिन्दोल से भिन्न रूप है, जिसका उदाहरण हिन्दोल राग-लक्षण में ही लिखूंगा) इसका औडुव वर्ग है। इसमें गान्धार अपन्यास है। (देखो—'स्वर-प्रकरण' में) षड्ज ग्रह, तथा न्यास भी है, एवं मध्यम और पञ्चम दोनों स्वरों पर गमकों का प्रयोग हुआ करता है। षड्ज वादी, पञ्चम सम्वादी, अब देखिये दूसरी—

धवर्जिता साद्यन्तांशा जाता मालवकैशिकात्।
रितारा मन्द्रपा कम्प्रमपा 'मालवेसरी' ॥

अर्थात्—'मालववेसरी' रागिनी 'मालवकैशिक' (मालकोश) भाषा (मेल) से उत्पन्न होती है। इसका धैवत वर्जित षाडव वर्ग है। षड्ज-ग्रह भी है और न्यास (तोड़) भी, तथा वही अंश (वादी, सम्वादी पञ्चम) तार सप्तक के ऋषभ पर्य्यन्त इसकी गति तथा मन्द्र सप्तक में पञ्चम तक जाती है। इसमें मध्यम तथा पञ्चम दोनों स्वरों पर पर्य्याप्त स्वर कम्पन होता है।

अस्तु ! जो भी हो ! इस समय तो 'मालवश्री' को 'मालसिरी' नाम से तथा ऋषभ धैवत वर्जित कर औडुव वर्ग में एवं मध्यम चढ़ी लगाकर गाते हैं।

मालवश्री पर अन्य मत-मतान्तर—

'राग कल्पद्रुमाङ्कर' में 'सुग्धरा छन्द' के द्वारा—

प्रख्याता मालवश्रीः सगमपनियुता धर्षभाभ्यां विहीना।
प्रारोहे चावरोहेऽप्यमृदुगमनिका भ्राजते सौडुवेव ॥
प्रोक्तोऽस्यां पञ्चमोऽन्शः प्रविलसति च संवादिरूपस्तु षड्जः।
सोद्ग्राहन्यासराजस्सुरुचिरमतिभिर्गीयते सायमेषा ॥

खूब किसी ने 'काव्य छन्द' के द्वारा सामयिक-मालवश्री का वर्णन किया है ! छन्द पढ़ते ही अनुभव होजाता है कि यह आधुनिक कविता है। लेखक ने मालव श्री

का सब कुछ लिखा किन्तु-मध्यम के सम्बन्ध में फिर भी लिखना भूल ही गया कि 'शुद्ध या चढ़ी ?' नहीं तो आधुनिक 'कल्याण थाट' ही लिख देता ? अस्तु ! छन्दार्थ इस प्रकार है:—

'मालवश्री' प्रसिद्ध रागिनी है। यह 'स ग म प नि' इन पाँच स्वरों के समेत है। धैवत, तथा ऋषभ इन दो स्वरों से विहीन (वर्जित) है। और यह-आरोह के पूर्व में तथा अवरोह में भी 'अमृदु' (जो कोमल नहीं हैं) ऐसे ग- म- नि- इन तीन स्वरों का प्रयोग करने वाली है। अर्थात्—इसमें गान्धार, मध्यम, तथा निषाद, यह तीनों तीव्र हैं! अतः वह (मालश्री) औडुव के समान सुशोभित होती है। इसमें पञ्चम स्वर अन्श (वादी) कहा गया है। और सम्वादी रूप से षड्ज सुशोभित होता है। षड्ज ही इसका-उद्ग्रार-गीतारम्भ या स्वर-ग्रह, तथा वही न्यास (तोड़) में भी रहता है। अच्छी, उत्तम या 'सुरुचिर' जिसकी बुद्धि है, ऐसे गायकों के द्वारा यह (मालव श्री) सायं-सन्ध्या समय, गाई जाती है। किन्तु-इसमें मध्यम के साथ गान्धार और निषाद भी तीव्र ही हैं, अतः यह प्रचलित मालवश्री नहीं हुई। और भी देखिये—

रागिनी मालवश्रीः सा मालवस्य प्रिया मता।
ऋमयोर्वर्ज्जिताऽप्युक्ता चोडवाधेन विकृता ॥
मध्याह्ने गीयते सा च धैवतांशा समग्रहा ॥ (सं० सो०)

अर्थात्—वह रागिनी मालवश्री मालव राग की भार्य्या मानी गई है जो ऋषभ, तथा मध्यम इन दोनों स्वरों से वर्ज्जित औडुव भी बताई गई है। और धैवत इसमें कोमल लगता है तथा धैवत ही इसका अन्श (वादी) स्वर है। धैवत का सम्वादी ऋषभ होता है, किन्तु वह वर्जित होने से गान्धार होगा। क्योंकि—

"श्रुतयोऽष्टौ द्वादश वा ययोरन्तरगोचराः।

यह 'समग्रहा' है। इसके चार अर्थ हैं, एक तो सम-बराबर ग्रह-स्वर ग्रहण है, अर्थात्—इसकी पकड़ में विषम वर्ण नहीं, सम हैं। दूसरा-जहां पर इसका सम-न्यास आता है उसी स्वर पर ग्रह-उद्ग्राह भी है। तीसरा षड्ज और मध्यम दोनों ही इसके ग्रह हैं। चौथा सम-वह (धैवत) ही इसका ग्रह है। और वह दोपहर में गाई जाती है।

सेयं षाडवसम्पूर्णा मालवश्रीः प्रकीर्त्तिता।
आरोहे ऋषभन्यस्तो सर्वशुद्धाऽवरोहणा ॥

अर्थात्—यह वह मालव श्री है जो 'षाडव सम्पूर्ण' कही जाती है, क्योंकि-आरोही में ऋषभ वर्जित है, तथा अवरोह सम्पूर्ण और सब स्वर शुद्ध (तीव्र) लगते हैं। (मध्यम भी शुद्ध है)

गान्धारोऽत्र प्रधानो स्यात्पन्यासा धनिस्वल्पिता।
मधुमाधविकायाश्च शङ्कराऽऽभरणा तथा ॥

इसका प्रधान-स्वर गान्धार है, पञ्चम पर न्यास है, धैवत तथा निषाद दोनों स्वर स्वल्प (कम) लगाये जाते हैं। मधुमाधवी (आधुनिक 'काफ़ी मेल' भरताऽनुसार भैरव की चौथी भार्य्या,) तथा शङ्कराभरण (आधुनिक 'विलावल थाट' भरतानुसार मेघ का तृतीय पुत्र राग) तथा केदारी या केदारा (आधुनिक 'कल्याणी मेल' भरतानुसार दीपक की चौथी भार्य्या) और सरस्वती या स्वराक्षरी (आधुनिक-काफ़ी भरत० हिन्डोल की तृतीय पतोहू (पुत्र भार्य्या) इन रागों से यह मालवश्री मिश्रित मालूम पड़ती है।

सम्वादिनी च षड्जेन पञ्चमेन च वादिनी।
शान्तिं दिशति सर्वत्र गानञ्चैव प्रसन्नताम्॥

इस मालवश्री का पञ्चम वादी एवं षड्ज सम्वादी स्वर हैं। इसके गायन द्वारा सर्वत्र शान्ति फैलती है, तथा प्रसन्नता देने का इसका गुण है।

केचिदेनांच गीतज्ञाः सगपैरेव गीयते।
कल्याणयाः मेलके केचिद्गीयते चतुःकृत्रिमे॥

कोई-२ सङ्गीतज्ञ इस (मालवश्री) को केवल षड्ज, गान्धार, तथा पंचम इन तीन ही स्वरों के द्वारा गाते हैं, अर्थात्—तीन ही स्वर लगाते हैं। जो 'सङ्गीत रत्नाकर' के मतानुसार 'सामिक' संज्ञावाली होती है यथा—

आर्चिको गाथिकश्चाथ सामिकोऽथ स्वरान्तरः।
एकस्वरादितानानां चतुर्णामभिधा इमाः॥

अर्थात्—'आर्चिक' १—स्वर लगने वाला प्रयोग, 'गाथिक' २—स्वर का, 'सामिक' ३—स्वरका, 'स्वरान्तर' ४—स्वर का समूह, यथा १-स,२-सरि, ३-सरिग और ४-सरिगम, यह एक स्वर से प्रारम्भ कर क्रमशः चार स्वरोंतक की तानों या या प्रयोगों की अभिभधा (संज्ञा) होती है।

किन्तु लौकिक सङ्गीत में यह नियम केवल तानों में ही नियमित होना है, नकि राग-रागिनियों की जातियों में, क्योंकि औडुव (पाँच स्वरों के समूह) से कम का गायन राग नहीं कहलाता, नारद मताऽनुसार उसमें रञ्जकता या रक्ति का अस्तित्व नहीं रहता। यथा—

औडुवादतिरिक्ताः ये स्वल्पा रक्त्या विवर्जिताः।
श्रोतॄणां चेतसाञ्चैवाऽरञ्जनाद्रागसंज्ञहा॥ (नारद संहिता)

अर्थात्—औडुव (पांच स्वर समूह) से अतिरिक्त स्वल्प (कम के) जो गायन होते हैं वे रक्ति (राग-सत्ता) रहित होते हैं। क्योंकि उनसे श्रोताओं के चित्तों का रञ्जन ठीक से नहीं होता। अरञ्जन होता है यानी रोचकता नहीं रहती, अतएव वे गायन 'राग संज्ञहा' होते हैं,यानी राग को संज्ञा या नाम को नष्ट करने वाले होते हैं। भावार्थ—यह कि उन्हें राग नहीं कहना चाहिये।

उदाहरण में—यू० पी० के कुछ ज़िलों में होली के अवसर पर होने वाली फाग (फाल्गुणी गीत) एवं पूर्वी ज़िलों की बरसाती, आल्हा, तथा बृज (मथुरा आदि)

का ढोला और सी० पी० (छत्तीसगढ़) का 'करमा' (एक त्यौहार का सामयिक-गीत) आदि हैं। अस्तु ! लौकिक सङ्गीत के अतिरिक्त वैदिक सङ्गीत में तो पाँच स्वरों से कम का प्रयोग अवश्य होता है और उसे 'साम-गान' कहते हैं।

सामवेद की ऋचाओं का गान एक प्रसिद्ध तथा प्राचीन वस्तु है और उसमें पाँच स्वरों से कम का प्रयोग होता है। यों तो उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित, वेद के इन तीन ही स्वरों से सङ्गीत के षड्जादि सात स्वरों का प्रादुर्भाव है। जिन शुद्ध स्वरों को कम करने से (श्रुतियां घटाने से) कोमलादि बना करते हैं किन्तु रत्नाकर के उपरोक्त श्लोक पर चतुर कल्लिनाथ जी की व्याख्या यही कहती है कि—'यज्ञप्रयोगेष्वृचामेकस्वराश्रयत्वात्तत्सम्बन्धादार्चिकः।' अर्थात्—आर्चिक इस सम्बन्ध से कहते हैं कि—यज्ञादि प्रयोगों में ऋचाओं का एक स्वर आश्रयत्व होता है यानी एक स्वर से बोली जाती हैं, वैसे ऋचाएँ प्रायः तीन या चार स्वरों पर भी पढ़ी जाती हैं। ऋचाओं का प्रयोग-आर्चिक जैसे ऋषियों का-आर्ष। आगे--'गाथासम्बन्धाद्गाथिको द्विस्वरः।' अर्थात्—गाथा-कथा आदि कहने में प्रायः दो स्वरों का ही प्रयोग होता है। अतः उसे 'गाथिक' कहते हैं और तीन स्वरों के प्रयोग को 'सामिक' इसलिए कहते हैं कि—'सामसम्बन्धात्त्रिस्वरस्तानः सामिकः' अर्थात्—साम (वेद) के सम्बन्ध से तीन स्वरों का प्रयोग 'सामिक' होता है। प्रायः साम ऋचायें तीन ही स्वरों में गाई जाती हैं। यथा—'साम्नां तुत्रिस्वरत्वं सप्त स्वरवत्त्वेऽपि मन्द्रादिस्थानत्रयविवक्षया' अर्थात्—साम-ऋचाओं का तीन स्वरों का प्रयोग सात स्वरों के समान ही मन्द्रादि स्थानत्रय (मन्द्रमध्य तार) तीनों सप्तकों की विवक्षा (कथनेच्छा) विशेष योजना द्वारा होता है स्वरों में प्रायः मध्यवर्त्तित्व अन्तर होने से चतुः स्वर प्रयोग को 'स्वरान्तर' नाम से घोषित करते हैं।

यह इतना उनके लिये लिखा है जो मालव श्री को केवल 'स ग प' लगाकर गाते हैं और कोई-कोई कल्याणी मेल (मध्यम चढ़ी में) ऋषभ कोमल करके गाते हैं। श्रीराग की पांचवीं भार्य्या (रागिनी) को हेमन्त ऋतु में अथवा दिन के उत्तर भाग अपराह्न काल (तीसरे प्रहर) में गाना चाहिये।

श्रियश्च मालवश्रीः स्याद्विचभ्यामुज्झितोदवा।
स्वयम्भूर्मध्यमः सोऽयं न तिष्ठेच्च विवादके॥

श्रीराग की रागिनी "मालव श्री" होती है जिसमें ऋषभ तथा धैवत दोनों स्वर वर्जित हैं। अतः यह औडुव-वर्ग राग है। इसमें स्वयम्भू या अपने आप होने वाला (प्राकृतिक) या तीव्र, मध्यम होता है। और वह भी (कड़ी मध्यम) इसका विवादी स्वर है। अतः उस पर ठहरना नहीं चाहिये केवल उसका कण-स्पर्श लेना चाहिये।

कृत्रिमर्षभं केचिच्च स्पर्शमात्रेण युज्यते।
तच्च षड्जश्रुतिर्ज्ञेया पसौ सम्वादवादकौ॥

कोई-कोई (गुणीजन) कृत्रिम-बनावटी (कोमल) ऋषभ को स्पर्श मात्र लगाते हैं, यानी-उपरोक्त तीव्र मध्यमवत् कोमल ऋषभ का कण देते हैं, सो षड्ज की श्रुति जाननी चाहिये। इसका वादी स्वर षड्ज तथा सम्वादी पञ्चम है। (सङ्गीत मञ्जर्याः)

कल्याणीमेलके मान्या मालवश्रीः रिधोज्झिता।
ओढ़वा च भवेद्द्वाभ्यां सः गपौ च मगौ पनी॥
संनिपाश्च मगौ चैव पगौ सः प्रथमे निशि।

मालवश्री रागिनी कल्याणी मेल (कल्याण थाट) में मानी गई है। इसमें दोनों तरफ़ से ऋषभ और धैवत स्वर वर्जित हैं। अतः इसका औडुव २ वर्ग है। अब स्वर ग्रहण (पकड़) बताते हैं। 'स गप, मग पनि संनिप, मग पग स' यह रात के प्रथम प्रहर में गाई जाती है। मध्यम चढ़ी, शेष स्वर शुद्ध हैं। आरोह—स ग म प नि सं। अवरोह—सं नि प म ग स। जब ऋषभ धैवत वर्जित ही हैं तो इसका पूर्वी थाट भी हो सकता है। पारिजात मतानुसार इसका षाडव आरोहाऽवरोहः—स ग म प ध नि सं। सं नि ध प म ग स।

स्वर प्रस्तारः—मप धनि सग सनि सनि धध पध धध पम पप मम गसा धध धप मम पापा।

निध निस मम गस गस निस निनिधप धधपम पापामा गसनि धनि सस्स।

इति मालव श्रीः प्रातःकालीया॥ ७॥

यह प्रातःकाल गाई जाने वाली मालव श्री हुई।

आधुनिक मालश्री का अंशादि स्वर (स-प) कफ प्रकृति के हैं, जो पित्त और वात विकार के प्रशमक हैं। तथा उपरोक्त मालवश्री की पित्त एवं वात प्रकृति है जो कफ विकार पर लाभदायक है, अतएव प्रातः गायन बताया है। क्योंकि प्रातः वसन्त ऋतु होती है और उस समय कफ का प्रकोप होता है। अब इसका ध्यान बताते हैं—

सरोजगात्राऽरुणवस्त्रभूषिता सुपीतवक्षोजपटा वियोगिनी।
अलंकृता चूततले मदेन सा करोति क्रीडामिह मालवश्रिका॥

अर्थात्—कमल के समान सुन्दर मुखवाली, लाल रङ्ग के कपड़े पहिने सजी हुई, सुन्दर-पीले रङ्ग की वक्षोज पट-कञ्चुकी (चोली) पहिने हुए हैं, वह वियोगिनी तरुणी अलङ्कारों (गहनों) से सुसज्जित आम के वृक्ष के नीचे मद में भरी हुई क्रीड़ा कर रही (खेल रही) है, वह मालव श्री रागिनी है।

(सङ्गीत सोपानात्)

'राग विबोध' के ध्यान में इसका आकार कुछ परिणित हो जाता है। यथा—(आर्य्याछन्द में)

तन्वी रसालतलगा कलगाना सस्मिता प्रतिस्वपतिम् ।
मृगदृक्करगतकमला [illegible] ॥

अर्थात्—वह मालाश्री (मालवश्री) दुर्बल है। रसाल (आम) वृक्ष के नीचे बैठी है, और मधुर स्वरों में गारही है। साथ ही अपने पति के प्रति देखकर मन्द मन्द मुस्करा रही है। हरिणी जैसी उसकी आँखें हैं, हाथ में कमल का फूल लिये हुए है, और वह मालाश्री, माला के द्वारा उल्लसित (सुशोभित) हो रही है। यानी माला पहिने है।

अब 'रक्तहंस' राग का लक्षण बताते हैं—

गहीनो रक्तहंस स्यादारोहे नि-स्वरोज्झितः ।
अवरोहे ध-वर्जः स्यात्षड्जपूर्वकमूर्च्छनः ॥ ३६५ ॥

रक्तहंस राग गान्धार-वर्जित षाडव वर्ग का होता है, और आरोही में निषाद स्वर से रहित होता है.अवरोह में भी धैवत वर्जित है.अतः आरोही स रि म प ध सं। अवरोही सं नि प म रि स। इसकी यह औडुव २ उपजाति है। यह षड्ज पूर्व में है, जिसके ऐसी पहिले बताई हुई उत्तरामन्द्रा मूर्च्छना से उत्पन्न होता है। स० प० सं० इसे अति प्राचीन 'शैव सङ्गीत' में यूं बताया है—

रक्तगान्धारिकाजातो रक्तहंसो नि-वर्जितः ।
धैवतांशग्रहन्यासस्तारगान्धारमेदुरः ॥

अर्थात्—'रक्त गांधारी' भाषा या मेल से 'रक्त हंस' राग उत्पन्न होता है। और ऋषभ स्वर इसमें वर्जित होने से षाडव वर्ग है। धैवत अंश (वादी स्वर तथा गान्धार सम्वादी) है। धैवत ही इसका ग्रह (उद्ग्राह) तथा न्यास (तोड़) भी वही है। और तार सप्तक का गान्धार इसमें मेदुर होता है। 'स्निग्धस्तु मेदुरः' (अमरकोष) अर्थात्—सचिक्कण, मुलायम (कोमल) रत्नाकरकार ने भी लिखा है।

कफज स्वाकुलः स्निग्धमधुरः सौकुमार्ययुक् ।
त्रिस्थानघनगम्भीरलीनः पित्तोद्भवो ध्वनिः ॥
तृतीय प्रकीर्णकाध्याये श्लो० ३६ ॥

रत्नाकर में 'रक्त गान्धारी' (भाषा) तो है,किन्तु यह राग केवल इन दोनों ग्रंथों के, अलावा नहीं पाया जाता, हंसध्वनि, हंस कङ्कणी, हंसमुख, आदि राग तो 'लक्ष्य सङ्गीत' राग चन्द्रिका, आदि ग्रन्थों में हैं किन्तु वे इससे नहीं मिलते, सब पृथक् हैं। भरतमतानुसार हंस, वरहंस, मालकोष के पुत्र राग हैं जिनके आकार प्रकार पृथक् हैं। मूल ग्रन्थ में इसका स्वर प्रस्तार निम्न दिया है।

सरि मपधस सनि पमरिस । सारिमपधसरिम पधपधा पपपमा रिमरिस धसस्सा ।

इति रक्तहंसः । प्रातःकालीयः ॥ ८ ॥

अब रागिनी 'गौरी' का लक्षण लिखते हैं ।

रि-स्वरादिस्वरारम्भा रि-कोमल-ध-कोमला ।
ग-तीव्रा सा नि-तीव्रा च गौरी न्यंशस्वरा मता ॥ ३६६ ॥

आरोहे ग-ध-हीना सा नि-कम्पन-मनोहरा ।
आरोहे यदि गान्धारो मध्यमावधिमूर्च्छना ॥ ३६७ ॥

अर्थात्—गौरी रागिनी ऋषभ स्वर आदि में है । जिसके उस ('कलोपनता') मूर्च्छना से उत्पन्न होती है । तथा ऋषभ ही इसका उद्ग्राह (ग्रह) भी है ।

आरोह—रे ग म प ध नि सं । अवरोह—सं नि ध प म ग रे ।

इसमें ऋषभ तथा धैवत दोनों ही स्वर कोमल लगते हैं । जो आधुनिक भैरव मेल (थाट) में है । किन्तु पारिजात का तो यह स्वयं 'गौरी मेल' है । गान्धार और निषाद दोनों ही इसमें तीव्र (शुद्ध) हैं । उस ज़माने का कुछ नियम ही ऐसा था । ग. नि. अवश्य बताये जायेंगे चाहे सर्व शुद्ध वेलावली (विलाबल) मेल भले ही हो ? कारण इधर गान्धार के बाद मध्यम में चार श्रुतियों का विशेष विवरण ? त्योंही उधर निषाद के बाद षड्ज में चार श्रुतियों (कैशिकी आदि संज्ञाओं) का पार्थक्य करण ? अतः दोनों के दोनों पूर्ववर्त्ती ग. नि. के शुद्धाशुद्ध रूप बताने की आवश्यकता है । वह गौरी निषाद अंश स्वर वाली मानी जाती है । अर्थात्—वादी निषाद, सम्वादी-गान्धार ।

आरोही में गान्धार और धैवत दोनों स्वर नहीं लगते । अतः इसकी औडव सम्पूर्ण जाति होती है । यथा—आरोही—स रि म प नि सं । अवरोही—सं नि ध प म ग रि स । इसके निषाद स्वर पर प्रायः स्वर कम्पन हुआ करता है, जिससे यह और मनोहारि हो जाती है । कुछ मत-भेद बताते हैं । आरोही में यदि गान्धार लगाया भी जाये (क्योंकि वह सम्वादी है) तो मध्यम स्वर अवधि (पर्य्यन्त) या तक की 'सौवीरी' मूर्च्छना होती है । यथा—

म प ध नि सं रिं गं । गं रिं सं नि ध प म । स्वरूपः—आरोही में-स रि ग म नि सं । अ० सं नि ध प म ग रि स । यह षाडव-सम्पूर्ण जाति हो जाती है । विशेष आकार आगे स्वर प्रस्तार से जानना चाहिये ।

इस समय दो प्रकार की गौरी प्रचलित है। १ तो—

मेले मालवगौडस्य गौरी शास्त्रेषु लक्षिता।
ऋषभांशग्रहा नित्यं सायं गेयैव सम्मता॥
आरोहणे धगोना स्यात्सम्पूर्णा च विलोमके।
मन्द्रमध्यैः स्वरैस्तस्याः गानंस्यादतिरक्तिदम्॥

अर्थात्—मालव या माया मालव गौड (दक्षिणीय) मेल में यानी भैरव (उत्तर भारतीय) मेल में से गौरी उत्पन्न होती है। शास्त्रों में इसका यही लक्षण पाया जाता है। इसका ऋषभ स्वर अन्श (वादी और सम्वादी स्वर धैवत) है। ग्रह (राग प्रारम्भिक स्वर) भी ऋषभ ही है। यह नित्यं (हमेशा) ही (प्रत्येक ऋतु) में सायं-सन्ध्या को (गोधूलि समय जब गायें चर के लौटती हैं) गाई जाने योग्य है या गाई जाती है। इसी भांति ठीक मानी गई है। ऐसे समय सूरदास जी की यह पदस्थ गौरी सायं वर्णनात्मक अनुपयोगी बैठती है:—

"बन सों आवत धेनु चराये।
अन्तरा—आगे २ सखा पाछे नन्द नँदन बन्शी मधुर बजाये॥ बनसों०॥

इत्यादि। 'माया मालव गौड़' अर्थात् भैरव मेल (थाट) में रि०ध० तो कोमल होते ही हैं, शेष स्वर शुद्ध। इस (गौरी) के आरोहण में धैवत तथा गान्धार वर्जित होते हैं, अतः इसकी आरोही 'धगोना' तथा अवरोहण सम्पूर्ण होने से औडुव-सम्पूर्ण उपजाति होती है। यानी आरोह में ५ तथा अवरोह में समस्त (सातों) स्वरों का प्रयोग होता। अब गति-विधि, या अवधि बताते हैं। इसका-मन्द्र तथा मध्य सप्तक के स्वरों के द्वारा या इन्हीं स्वरों में गान अतिरिक्त दायक-राग की महत्ती-सत्ता देने या प्रकट करने वाला होता है। तात्पर्य यह कि तार सप्तक में यह नहीं गाई जाती लक्ष्यसङ्गीते या भातखण्डे में—

इसकी स्वर ग्रहण या पकड़ इस प्रकार है:—

निसौ रिसौ च गरिसाः, मगौ रिसौ निसौ निधौ।

पौ निसौ रिमपाश्चैव धपौ च मगरे निसौ॥

गौरी सायन्तने गेया सम्पूर्णा च सुखप्रदा।

अर्थात्—निसरिस, गरिस, मगरिस, निस, निधप, पनिस, रेमप, धप, मगरे निस, यह गौरी सन्ध्या समय गानी चाहिये। और यह सम्पूर्ण (औडुव-सम्पूर्ण) सुखदायक होती है। वास्तव में इस में तार का कोई स्वर यहां तक कि 'सं' तक भी नहीं है। आरोहावरोह उपरोक्तानुसार ही है, यथा 'स रि म प नि सं। सं नि ध प म ग रि स। दूसरी गौरी इस समय पूर्वी मेल (थाट) में गाते हैं, यथा—

पूर्वीमेलसमादिष्टा द्वितीया गौरिका पुनः ।
आरोहे गधहीना स्यादवरोहे गवर्जिता ॥
ऋषभोऽत्र भवेद्वादी सहचारी तु पञ्चमः ।
गानमस्याः समीचीनं लोके सायं समीरितम् ॥

अर्थात्—दूसरी गौरी रागिनी पूर्वी मेल (थाट) में बताई गई है। जिसमें ऋषभ धैवत कोमल, मध्यम तीव्र (कड़ी) शेष स्वर शुद्ध हैं। गौरी की आरोही में गान्धार और धैवत दोनों स्वर वर्जित हैं। तथा अवरोही में केवल गान्धार वर्जित है। अतः जाति औडुव-षाडव होती है। इसका ऋषभ स्वर वादी तथा उसका सहचारी साथ चलने वाला (उतना ही प्रयुक्त) यानी सम्वादी, पञ्चम होता है। ऋषभ का सम्वादी धैवत है यथा—"त्रिस्त्रीपंमधैवतौ" समश्रुतिक, किन्तु वह धैवत आरोह में वर्जित है। अतः 'श्रुतयोऽष्टौ द्वादश वा ययोरन्तरगोचराः' (रत्नाकर) ऋषभ से लेकर पञ्चम तक १० श्रुति का अन्तर बैठता है, उपरोक्त नियम से वादी से सम्वादी में ८ या १२ श्रुतियों का फ़ासला होना चाहिये। अतः पञ्चम लिखा है। इसका गायन लोक (पब्लिक) में सायं सन्ध्या समय उचित कहा गया है। आरोहावरोह उपरोक्तानुसार यथा—

आरोही--स रि म प नि सं। अवरोही-सं नि ध प म रि स।

इसकी स्वर ग्रहण (पकड़) इस प्रकार बताई है:—

सः रिसौ च निरी चैव मरी च समरी पमौ।

रिसौ स्याद्गौरिका चेयं प्रदोषे गीयते जनैः॥

अर्थात्—स, रिस, निरिमरि, समरि, पमरि, स' यह गौरी रागिनी होती है, जो (गुणी) जनों के द्वारा सायंकाल को गाई जाती है।

अथवा— सनी धनी रिगौ चैव रिमौ गरी सरी निसौ।

गौरीयं पूर्विका मेले गोधूलौ गीयते हि सा॥

अर्थात्—सनि, धनि, रिग, रिमगरि, सरि, निस' यह गौरी है। जो पूर्वी के मेल में तथा गोधूलि समय गाई जाती है।

'रत्नाकर' और 'राग विबोध' में 'गौरी' नामक कोई राग या रागिनी नहीं हैं। 'गौड़ी' नामक रागिनी तो है, यह 'रत्नाकर' में दो प्रकार की तथा 'विबोध' में १ भांति की है और यह आधुनिक भैरव-मेल की 'गौरी' से मिलती है। यथा—

गौडयधगा सायाह्ने न्यंशा चैती च सान्तादिः ।

अर्थात्—जिसमें धैवत, गान्धार यह दोनों नहीं हैं। अतः औडुव वर्ग, निषाद अंश (वादी) गान्धार सम्वादी किन्तु वर्जित होने से मध्यम सम्वादी। यह सन्ध्या को गाई जाती है।

षड्ज स्वर इसका अन्त-न्यास (तोड़) भी है तथा वही आदि स्वर (ग्रहोद्ग्राह) भी है। 'चैती' रागिनीके भी यही स्वर हैं। जब तो इनके मतमें 'गौड़ी' और 'चैती' में कोई अन्तर ही नहीं रहा ? अस्तु ! अब देखना है इनका 'मालव गौड' मेल जिसमें कि यह है।

मालवगौडकमेले सरिमपधा एव पञ्च शुद्धाः स्युः ।
मृदुमध्यममृदुषड्जौ चास्माम्मेलाद्भवन्त मे ॥

अर्थात्—मालव गौड़ मेल (थाट) में 'स रि म प ध' यह पाँचों स्वर शुद्ध लगते हैं। तथा मध्यम और षड्ज यह दोनों मृदु (कोमल) भी होते हैं।

अब आप समझे होंगे उस दक्षिणी 'मालव गौड़' मेल से जिसे भैरव के नामान्तर से यहाँ घोषित करते हैं और जिसमें प्रथम प्रकार की गौरी रागिनी बताई गई है। यह 'राग विबोध' का मालव-गौड़ भिन्न भांति का है।

रत्नाकर की प्रथम प्रकार की गौड़ी (गौरी) निम्न है—

हिन्दोलभाषा गौडी स्यात्षड्जन्यासग्रहान्शिका ।
पञ्चमोत्पन्नगमकबहुला धरिवर्जिता ॥
षड्जमन्द्रा प्रयोक्तव्या प्रियसम्भाषणे बुधैः ।

अर्थात्—हिन्दोल की भाषा (थाट) में (जिसमें ऋषभ धैवत वर्जित है) गौड़ी होती है। इसका षड्ज न्यास, (तोड़) ग्रह, अंश (सम्वादी पञ्चम है) सब हैं। इसके पञ्चम पर बहुत गमकें उत्पन्न की जाती हैं तथा धैवत और ऋषभ दोनों स्वर वर्जित औडुव वर्ग की रागिनी होती है। मन्द्र सप्तक के षड्ज से इसका प्रयोग सङ्गीत-पण्डितों द्वारा प्रेमी के वार्त्तालाप विषय (शृङ्गार रस) में किया जाना चाहिये।

ग्रहान्शन्यासषड्जाऽन्या गौड़ी मालवकैशिके ।
मतङ्गोक्ता तारमन्द्रषड्जा भूरिनिषादभाक् ॥
प्रयोज्या रणरणके वीरे त्वन्यैः प्रयुज्यते ।

अर्थात्—अन्या गौड़ी (दूसरी गौरी) मालव कैशिक भाषा (थाट) से उत्पन्न होती है। इसका भी ग्रह, अंश, न्यास सब षड्ज स्वर पर ही है। मतङ्गजी (ऋषि) ने इसे यूँ बताया है—'तार के मन्द्र सप्तक के षड्ज तक इसकी गति होती है, तथा निषाद स्वर का प्रयोग इसमें अधिक होता है। यह रण-रणक (युद्ध-यौद्धिक) वर्णन में प्रयुक्त होनी चाहिये, दूसरे आचार्यों के द्वारा यह केवल वीर रस में प्रयुक्त होती है।

गौरी पर अन्य मत मतान्तर—

गौरी स्यात्पञ्चमी सेयं कौशिकीया च रागिनी।
रिधभ्यां कृत्रिमा मेले भैरवे षड्जवादिनी॥
सम्वादिनी मध्यमाच्च गोधूलौ गीतमीरितम्।

अर्थात्—'गौरी' यह कौशिकीया' मालकोष की पाँचवीं रागिनी होती है। ऋषभ, धैवत दोनों स्वर जिसमें कृत्रिम (कोमल) होते हैं, तथा प्रचलित-भैरव मेल में षड्जवादी, मध्यम सम्वादी, गोधूलि समय गाई जाती है।

गौरी च वक्रसम्पूर्णा यस्यां वादी च पञ्चमः।
सम्वादिनी च षड्जेन कृत्रिमर्षभधैवता॥
मध्यमाभ्याङ्किता तत्राऽप्यारोहे क्लिष्टमध्यमा।
शुद्धे स्यादुत्तरान्मे च यामे तुर्य्यगते दिने॥ (सं० मं०)

अर्थात् गौरी वक्र सम्पूर्ण जाति की रागिनी है, जिसमें पञ्चम वादी षड्ज सम्वादी, ऋषभ धैवत दोनो स्वर कोमल होते हैं। दोनों ही (शुद्ध तथा चढ़ी) मध्यम इसमें लगती हैं। आरोही में चढ़ी तथा अवरोही में शुद्ध मध्यम होती है। और दिन के चौथे प्रहर में इसे गाते हैं।

पूर्व्याः मेले तु गौरी स्यान्मक्लिष्टे चर्धकृत्रिमे।
मन्द्रे सनी धनी मध्ये ऋगौ चर्मगरन्विता॥
परी निपौ, दिनान्ते च गीयते गीतकोविदैः।
पार्वत्याः रागिनी चैषा तस्माद्गौरीत्युदीरिता॥

अर्थात्—'गौरी' तो पूर्वी के मेल (थाट) में होती है, इसमें मध्यम चढ़ा तथा ऋषभ धैवत दोनों कोमल होते हैं। यह मन्द्र और मध्य दो ही सप्तकों में गाई जाती है, यानी 'तार' में इसकी गति नहीं है। यथा-स्वर ग्रहण (पकड़) 'स नि, ध नि, रिग, रिम, गरि, सरि, निस,' यह दिनान्त (सायंकाल) को सङ्गीत-पण्डितों के द्वारा गाई जाती है। 'गौरी' (पार्वती जी) की यह रागिनी है, अतएव इसे 'गौरी' कहते हैं।

इसका ध्यान यूँ बताया है—

श्यामा मदोन्मत्तकलेवरा वरा विभाति तन्त्री करयोः सु-गायका।
नितान्तयत्तानविभूषितागतिर्गीतस्य गौरी रसिका दिनान्तरे॥

अर्थात्—श्यामवर्ण की आभा मद से उन्मत्त शरीर वाली, एक अच्छी सी वीणा जिसके दोनों हाथों में सु-शोभित हो रही है। जो अच्छी ही गायिका है। जिसके गीतों की गति अमित-तानों के द्वारा विभूषित है। वह रसिका-रस को जानने

वाली गौरी रागिनी संध्या समय दिखाई देती है। अथवा—

आरूढा या मृगेन्द्रोपरि सुजवगतिः भर्त्सयन्ती वनौकान्।
खड्गश्चोत्थापयन्ती तनुविमलविभा पूरयन्ती दशाशाः॥
कैलाशाग्रे व्रजन्ती गिरिवरमटवीमासमुद्भासयन्ती।
गौरी गौरी च गौरी हितमखिलमहो सैव सायं प्रयच्छेत्॥

अर्थात्—जो सिंह के ऊपर सवार होकर या चढ़ी हुई अच्छी और तेज चाल से जङ्गली जानवरों को डराती हुई, और तलवार को ऊपर उठाये हुये, अपने शरीर की स्वच्छ आभा के द्वारा दशों दिशाओं को पूरती हुई, हिमालय पहाड़ तथा उनके जङ्गल को हर ओर से पूरे प्रकार से प्रकाशित करती हुई, कैलाश के आगे या ओर संध्या समय जा रही है, या जाती हुई वह ही गौरी गोरे वर्ण वाली, तथा-गौरी (गिरि-पुत्री) पार्वती के समान ('गिरेरपत्यमितिगौरी 'तस्यापत्य' मित्यनेनाण) गौरी (रागिनी) सब का कल्याण करे।

राग विबोध के मत में—

क्षीरोदभासिवासाः सहजसुहासा प्रलम्बबाहुलता।
करधृतसाहिच्छत्रा गौडी गौरी सरोजाक्षी॥

अर्थात्—गौडी (गौरी) गोरे रङ्ग वाली, कमल सदृश आंखों वाली, दूध के समुद्र के समान सफेद वस्त्र पहिने हुये है, जिसकी स्वाभाविक सुन्दर हँसी है, और लम्बी २ भुजायें हैं, हाथ में सापों वाला छाता लिये हुये है।

एक और हिन्दी-'ध्यान माला' के अनुसार—

गौरी भोगे सांवरी, अम्ब बेर है कान।
तिरिया तन तप काम की, गावत मीठी तान॥

किसी ने इसे मालकोष की दूसरी रागिनी के रूप में-स्वीया, मध्या प्रौढ यौवना, आदि उपभेदों के साथ 'प्रोषित भर्तृका' नायिका बनाया है, जिसका लक्षण पहिले लिखा जा चुका है। गौरी का स्वर प्रस्तार—रिमपनी सानिधपसगरिगरिसा। निसरिमा गरिगरिसा निनिसनिस। निधपम पसधप मपमग रिगरिसा नीसानीसा। मपधप मगरिसनीसा। रिमपमगरिमगरिनीसा। रिसागरिगरिसानी सानिधपमगरिस नीसारिरिगा मगरिसामससमा।

इति गौरी। तृतीय प्रहरोत्तरम्। ६।

उपरोक्त गौरी दिनके तृतीय प्रहर के उत्तर में गाई जाती है। दिनके चौथे प्रहर (४ से ६ तक) में वर्षा ऋतु मानी गई है, जिसमें वात बढ़ा करती है। इसके वादी सम्वादी, रि, ध, कोमल, कफज स्वर हैं। अतः वे वात वेग पर लाभ दायक होते हैं। अब मल्लारी राग का लक्षण बताते हैं।

गौरीमेलसमुद्भूता मल्लारी नि-स्वरोज्झिता ।
आरोहणे ग-हीना स्यात्षड्जादिस्वरसम्भवा ॥ ३६८ ॥

'गौरी' (ऊपर बताए हुये) मेल (थाट) से 'मल्लारी' रागिनी उत्पन्न होती है। अतः इसमें भी (आधुनिक-भैरव मेल) ऋषभ, धैवत कोमल शेष स्वर शुद्ध हैं। निषाद स्वर इसमें वर्जित है, आरोही में गान्धार भी नहीं लगता, केवल अवरोह में लगता है, अतः इसकी 'औडव-षाडव' उपजाति होती है। आ० स रि म प ध सं। अ०—सं ध प म ग रि स। और यह षड्ज स्वर आदि में है जिसके उस 'उत्तरामन्द्रा' मूर्च्छना से उत्पन्न होती है। यथा—आ०-स रि ग म प ध नि। अ०-नि ध प म ग रि स। इसका षड्ज वादी एवं पञ्चम सम्वादी है। यह मल्लारी भरतमत की मेघ राग की रागिनी 'मल्लारी' या 'मल्हारि' से प्रथक् है, क्योंकि वह तो प्रायः गान्धार-निषाद कोमल (काफी-मेल) में है। यह आधुनिक 'मेघरंजनी' रागिनी से मिलती जुलती है, क्योंकि वह भी 'भैरव ठाट' में ही है। यथा—

भैरवस्यैव सम्मेलाद्रागिणी मेघरंजिनी ।
औडुवा पधहीनाऽसौ मध्यमेन सुभूषिता ॥

अर्थात्—भैरव के ही थाट से 'मेघरंजनी' उत्पन्नहोती है, जो कि पञ्चम-धैवत वर्जित ओडुव-औडुव वर्ग की है। और यह मध्यम स्वर के द्वारा सुअधिक भूषित (सजी हुई) होती है। यानी-मध्यम वादी, सम्वादी षड्ज है।

निरी गमौ गरी गमौ, निसौ रिसौ मगौ रिसौ ।
रंजनी मेघपूर्वा स्यान्मध्यमांशा पधोज्झिता ॥

(अभिनव रागमंजर्य्याम्)

अर्थात्—मेघ (शब्द) पूर्व (पहिले) वाली रंजनी, यानी मेघरंजनी रागिनी मध्यम अन्श (वादी सम्वादी षड्ज) पञ्चम, धैवत स्वर विहीन औडुव वर्ग की होती है। आ०—स रि ग म नि सं। अ०—सं नि म ग रि स। स्वर ग्रहण-निरिग मग, रिगम, नि, सं, रिसंम, गरिस, ॥ स्वर प्रस्तार सरिमप धसरि। सध सध पम पमा गरि सरिरिमसध सारिमपमगरि सरिमस धसस्सास्सा। रिम पध मप धध सस रिरि रिरमग रिसधधसधपमपा मगरिरि सधधध सस्स।

इति मल्लारी । सर्वदा ॥ १० ॥

यह मल्लारी रागिनी हुई जिसका गायन समय सदैव है ॥ १० ॥

पञ्चमो रि-प-हीनः स्यात्तीव्रगः सादिमः स्मृतः ।
मध्यमन्याससंयुक्तो मध्यमांशेन शोभितः ॥ ३६९ ॥

धरणी कोषकार ने लिखा है 'पंचमः स्वरभेदेऽपि रागभेदेऽपि पंचमः' अर्थात् "पंचम" स्वर का नाम है तथा एक प्रकार का राग भी है। इसे ही कोई २ भूकोश

भी बताते हैं। पंचम राग ऋषभ पंचम विहीन (वर्जित) औडुव २ जाति का होता है, किन्तु शब्दार्थ से तो जिसमें पंचम ही नहीं वह पंचम कैसा ? अस्तु ! इसमें गान्धार तीव्र, तथा षड्ज ग्रह (गीतारम्भ स्वर) होता है। भरत मत में तो 'पंचम' को भैरव का प्रथम पुत्र राग कहा है। जैसे—

पंचमः वक्रसम्पूर्णः प्रथमो भैरवाऽऽत्मजः।
धान्शो सम्वादिगोऽप्युक्तश्चर्षभः कोमलस्थितः॥
विवादी पञ्चमश्चात्राऽवरोह्यामेव युज्यते ।

अर्थात्—'पंचम राग' वक्र सम्पूर्ण (षाडव-सम्पूर्ण) होता है (वक्र-उल्टा सम्पूर्ण) औडुव-सम्पूर्ण, षाडव-सम्पूर्ण, सम्पूर्ण-षाडव, सम्पूर्ण-औडुव, इन चारों को ही वक्र सम्पूर्ण कहते हैं। यह भैरव का प्रथम पुत्र राग है। इसमें धैवत अन्श (वादी) है तथा गान्धार सम्वादी बताया है। नियम से धैवत का सम्वादी ऋषभ होना चाहिये, क्योंकि-दोनों ही 'सम-त्रि श्रुतिक' हैं। किन्तु यहाँ ऋषभ कोमल है, अतः न्यून श्रुतिक (२ श्रुति कम) होने से गान्धार कहा है। इसमें ऋषभ कोमल तथा पंचम विवादी या वर्जित है, जो केवल अवरोही में ही लगाया जाता है। आरोहावरोह स्वरूप—स रि॒ ग म ध नि सं। सं नि ध प म ग रि॒ स। वादी के सम्बन्ध में निर्णय करते हैं।

केचिद्धैवतगान्धारौ केचिन्मध्यमषाडवौ।
केचिन्पपंचमषड्जौ च वादसम्वादकौ मतौ॥
रागाकारात्परं जाने पुरा लक्ष्म यथार्थकम्।

अर्थात्—किसी ने तो इस (पंचम) में धैवत गान्धार वादी सम्वादी, एवं किसी ने मध्यम वादी, तार-षड्ज सम्वादी, तथा किसी ने पंचम वादी और षड्ज सम्वादी माने हैं। किन्तु राग का आकार-प्रकार (रूप) देखने से, पहिले वाले का ही कथन ठीक जान पड़ता है।

'राग विबोध' का पंचम भी ऊपर से ही मिलता है।

पंचम ऋषभविहीनःपांशन्यासग्रहो ह्युपसि॥

अर्थात्—पंचम राग ऋषभ स्वर विहीन षाडव वर्ग का होता है। पंचम स्वर ही इसका अन्श (वादी) तथा न्यास (तोड़) एवं ग्रह भी (उद्ग्राह) पंचम ही है। वस्तुतः यही सच्चा पंचम है ! जिसका सबकुछ पंचम है ! और षड्ज सम्वादी है, निश्चयार्थक यह प्रातःकाल गाया जाता है।

सङ्गीत रत्नाकर में तो 'शुद्ध पंचम' नाम का स्वयं 'ग्राम राग' है और उसकी भाषा (मेल) 'दाक्षिणात्या' तथा उसकी विभाषा (उपमेल) 'आन्धाली' है। यथा—

मध्यमापञ्चमीजातः काकल्यन्तरसंयुतः ।
पञ्चमान्शग्रहन्यासो मध्यसप्तकपञ्चमः ॥
हृष्यकामूर्च्छनोपेतो गेयः कामादिदेवतः ।
चारुसञ्चारिवर्णश्च ग्रीष्मेऽह्नः प्रहरेऽग्रिमे ।
शृङ्गारहास्ययोः संधावयमर्शे प्रयुज्यते ।

अर्थात्—(सप्त जाति गीतों में से) मध्यमा-पञ्चमी इन दोनों से शुद्ध पञ्चम राग उत्पन्न होता है । और यह 'काकलि' निषाद-षड्जोभय मध्यवर्त्तिनी श्रुति के अन्तर के समेत होता है । यानी 'नि—स' के बीच में एक लघु द्वि श्रुतिक ऋषभ का जो अन्तर होता है यह इसमें है । पञ्चम स्वर ही इसका अंश (वादी) सम्वादी षड्ज तथा पञ्चम-ग्रह और न्यास (पूरक) भी यही है । यह मध्य सप्तक का 'पञ्चम-राग' कहलाता है । अथवा मध्य सप्तक का पञ्चम इसका अंश, ग्रह तथा न्यास है । यह हृष्यका मूर्च्छना 'प ध नि स रि ग म । म ग रि स नि ध प ।' के समेत है, यानी इसका मध्यम आमिक यह आरोहावरोह स्वरूप है । इसी मूर्च्छना में यह गाना चाहिये । और इसका 'काम' आदि देवता है । सुन्दर सञ्चारी वर्ण (आरोही अवरोही मिश्रित) इसका अलङ्कार है । और यह ग्रीष्म ऋतु में दिन के पहिले प्रहर में (६ से ९ तक) गाया जाता है । इस राग का प्रयोग शृङ्गार-रस तथा हास्य-रस की सन्धि में होता है । यानी जिस वर्ण में शृङ्गार के साथ हास्य-रस भी मिला हुआ हो । 'अवमर्श' में इसका प्रयोग होता है । नाटक की ६ सन्धियां होती हैं—१—मुख, २—प्रति मुख, ३—गर्भ, ४—विमर्श, ५—अवमर्श, ६—निर्वहण । इनमें से पाँचवीं 'अवमर्श' संधि मे यह पञ्चम राग गाया जाता है, सब का लक्षण लिखने में स्थानाभाव तथा ग्रन्थ विस्तार का भय है । अतः यह सब भरताचार्य्य (मुनि) के 'नाट्य-शास्त्र' मे पढ़ें । 'शुद्ध-पञ्चम राग' इस शब्द से ही यह पूर्ण अनुभव होता है कि इसके अतिरिक्त कुछ पञ्चम सम्बन्धी और भी राग हो सकते हैं । क्योंकि 'शुद्ध-शब्द' 'सङ्कीर्ण, मिश्रित, छाया, लग, प्रक्षित, उपराग आदि अपने अन्य (इतर) वंचित रागों की सूचना देता है । ठीक है ! रत्नाकर में इसके अतिरिक्त 'पञ्चम-सम्बन्धी' यह राग मिलते हैं:—

१—पञ्चमी (जाति गीत), २—गान्धार पञ्चमी, ३—गौड पञ्चम, ४—मालव पञ्चम, ५—भम्माण पञ्चम (भाण पञ्चम), ६—भिन्न पञ्चम, ७—पञ्चम पाडव, ८—गान्धार पञ्चम, ९—शुद्ध पञ्चम, १०—आम्र पञ्चम । इस पञ्चम को 'भूकोश' इसीलिए कहते हैं कि—ऋषभ, पञ्चम दोनों इसमें भी वर्जित हैं (किन्तु 'पारिजात' तथा 'विबोध' और 'रत्नाकर' में नहीं) राग-विबोधमें केवल ऋषभ वर्जित पाडव तथा वही रि. प. आधुनिक मालकोष में भी वर्जित हैं । कोई-कोई मार्गी माल-कोष कहकर पाडव वर्ग मे ऋषभ-विवादी करके भी गाते हैं । मालकोष भैरवी (आधुनिक) थाट में और यह पञ्चम आधुनिक वेलावली मेल में है । आधुनिक हिन्दोलमें भी यही रि. प. वर्ज्य औडुव वर्ग है किन्तु वह आधुनिक-कल्याणी मेल में है

(कोई इसे आधुनिक-मालव मेल (मारवा-थाट) में भी मानते हैं) 'रागार्णव' ग्रन्थ के मत में तो 'पञ्चम-राग' प्रवर्त्तक-षट् रागों में यानी 'मुख्य छैः रागों' में माना गया है। यथा—

भैरवः पञ्चमो नट्टो मल्लारो गौडमालवः ।
देशाङ्कश्चेति षड्रागाः प्रोच्यन्ते लोकविश्रुताः ।

'सङ्गीत दामोदर' में पञ्चम राग की देशी रागिनी है तथा छैः उसके आश्रयी राग हैं। यथा—

पञ्चमाद्देशिकायान्तु (षट्) शुद्धाटी पहाड़िका ।
त्रोटकी मोटकी सिन्धुस्ततो मल्लारिकेति च ॥

'दर्पण' के अनुसार—

वसन्तो पञ्चमश्चैव रागो नारायणस्तथा ।
भैरवः श्रीश्च मेघश्च आदिरागाः प्रकीर्त्तिताः ॥

यह ६ 'आदि राग' माने गए हैं।

इन दोनों ही पञ्चमों में तथा उपरोक्त पञ्चमों में रूपान्तर है। 'सङ्गीत मञ्जरी' के मत में २६ प्रवर्त्तक रागों में से १ पञ्चम है। तथा 'नारद संहिता' अनुसार पञ्चम श्री का पुत्र राग है। अस्तु। पूरा आनन्द तथा अनुभव तो समस्त (अनेक) ग्रन्थों के अनुशीलन से ही प्राप्त होता है।

'शैव-सङ्गीत' में भी 'शुद्ध पञ्चम' भाषा (मेल) है। जिसमें 'गुर्जरी' आदि ८ राग हैं, उनका लक्षण निम्न है—

मांशाऽल्पऋषभा मान्ता सङ्कीर्णा मधसंगता ।
तानोद्भवा पञ्चमस्य भाषा प्रबलपञ्चमा ॥

अर्थात्—'शुद्ध पञ्चम' की भाषा (मेल) में मध्यम अंश (वादी सम्वादी षड्ज) होता है। ऋषभ इसमें बहुत कम लगता है। मध्यम स्वर पर ही इसका न्यास (तोड़) होता है। यह सङ्कीर्ण रागों में से एक है (फिर भी मेलों में एक है) इसमें मध्यम तथा धैवत की स्वर सङ्गति श्रुति माधुर्य्य का कारण बनती है। यथा—

'म - ध, तथा ध - म' (मध्यम से धैवत पर और धैवत से मध्यम पर का पात सु-चारु होता है) और इस पात का पूरा आनन्द तो तानों के द्वारा ही उत्पन्न होता है। इसमें पञ्चम स्वर का प्राबल्य होता है। किन्तु वह वादी नहीं होता। यहां भी 'समस्वरा' जैसा हिसाब है। पञ्चम के प्राचुर्य्य से ही इसे 'पञ्चम राग' कहते हैं।

दन्तिलाचार्य्य ने इसे ही 'तानोद्भवा' रागिनी के नाम से बताया है और 'पञ्चम-भाषा' (मेल) रत्नाकर के ढङ्ग पर ही लिखा है। इसमें भी इस 'शुद्ध पञ्चम'

के अतिरिक्त निम्न 'पञ्चम' हैं। यथा—१-पञ्चमी, २-भिन्न पञ्चमी, ३-पञ्चम लक्षिता, ४-गान्धार पंचमी, ५-शुद्ध पंचम, ६-भिन्न पंचम विभाषा (उपमेल) ७-गान्धार पंचम, (भाषा) ८-मालव पंचम (भाषा) ९-पंचम षाडव, १०-कोकिला पञ्चम, ११-भावना पंचम, १२-राग पंचम, इनमें से इनका 'पंचम राग' पाठकों के लाभार्थ देदिया जाता है।

रागपंचमरागोऽयमार्षभीधैवतीभवः ।
ऋषभान्शग्रहस्यत्कगान्धारो धैवतान्तिमः ॥

अर्थात्—यह 'पंचम राग' नामक राग है, जो आर्षभी (ऋषभ की) तथा धैवती दोनों जाति-गीतियों से उत्पन्न होता है। इसका ऋषभ स्वर अन्श (वादी सम्वादी धैवत) तथा ग्रह-उद्ग्राह भी ऋषभ पर ही है। और गान्धार इसमें वर्जित है, अतः षाडव २ वर्ग है, तथा धैवत पर न्यास है।

पहीनो पञ्चमो रागः भवेन्मालवमेलके।
मधौ संनी धमौ धमौ गमौ गरिस एव च॥
गमौ मध मनौ निधौ निमधःधोपनिनीयते॥

यह दो प्रकार के पञ्चम राग सम्प्रति-प्रसिद्ध हैं, पहिला पञ्चम राग प हीन ९ पञ्चम स्वर वर्जित षाडव वर्ग में मालव (आधुनिक 'मारवा' ऋषभ कोमल मध्यम चढ़ी (तीव्र) शेष स्वर शुद्ध) मेल (थाठ) में होता है। जिसका-'स्वर ग्रहण' निम्न है—'मध सं निध मध मग मग रिस सम ग मध निध निमध' इसका वादी कड़ी मध्यम तथा सम्वादी ऋषभ कोमल है। और यह प्रातःकाल ३ से ६ बजे प्रातःतक गाया जाता है।

गः रिसौ निरिगाश्चैव मपौ मध मगाः मगौ।
रिसौ स्यान्मध्यमाभ्यान्तत्सम्पूर्णो स्यंशकोप्रगे॥

(सङ्गीतः मंजर्य्याम्)

अर्थात्—'ग रिस निरिग म प मध मग मग रिस' यह द्वितीय पंचम राग की स्वर ग्रहण (पकड़) है जो पूर्वोक्त (मालव) मेल में ही होता है। किन्तु इसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग है। एवं-यह सम्पूर्ण वर्ग का राग है। इसमें ऋषभ अन्श (वादी सम्वादी धैवत स्वर) है। अतएव इसे प्रातःकाल में गाते हैं। क्योंकि-प्रातः ३ से ६ तक शिशिर ऋतु (माघ फाल्गुण) मानी गई है, जिसमें आयुर्वेदाऽनुसार कफ बात बढ़ा करता है। इस समय पित्त को उत्तेजना देने की आवश्यकता होती है,

ताकि इनके साम्य से स्वास्थ्य ठीक रहे। अतएव इसका बाहुल्य प्रयुक्त ऋषभ-स्वर अन्श (वादी) पित्त प्रकृति का है। तथा उसका (सप्त श्रुतिक) सम्वादी धैवत भी पित्त प्रकृति का ही है।

पंचम का ध्यान— (भरतमतानुसार)

कण्ठे कदम्बकुटजाऽब्जसुमालजालो ।
भाले विभर्त्ति मलयं वलयातभृपः ॥
सुपः प्रयाति कलगायति गानदक्षः ।
स्वच्छो हि कोपि स्वरपंचमसंश्रितोऽसौ ॥

अर्थात्—कोई (अपरिचित-व्यक्ति) गले में कदम्ब और कुटज तथा कमल के फूलों की सुन्दर मालाओं के जाल से सुसज्जित, मस्तक पर चन्दन लगाये हाथों में कङ्कण (कँगना) पहिने, अपने सङ्गीत में पंचम स्वर को वादी बनाता और सु-मधुर गाता हुआ, गायन—कला में निपुण स्वच्छ वस्त्र वाला, सु—समय (प्रभातःकाल) जागरहा है।

अब 'पारिजात' के अनुरूप ही इनका 'प्रस्तार' दिया जाता है—

सगमधनिस सनिधप गमगस मगमा। धनिसगसगम सनिधनिसनिधनिस सनिसनिधमगस गमगम गस। निधनिसगमसा गसनिधनि सासा। इति पञ्चमः। सर्वदा ॥ ११ ॥ यह 'पञ्चम' सर्दव गाया जाता है।

अब 'वसन्त' राग का लक्षण बताते हैं—

षड्जादिमूर्च्छने मान्ते ग-नी तीव्रौ वसन्तके ॥ ३७० ॥

अर्थात्—वसन्त राग में पूर्वोक्त षड्ज स्वर आदि वाली 'उत्तरामन्द्रा' मूर्च्छना होती है। यानी वसन्त इससे उत्पन्न होता है। मध्यम स्वर पर इसका अन्त (न्यास) है। तथा-गान्धार, निषाद दोनों तीव्र (शुद्ध) हैं।

इनका 'वसन्त' तो आधुनिक—वेलावली मेल में है। अब देखें दूसरे ग्रन्थों में 'राग विबोध' में इस शब्द पर ३ राग है १-शुद्ध वसन्त, २-वसन्त वराली, ३-वसन्त भैरवी।

राग विबोध में 'वसन्त' एक मेल (थाट) माना गया है। जिसमें हिन्दोल आदि १०।१२ राग हैं। जिसका विवरण निम्न दिया है।

शुद्धा वसन्तमेले सरिमपधा अन्तरश्च काकलिका।

अर्थात्—इस वसन्त मेल में स, रि, म, प, ध, यह स्वर शुद्ध लगते हैं। अन्तर (स्वर भेद) कहते हैं 'षड्ज की दूसरी श्रुति' पर निषाद स्थित बोलता है। काकली-५।१४ श्रुतियां इसमें प्रयुक्त होती हैं। वाद्यादि स्वर तथा जाति बताते हैं—

सांशन्यासग्रहको वसन्त उपसि विलम्बितपूर्णः।

अर्थात्—वसन्त राग में षड्ज अंश (वादी, पञ्चम सम्वादी) तथा स्वर ग्रह

(गीतारम्भ) एवं न्यास (तोड़) यह दोनों भी षड्ज पर ही हैं। सम्पूर्ण जाति है। प्रातःकाल गान में ललित होता है। यही शुद्ध वसन्त है।

दूसरा 'वसन्त वराली'—

गांशग्रहा किल वसन्तवराली सर्वदाऽरिपा सान्ता।

अर्थात्—वसन्त वराल में गान्धार अंश (वादी सम्वादी निषाद) तथा ग्रह भी गान्धार और न्यास षड्ज पर है। इसमें ऋषभ, पञ्चम दोनों स्वर वर्जित हैं। अतः औडुव जाति है। यह किल (प्रसिद्ध) राग हमेशा गाया जाता है, और 'साम-वराडी' मेल में है। वसन्त के बाद कहीं 'वराली' कहीं 'वराडी' कहीं 'वराटी' शुद्ध शब्द 'वैराटी' रागिनी का मिश्रण मानते हैं, जो भरत-मत में भैरव की तीसरी रागिनी समझी जाती है।

तीसरा राग 'वसन्त भैरवी' भी इनका एक 'थाट-राग' है जिसका विवरण 'वसन्त-भैरव' राग श्लोक नं० ३७९ की टीका में देखें।

वसन्त पर अन्य मतमतान्तर—

श्रीरागसम्भवः सोऽयं वसन्तः समुदीरितः।
मन्यन्ते रागिनीं केचिद्वासन्तीञ्च श्रियम्बिकां॥
स्यात्तत्र कृत्रिमत्वं वै ऋषभे मध्यमद्वयोः।
पञ्चमेन विहीना सा युक्ता स्याद्वक्रपाडवा॥
आरोहे ऋषभन्यस्ता वादी स्यान्मध्यमस्तथा।
सम्वादी षड्ज एवाऽत्राऽऽरोहणे क्लिष्टमध्यमा॥
स्यातां द्वाववरोहे च दिवसे प्रथमे दले। (सं० स० सारे)

अर्थात्—'वसन्त' श्रीराग का 'पुत्रराग' कहा जाता है। कोई २ 'वासन्ती' श्रीराग की तीसरी रागिनी होती है' ऐसा मानते हैं। (भरत मत भी इसी प्रकारहै) उसमें ऋषभ कोमल लगता है। और मध्यम दोनों। पञ्चम उसमें वर्जित है। अतः वह 'वक्रपाडव' कहलाती है। आरोह में ऋषभ वर्जित है। (और पञ्चम) अवरोह में केवल पञ्चम, अतः 'औडुव-पाडव' उपजाति होती है (अतः वक्र पाडव बताया है) इसका मध्यम स्वर वादी एवं तार-षड्ज सम्वादी है। आरोह में चढ़ी मध्यम तथा अवरोह में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है दिनके पहिले प्रहर में (६ से ९ बजे तक) इसे गाते हैं। आ०—स ग म̄ ध नि सं।

अव०—सं नि ध म̄ म ग रि स।

पूर्व्याः मेले तु वासन्ती सम्पूर्णा रिधकोमला ।
मध्यमे चापि क्लिष्टत्वं गान्धारेण च वादिनी ॥
सम्वादिनी मध्यमेन विवादी पञ्चमः स्वरः ।
चतुर्थे प्रहरे रात्रौ गीयते गीतकोविदैः ॥

अर्थात् वासन्ती 'पूर्वी' के मेल (थाट) में होती है। जिसकी सम्पूर्ण जाति ऋषभ-धैवत कोमल, तथा मध्यम चढ़ी लगती है वादी-गान्धार, मध्यम सम्वादी (नियम से निषाद होना चाहिये) पञ्चम विवादी (या वर्जित) संगीत प्रवीणों के द्वारा राग के चौथे प्रहर में गाई जाती है। (३ से ६ बजे भोर तक)

सगौ मधौ रिसौ रिश्च निधौ पश्च मगौ मगौ ।
निमगाश्च मगौ चैव वासन्ती स्याद्रिसावपि ॥

पूर्व्याः सम्मेलके रात्रौ चतुर्थे पावसे प्रगे ।

अर्थात्—'पूर्वी' के मेल (थाट) में वासन्ती रागिनी होती है। जिसमें ऋषभ, धैवत कोमल तथा मध्यम चढ़ी लगती है। रात के चौथे प्रहर में (३ से ६ बजे तक) या वर्षाऋतुमें प्रातःकाल गाई जाती है। स्वरग्रहण—'सग मध रिं सं रिं निध प मग नि मग मग रिस'।

मृदुरिरितरे तीव्राः, पवर्ज्यश्च द्विमध्यमः ।
षड्जवादी मसम्वादी वसन्तर्त्तौ वसन्तकः ॥

(रागचन्द्रिका)

अर्थात्—वसन्तक (वसन्त राग) में ऋषभ (केवल) मृदु (कोमल) होता है। तथा इतर (शेष) स्वर तीव्र (शुद्ध) होते हैं। मध्यम भी तीव्र ही, किंतु दोनों ही (चढ़ी, उतरी) लगते हैं। अतः यह मालव मेल (जिसे मारवा 'गमनश्रम' या 'यादव' आदि नामों से ग्रन्थों में बनाया है) में होता है। इसमें पञ्चम स्वर वर्जित है। अतः षाडव वर्ग है। इसका तार षड्ज वादी तथा मध्यम सम्वादी है, यह वसन्त ऋतु में गाया जाता है।

सरी सनी धमौ मगो रिसौ वसन्तनामकः ।
रिकोमलो मध्यमाभ्यां क्षपायां प्रहरेऽन्तिमे ॥
उत्तराङ्गप्रधानोऽयं सतारान्दोलितागतिः ।

अर्थात्—'सं रिं सं नि, ध म म, ग रि स, यह वसन्त नामक राग है। जिसमें ऋषभ कोमल तथा मध्यम दोनों लगती हैं। तथा पञ्चम वर्जित 'षाडव' है। यह

रात्रि के अन्तिम प्रहर में गाया जाता है। इसका उत्तराङ्ग प्रधान होता है। अतः इसकी 'गति' तार के षड्ज पर आन्दोलन युक्त होती है। अतएव इसके 'सं' पर अधिक ज़ोर देना चाहिये। इसका आरोहावरोहस्वरूप—नि, स रि ग म म̀ ध नि सं। 'सं रिं सं नि ध म̀ म ग रि स।

वसन्त का ध्यान बड़ा भावुक है। यथा--

मयूरपक्षोच्चकिरीटभूषितः समावृतश्चालिकुलैः समन्ततः।
करे धृतं येन रसालमञ्जरीं सुपीतवासो रसिको वसन्तकः॥

अर्थात्—मोरों के पंखों से बनाया हुआ ऊंचा किरीट (मुकुट) जिसने अपने मस्तक पर धारण कर रखा है। और उससे सुशोभित होरहा है। चारों ओर से जो भ्रमरों के द्वारा घिरा हुआ है। जिसने आम की मंजरी (बौर) या नव-कोंपल अपने हाथ में ले रखी है। सुन्दर-पीले रङ्ग के वस्त्र पहिने हुये वह रसिक वसन्त राग है।

शिखण्डिबर्होच्चयबद्धचूडः, पुष्णन्पिकं चूतलतांकुरेण।
भ्रमन्मुदावासमनङ्गमूर्त्तिर्मत्तो मतङ्गस्थवसन्तरागः॥

अर्थात्—मोरों की पूँछों के अन्तिम-भाग (चन्द्रिका) से जिसने अपना ऊँचा चूड़ा (जूड़ा) बाँध रखा है। आम की लता या डालियों के अङ्कुरों (बौरों) के द्वारा कोकिला को पुष्ण करता हुआ, प्रसन्नता से उपवनों में घूमता हुआ, कामदेव के समान सुन्दर स्वरूप वाला, अथवा बिना शरीर के होते हुए भी मूर्त्तिवान्, भाव यह है कि राग (गीत-रञ्जन) का कोई आकार या मूर्त्ति नहीं होती, गायन का रस है जो नेत्रों से परे किन्तु श्राव्य वस्तु (कानों का रस) है। तथापि गायन समय गायक के हृदय में जब कि वह किसी भी ऋतु-अनुकूल गीत (राग) को उसी ऋतु के उपादेय पदार्थों के वर्णन में प्रारम्भ करता है और स्वयं रस-विभोर हो जाता है। तो स्वाभाविक ही उसके अन्तर्पट पर रस-वर्णन में नियत स्वरों का एक चित्र अङ्कित हो उठता है गायक तथा श्रोतागण जब उस सङ्गीत (ऋतु-राग) के रस का नेत्र बन्द करके ध्यान करने लगते हैं, ठीक वही राग का 'ध्यान' कहलाता है। अतएव यहाँ राग के हेतु 'अनङ्ग-मूर्त्ति' का अर्थ सङ्गत बैठता है। वह मत्त (मस्त), हाथी पर सवार 'बसन्त' राग है।

'राग-विबोध' में वसन्त का ध्यान निम्न प्रकार से दिया है—

केशरकिंशुक एष प्रवेशिताम्रांकुरः पिकस्य मुखे ।
अरुणवसनो वसन्तो गौरसुवेषो रसालगतः ॥

अर्थात्—लाल (या पीले) कपड़े पहिने हुए, गोरे शरीर तथा सुन्दर वेश (सजावट) वाला, किंशुक (पलाश) के फूलों को बालों में गूँथे हुए, आम के वृक्ष पर बैठा हुआ है। और कोयल की चोंच में आम का अभिनव अङ्कुर-मञ्जरी (या बौर) दे रहा है। यही 'वसन्त' राग है।

मोरपङ्ख शिर पर धरे चहुँ दिशि भ्रमर भ्रमन्त।
कर्ण-फूल सुरसाल के बस्तर पीत बसन्त ॥

अथ स्वर प्रस्तारः—

'पारिजात' मतानुसार स्वर प्रस्तारः—

सरिगमपधनिस सनिधपमपमगमा । गमपधनिधपध मपममागसा ।
सरिगमपध सरिगमपमगरिस सनिधपधपमपममगमगमपमधधपग
रिसनि धनिसस्सा ।

इति वसन्तः । प्रातःकालीयः ॥ १२ ॥

(ध्यान रहे 'पारिजात' का वसन्त सम्पूर्ण स्वर तथा शुद्ध मेल का है)

यह वसन्त राग हुआ। जो प्रातःकाल गाया जाता है ॥ १२ ॥

इति वसन्त लक्षणम्

अब राग देश का लक्षण बताते हैं—

रि-तीव्रतरसंयुक्तो ग तीव्रेणापि संयुतः ।
ध-ग-वर्ज्योऽवरोहे स्यादगान्धारस्वरमूर्च्छनः ।
तीव्रो यत्र निषादः स्याद्देशाख्यः स विराजते ॥ ३७१ ॥

तीव्रतर ऋषभ (चतुः श्रुतिक) के साथ और तीव्र गान्धार के साथ तथा अवरोही में गान्धार-धैवत वर्जित होने पर, एवं आरोह सम्पूर्ण तो सम्पूर्ण औडुव-वर्ग में, निषाद तीव्र होते हुए, गान्धार की मूर्च्छनायुक्त अर्थात्—हरिणाश्वा नामक मूर्च्छना—'ग म प ध नि सं रें । रें सां नी ध प म ग ।'

देश नामक राग इसमें तथा आधुनिक देश में इतना अन्तर है, इसमें निषाद 'तीव्रोयत्र निषादः स्यात्', केवल शुद्ध ही है, किन्तु अब दोनों ही लगाए जाते हैं। 'हरिणाश्वा' से इसका ग्रह गान्धार है, किन्तु इस समय अधिकतया ऋषभ से ही प्रारम्भ करते हैं। कोई २ गुणिजन 'नि स रि म प नि स। सं नि ध प म ग रि ग स', इस भांति मन्द्र के निषाद से बांधते हैं। तथा—अवरोह में गान्धार 'वक्र पुनरुक्त' करते हैं, किन्तु इसके अवरोह में गान्धार धैवत दोनों वर्जित ही हैं, किन्तु अब इन दोनों को अवरोह में वर्जित न करके आरोह में वर्जित करते हैं। और उसके बदले अवरोह में गान्धार को 'द्विरुक्त' कर लेते हैं। इससे यह प्राचीन देश तो 'सम्पूर्ण-औडुव' और आजकल का 'औडुव-सम्पूर्ण' हो जाता है। दोनों बातें एक दूसरे से उल्टी हैं, ठीक कौनसा है ? यह तो आगे मालूम होगा ! इस समय प्रायः ऋषभ वादी, और निषाद सम्वादी करते हैं। नियमानुसार ऋषभ का त्रिसमश्रुतिक धैवत सम्वादी होना चाहिये। किन्तु धैवत आरोह में वर्जित होने से ऋषभ-सम-प्रयुक्त नहीं हो पाता, अतएव उसके उत्तर-स्वर (निषाद) को स्थानापन्न या उत्तराधिकारी-मंत्रिपद पर नियुक्त किया है। विष्णुदिगम्बर के शिष्य प्रायः पञ्चम को वादी तथा ऋषभ को सम्वादी बनाते हैं, नियम से पञ्चम का सम्वादी षड्ज ही होता है दूसरा नियम-श्रुतयोऽष्टौ द्वादश वा ययोरन्तर गोचराः से 'प से ध, ३, नि० २, स० ४, कुल ९ श्रुति के फासले पर ऋषभ पड़ता है ८ या १२ के अन्तर में नहीं ! यदि ऋषभ को भी जोड़ें तो १२ श्रुतियाँ होती हैं, किन्तु 'ऋषि आज्ञा' में तो 'ययोरन्तर गोचरैः के अनुसार उन दोनों के बीच में ८। १२ का अन्तर होना चाहिये ! उपरोक्त शिष्यों में भी मतभेद है। एक दूसरे वादी ऋषभ और सम्वादी पञ्चम, यानी उपरोक्त (पहिले) से ठीक विपरीत (उल्टा) मानते हैं ? अस्तु ! पञ्चसंख्यक दशवीं तथा पहिली संख्या को बराबर ही समझता है ! किन्तु चौथे या छटवें स्थान वाला ऐसा नहीं कह सकता। इस समय आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल निषाद लगाया जाता है।

जैसा कि—विहाग, तैलङ्गी, शंकरा प्रभृति अनेक रागों में होता है। इस में पारिजातः वादी षड्ज तथा सम्वादी पञ्चम माना है।

देशाख्य राग को रत्नाकर में 'देशाख्या' रागिनी माना है। यथा—

तज्ज्ञा स्फुरितगान्धारा देशाख्या वर्जितर्षभा।
ग्रहांशन्यासगान्धारो निमन्द्रा च समस्वरा॥

इति देशाख्या। अर्थात्—उस (प्रथम वर्णित 'गान्धार पञ्चम' भाषा मेल) से देशाख्या (रागिनी) उत्पन्न होती है। पारिजात के अनुकूल 'गान्धारादिक मूर्च्छना' इन्होंने भी इसकी भाषा में वही बताई है। यथा—

'गान्धारांशग्रहन्यासो हरिणाश्वाख्यमूर्च्छनः।

इसमें गान्धार स्फुरित रहता है, अर्थात्—स्वर ग्रह पर अंगुली की स्फूर्ति, बाज़ के तार पर मिज़राब द्वारा 'स्फुरण' नामक गमक कहलाती है। अथवा १५ प्रकार की गमकों में एक यह—

वेगे द्रुततृतीयांशसम्मिते स्फुरितो मतः। (रत्नाकरे)

अर्थात्—द्रुत (लय) के तृतीयांश (तीसरे हिस्से) में नियत किये हुए वेग में 'स्फुरित' गमक कहलाती है। अथवा—

स्फुरितो गमको ज्ञेयो हन्याऽत्यन्तं स्वरद्वयम्।

अर्थात्—अत्यन्त (अधिक) वेग से (मिज़राब द्वारा) दो सारों (पर्दों) पर हन्ति (आघात) करने से 'स्फुरित' समझनी चाहिये।

देश पर अन्य मतान्तर—

वादे हि चर्षभं कैश्चिच्छम्वादे निश्च मन्यते।
निषादे कृत्रिमत्वं चेदस्यस्यादवरोहणे॥
गान्धारस्तत्र वक्रत्वे मध्ये चर्षभषड्जयोः।
क्षपात्रिप्रहरे गानं सौराष्ट्रस्यापि तज्ज्ञगुः॥
आरोहणे गधौ त्यक्तौ युज्यौ स्वल्पौ यदा कदा।
नृपाऽमात्यौ परौ स्यातां धमौ च गरिगाः निसौ॥

मतभेद पर कहते हैं—कोई २ वादी ऋषभ, तथा सम्वादी निषाद मानते हैं। और इसकी अवरोही में निषाद कोमल तथा आरोही मे शुद्ध लगाते हैं।

वहां (अवरोही में) गान्धार वक्र होकर ऋषभ और षड्ज के मध्य में प्रयुक्त होता है। रात्रि के दूसरे प्रहर में इसका गान होता है। तथा यही समय सोरट के भी गाने का बताया जाता है। आरोही में गान्धार और धैवत दोनों स्वर वर्जित हैं। किन्तु किसी-किसी मत में कभी-कभी थोड़े-थोड़े लगा भी लिए जाते हैं। इसका राजा या प्रधान (वादी) स्वर पञ्चम, तथा सम्वादी ऋषभ भी माना जाता है। अब पकड़ बताते हैं 'धम, गरिग, निसं' यह होती है।

निधौ पमौ गरी गश्च सरी रिमौ पनी निसौ।
विकृतन्यादिको देशो स्यंशो रात्रौ प्रगीयते॥

अर्थात्—निध पम गरिग, सरि रिम पनी, नीसां। यह जिसमें पहिला निषाद विकृत (कोमल) है, ऋषभ-अंश वाला देश राग रात्रि में गाया जाता है।

शैव सङ्गीत में 'देश' का एक दूसरा नाम 'अम्बाहेरी' भी मिलता है—

गधाधिका मग्रहान्शा सान्ता वीरे समस्वरा।
अम्बाहेरी टक्कभाषा देशाख्या पञ्चमाङ्किता॥

अर्थात्—टक्क (टंक) की भाषा (मेल या थाट) में अम्बाहेरी (रागिनी) उत्पन्न होती है। इसका दूसरा नाम देश है। इसमें गान्धार अधिक लगता है, (किन्तु वह वादी नहीं है) मध्यम स्वर इसका ग्रह (गीतारम्भ) है। तथा अंश मध्यम ही (वादी, सम्वादी-तार षड्ज) षड्ज पर इसका अन्त (तोड़ या न्यास) है। तथा वीर रस में यह गाई जाती है। (ठीक है! क्योंकि देश का ध्यान भी तो 'मल्ल स्वरूपी' वीर रस का ही है) इसमें सब स्वर समान रूपेण (एकवत्) वर्त्ते जाते हैं। (देखो पीछे पञ्चम की टीका में)।

इसका कुछ अङ्क (चिन्ह) पञ्चमराग जैसा मिलता है।

इन्होंने शुद्ध 'देशाख्य' राग में अपना मत निम्न दिया है—

धैवतीमध्यमाजात्योर्जातो धांशग्रहान्तिमः।
देशाख्यः स्वल्पगान्धारो ममन्द्रो हीनपञ्चमः॥

अर्थात्—धैवती, मध्यमा इन दोनों जाति गीतियों से 'देशाख्य' राग उत्पन्न होता है। इसका धैवत अंश (वादी है और सम्वादी ऋषभ है) एवं ग्रह और न्यास भी धैवत पर ही हैं। इसमें गान्धार बहुत कम लगता है। तथा मन्द्र सप्तक के मध्यम तक इसकी गति है। और पञ्चम स्वर इसमें वर्जित है। अतः षाडव २ जाति होती है।

पाठक 'देश' पर अब अनुमान करलें! क्योंकि सर्व प्राचीन शिवलिखित सङ्गीत का शास्त्र यही है। उस समय यह 'देश' राग गाया जाता था।

देशाक्षी मेले शुचि समपास्तीव्रतमरिस्तथा मृदुमः।
तीव्रतरधमृदुसावत एपान्ये चापि रागाः स्युः॥

अर्थात्—देशाक्षी यह एक मेल (थाट) है। इसमें षड्ज, मध्यम, तथा पञ्चम तीनों स्वर शुद्ध रहते हैं। और ऋषभ-तीव्रतम लगता है। तथा मध्यम कोमल, तीव्रतर धैवत, और षड्ज दोनों कोमल होते हैं। यानी-३।१।१।१।४ श्रुतियाँ वर्त्ती जाती हैं। इस मेल से अन्य अनेक राग उत्पन्न होते हैं।

गांशन्यासग्रहकाऽऽरोहे तु गतमनिरुपसि देशाक्षी।

अर्थात्—देशाक्षी में गान्धार अंश (वादी, सम्वादी निषाद) न्यास, ग्रह दोनों गान्धार पर ही हैं। आरोही में मध्यम, निषाद वर्जित हैं। अतः औडुव सम्पूर्ण' जाति होती है। प्रातःकाल गाई जाती है।

मेलाच्च सम्भवो धीरशङ्कराभरणाच्च वै।
देशाक्षीराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे मनिषर्जं चावरोहे रिवर्जितम्।

स रि ग प ध सं। सं नि ध प म ग स। (इति रागलक्षणे)

अर्थात्—निश्चय ही धीरशंकराभरण या विलावल (बेलावली) मेल से देशाक्षी राग उत्पन्न होता है। इसका अंश षड्ज स्वर है (वादी, सम्वादी पञ्चम) तथा षड्ज पर ही न्यास है, और ग्रह भी षड्ज पर। आरोही में मध्यम और निषाद वर्जित हैं। और अवरोही में ऋषभ वर्जित है। इस प्रकार-'औडुव-षाडव' जाति होती है।

देशाक्षी रागः सम्पूर्णः स्वमेलोत्थश्च सग्रहः।
सन्यासः प्रातःकाले तु गेयः सङ्गीतकोविदैः॥

अर्थात्—देशाक्षी सम्पूर्ण वर्ग का राग है। अपने ही मेल (थाट) से उत्थित होता, उठता या निकलता है। यानी इस ग्रन्थ के मत में देशाक्षी एक स्वयं मेल राग है। षड्ज स्वर पर ग्रह और न्यास भी है। प्रातःकाल सङ्गीत के पण्डितों के द्वारा गायन योग्य है।

(सङ्गीत सारामृतोद्धारे)

सन्यासः सग्रहः पूर्णो देशाक्षीराग उच्यते।
आरोहे मनिषर्जोऽसौ पूर्वयामे च गीयते॥

अर्थात्—देशाक्षी राग सम्पूर्ण, तथा षड्ज-ग्रह, षड्ज-न्यास, युक्त कहा जाता है। आरोही में मध्यम निषाद वर्जित, तथा अवरोह में सप्त स्वर प्रयुक्त होने से 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति होती है। दिन के पहिले-प्रहर में गाया जाता है।

भरत के मत में 'देशाख्या' आजकल 'देशाख' हिन्दोल की स्त्री के रूप में है।

कान्तोरुशीर्षाशयिताऽभिलाषिनी मदोन्मदा सीत्कृतमुद्गिरन्मुहुः।
कठोरवक्षोजवती कृशाङ्गना देशाख्यिका सा मदघूर्णितेक्षणा॥

अर्थात्—कान्त (पति) की जाँघ पर शिर धरकर लेटी हुई है। किसी बात की अभिलाषा उसके मन में है। वह मद (मस्ती) के द्वारा उन्माद (पागल) हो रही है। अतः सीत्कारी भर रही है तथा मैथुन की इच्छा वाली है। अथवा—ऐसे संगम की इच्छुक है कि जिसमें सीत्कृत होता है।

जो कठोर (कड़े) वक्षोज-(कुचों) वाली है तथा-कमज़ोर (दुबली पतली) और आरता (दुखी) सी है। जो उन्माद के कारण घूरती हुई देख रही है। वह 'देशाख्या' रागिनी है।

उपरोक्त रागिनी के ध्यान में 'स्वाधीन पतिका' नायिका ही होती है।

यथा— यस्याः रतिगुणाकृष्टः पतिः पार्श्वं न मुञ्चति ।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका ॥

(साहित्यसरोजे)

किसी २ ने देशाख्या के ध्यान में 'कन्या अभिसारिका' भी लिखी है ।

प्रीतम के कर शिर धरे व्यापि रह्यो तनु काम ।
उतावली देशाख्य है कृश व्याकुल छवि धाम ॥

(हि० रा० र०)

स्वर स्वर प्रस्तार-गपधसमसनिपममरिसगगपपगपधसमम पसममरिसरिस सनिपगपधसस्सा । रिनीपा मममरिसमनिपगपधसस्सा ।

इति देशाख्यः । प्रातःकालीयः । १३ । यह देशाख्य प्रातःकाल गाई जाती है ।

देशकार्य्यां गनी तीव्रौ धांशो धादिकमूर्च्छना ॥ ३७२ ॥

देशकारी में गान्धार, निषाद दोनों तीव्र, धैवत स्वर अंश (वादी सम्वादी ऋषभ) है । तथा धैवत आदि स्वर 'उत्तरायता' अथवा 'पौरवी' मूर्च्छना से उत्पन्न होती है । यथा—ध नि स रि ग म प । प म ग रि स नि ध ।

"राग विबोध में देशकारी एक स्वयं मेल (थाट) है, और इसे ही शुद्ध रामकीः (रामकली) मेल कहते हैं । तथा इसमें 'मृदुमकतीव्रतम ममृदुसाः सरिमपधाः शुद्धाः' ६ । ८ । १५ श्रुतयश्च' इयंशुचिरामकीः देशीकारश्च' लिखा है । यह 'मेललक्षण' देकर राग लक्षण निम्न दिया है—

सांशाद्यन्तोऽह्नोन्तः कम्प्रमनिर्देशकृत्पूर्णः ।

अर्थात्—देशकृत् या देशकारी में षड्ज अंश (वादी, सम्वादी पञ्चम) तथा आदि, अन्त (ग्रह, न्यास) भी षडज पर ही है । सम्पूर्ण जाति है । और अन्हः (दिन के, अन्तःम-ध्य में) यानी मध्याह्नकाल में गाते हैं । तथा मध्यम निषाद दोनों पर स्वर कम्पन होता है । यही संस्कृत टीका में लिखा है ।

रत्नाकर में यह राग नहीं मिलता है । कुछ ग्रन्थों में 'देशीकार' लिखा है । यथा 'रागचन्द्रिका'—

देशीकारे मनी वर्ज्यौ वादिसम्वादिनौ धगौ ।
तीव्रास्तु रिगधा प्रोक्ता गीयते प्रातरेवहि ॥

अर्थात्—देशीकार में मध्यम-निषाद दोनो वर्जित हैं । अतः औडुव २ जाति होती है । वादी स्वर धैवत, तथा-सम्वादी गान्धार है । इसमें-ऋषभ, धैवत और गान्धार तीनों ही तीव्र (शुद्ध) हैं । अतः विलावल मेल होता है । प्रातःकाल ही यह गाया जाता है । भूपाली में भी मध्यम, निषाद वर्जित हैं । शेष स्वर शुद्ध, इसी के समान है । आ० स रि ग प ध सं । अ० सं ध प ग रि स ।

वेलावल्याः मेलकेन देशिकारः प्रजायते ।
सधौ पगौ पधौ संधौ पगौ पधपगाः रिसौ ॥

अर्थात्— विलावल मेल से देशीकार उत्पन्न होता है । स्वर ग्रहण—स ध प गप धसं धप गपधप ग रिस' होता है ।

मेघस्य चान्तिमा भार्य्यां तामाहुर्देशकारिणीम् ।
सम्पूर्णा सा च मार्गी स्याद्देशी स्याच्छा हि पाडवा ॥
वादी स्याद्धैवतस्त्वत्र सम्वादी ऋषभस्तथा ।
वदन्ति पञ्चमं वादी केचित्तत्तु प्रगल्भितम् ॥
कस्मिन्श्चिन्न मते ग्रन्थे गीयते च न गायकैः ।
पूर्व्याः मेले मक्लिष्टे सा कृत्रिमर्षभधैवता ॥
तुर्य्यरात्राविदं गीतं गीयते गीतकोविदैः ।

अर्थात्—मेघ राग की अन्तिम (पाँचवीं) भार्य्या (रागिनी) को देश कारिणी कहते हैं । वह सम्पूर्ण वर्ग की मार्गी होती है । तथा वही पाडव वर्ग में देशी होती है । इसमें धैवत वादी तथा ऋषभ सम्वादी स्वर होते हैं । कोई २ पञ्चम को वादी बनाते हैं । किन्तु वह प्रगल्भ (अप्रमाणिक रूप) से कहते हैं । क्यों कि न तो किसी मत या ग्रन्थ में यह मिलता है, और न गायकों के द्वारा ही गाया जाता है । पूर्वी के मेल (थाट) में मध्यम क्लिष्ट (चढ़ी) तथा ऋषभ-धैवत दोनों कोमल लगाकर रात्रि के तुर्य्य (चौथे) प्रहर में इसके गीत सङ्गीत पण्डितों के द्वारा गाये जाते हैं ।

न्युब्भिता पाडवा ज्ञेया चेतः मन्युपवञ्चिता ।
निन्यस्ता च ततो पौ द्वौ मार्गी चौडवपाडवा ॥
भूपाल्यारोहणं देश्यां कृत्रिमर्धाऽवरोहणम् ।
पगौ तत्र पुनश्चोक्तो द्वावेतौ चौडवौडवा ॥ (सं० वि०)

अर्थात्—देशकारी निषाद वर्जित पाडव वर्ग की जाननी चाहिये । और इधर से (आरोही में) मध्यम, निषाद वर्जित, तथा उधर से (अवरोही में) केवल निषाद वर्जित, और पञ्चम द्वन्द एवं मध्यम प्रयुक्त 'औडुव पाडव' वर्ग की मार्गी होती है । देशी-देशकारी में भूपाली का (मध्यम, निषाद हीनु) आरोहण होता है । तथा अवरोहण में ऋषभ धैवत दोनों कोमल कर दिए जाते हैं । और 'पग' की पुनरुक्ति होती है, यह दोनों ओर से 'औडुव औडुव' ही रहती है ।

देशिकारि समाख्याता वेलावल्याश्च मेलके ।
सधपाश्च गपौ चैव धसौ चैव धपौ तथा ॥
गपधपाः स्युर्गः रिसौ काले द्विप्रहरे दिने ।

अर्थात्—विलावल मेल में देशीकारि बताई गई है, जिसका स्वरूप सधप गप, धसं, धप, गपधप, ग, रिस, होता है। और दिन के दूसरे प्रहर में गाई जाती है।

निहीना देशकारी स्यान्मतीव्रा च रिकोमला।
पाडवा सा समुद्दिष्टा गीयते परयामके॥

अर्थात्—देशकारी में निषाद वर्जित स्वर है, तथा-मध्यम तीव्र लगती है और ऋषभ कोमल, शेष स्वर शुद्ध। अतः वह पाडव बताई गई है। दिन के उत्तरार्ध में गाई जाती है।

वेलामारी रूपके स्याद्देशकारी च पाडवा।
मध्यमेन परित्यक्ता यथावत्त्वादितस्ततः॥

अर्थात्—देशकारी वेलामारी (विलावल) के रूप मेल में है। यह मध्यम स्वर से त्यक्त पाडव वर्ग की है। इधर उधर से (आरोहाऽवरोह में) शेष स्वर नियमानुसार (और शुद्ध) लगते हैं।

इसका ध्यान निम्न प्रकार से दिया है—

विभाति चामीकरवेषभूषिता प्रियेण या क्रीडति मञ्जुभाषिणी।
मनोज्ञवेगेन विशङ्कमानसा सुदेशकारी प्रमदोन्नतस्तनी॥

अर्थात्—वह सोने जैसे सुन्दर वेष से सजी हुई सुशोभित हो रही है। जो मधुर बोलने या गाने वाली अपने प्रियतम के साथ क्रीड़ा कर रही (खेल रही) है। कामदेव के उन्माद से जिसके हृदय में किसी की शंका (या डर) नहीं रहा है। वह सुन्दरी देशकारी रागिनी प्रमदा (नवोढा) है। और उसके कुच ऊंचे उठ रहे हैं।

देशकारि कंचन वरन खेलत पीतम संग।
नागरि चाव अनङ्ग को जोवन जगी उमङ्ग॥ (हि० रा० र०)

अथ स्वर प्रस्तारः—धनिसरिगमपधनिधनी धपमप मागरीसनीधधनिसस्स। गमपधनिधधपमपमगरीसनी धधनिसस्सा।

इति देशकारी प्रातः कालीया। १४। यह देशकारी प्रातः गाई जाती है।

अब 'मुखारी' का विवरण बताते हैं।

ऋषभः कोमलो यत्र गान्धारः पूर्वसंज्ञकः।
मुखार्य्यां धैवतोद्ग्राहो निधौ पूर्वस्य कोमलौ॥
आरोहे ग-निहीनायां न्यासांशौ षड्जपञ्चमौ॥ ३७३॥

ऋषभ स्वर जिसमें कोमल लगाया जाता है। तथा गान्धार 'पूर्व' संज्ञा वाला यानी 'पूर्व गान्धार' होता है। पहिले स्वर प्रकरण में बता आये हैं कि 'ऋषभः शुद्ध एवासौ पूर्वगान्धार इष्यते' अर्थात्—शुद्ध ऋषभ ही 'पूर्व गान्धार' कहलाता है। तो अभिप्रायः यह हुआ कि शुद्ध तथा कोमल दोनों ही ऋषभ इसमें लगते हैं। और इस 'मुखारी' रागिनी में धैवत उद्ग्राह (ग्रह या गीतारम्भ) स्वर होता है। 'गीतमुद्ग्राह्यते येन स उद्ग्राहः प्रकीर्त्तितः' इति। इसमें निषाद तथा धैवत दोनों 'पूर्व' नामक कोमल होते हैं। यथा—'धैवतः शुद्ध एवासौ निषादः पूर्वसंज्ञकः'। अर्थात्—शुद्ध-धैवत को ही 'पूर्व निषाद' कहते हैं। उसी भांति शुद्ध निषाद को पूर्व धैवत जानिए अथवा—'निषादः शुद्ध एवासौ धस्तीव्रतर इष्यते।' अर्थात्—शुद्ध निषाद तीव्रतर धैवत कहलाता है। भाव यह हुआ कि—'पूर्वाख्य-कोमलौ' यानी इसमें निषाद तथा धैवत दोनों कोमल भी लगते हैं एवं पर्व-वाचक (शुद्ध-धैवत, पूर्व निषाद तथा शुद्ध निषाद-तीव्रतर धैवत) अर्थात्—धैवत तीनों ही, शुद्ध (तीव्र) तीव्रतर और कोमल भी। आरोही में गान्धार तथा निषाद दोनों वर्जित होने से इसकी 'औडुव-सम्पूर्ण' उपजाति होती है। इसका न्यास (तोड़) षड्ज स्वर पर है। तथा-अन्श (वादी स्वर) पञ्चम, एवं सम्वादी षड्ज ही है। यह रागिनी आधुनिक-द्वितीय पीलू से मिलती है। लक्षमानुसार इसका निम्न स्वरूप होता है—

आ० स रि रि म प ध ध सं। अ० सं नि ध ध प म ग रि रि स।

राग विबोध में २३ मेलों में से 'मुखारी' एक मेल है, तथा प्रारम्भिक (पहिला) राग भी—

सन्ति मुखारी मेले शुद्धाः षड्जादयः स्वराः सप्त।
पूर्णा नित्यं गेया सांशन्यासग्रहा मुखारीयम्॥

अर्थात्—मुखारी मेल (थाट) में षड्जादि सातों स्वर शुद्ध हैं या लगाए जानेहैं। (अपनी-अपनी अन्तिम श्रुतिस्थ रहने हे कोई भी विकृत नहीं है।) यह सम्पूर्ण जाति की रागिनी है। षड्ज स्वर इसका अंश (वादी, पञ्चम सम्वादी) एवं ग्रह (प्रारम्भ) तथा न्यास (समाप्ति) भी षड्ज पर ही है। इनके मत में इसे तुरुष्क तोड़ी (तुर्क) टीका में लिखा है, 'हुसैनीति भाषायाम्' यानी भाषा में जिसे 'हुसैनी' (कान्हड़ा) कहते हैं। 'ग्रन्थकार' ही टीकाकार हैं वह लिखते हैं—'इयं वक्ष्यमाणे तोड़ीमेलेऽपि कैश्चिदुक्ता' अर्थात्—इस मुखारी को कोई-कोई 'तोड़ी' मेल में भी बताते हैं। तथा 'हुसैनी' को भी, जो पहिले बताई जा चुकी है। यह हर समय गाई जाती है।

रागो वसन्तमुख्यारिः यस्याऽऽरोहे सगौ रिगौ।
मपौ निधौ निसौ चैवाऽवरोहे च सनी धपौ॥
मरिसाः युक्तोऽथ रिनिधाः कृत्रिमाः स्युःप्रगीयते।

(सङ्गीत तरङ्गिणी)

अर्थात्—वसन्त मुख्यारि (मुखारी) नामक राग के आरोह में स ग रि ग म प नि ध नि सं। तथा अवरोह में—सं नि ध प म रि स। इस भांति स्वर प्रयुक्त होतेहैं इसमें ऋषभ, धैवत तथा निषाद यह तीनों स्वर कोमल लगते हैं। इस तरह यह राग गाया जाता है। अतः इसकी जाति—सम्पूर्ण, षाडव हुई। क्योंकि आरोह में सम्पूर्ण स्वरों का प्रयोग होकर अवरोह में गान्धार वर्जित किया है। तथा आरोही में गान्धार, निषाद दोनों वक्र-पुनरुक्त हैं।

मुखारी का ध्यान सोमनाथ जी ने निम्न भांति बताया है—

श्यामा कामाक्रान्ता कान्तवियोगासहा मुखारीयम्।
मणिमयसुकुचावरणा वीणापाणिः प्रवीणोच्चैः ॥

अर्थात्—मुखारी रागिनी साँवले शरीर की है और यह कामोद्वेग से आक्रान्त (व्याकुल) हो रही है। पति का वियोग अब इससे सहा नहीं जाता, इसका कुच आवरण (कञ्चुकी या चोली) मणि-जटित और शोभायमान है। वीणा हाथ में लिए है। उच्चकोटि की यह प्रवीण-चतुर महिला है। (उत्कण्ठिता नायिका)

मूलग्रन्थ में मुखारी का स्वर प्रस्तार निम्न दिया है—

धसग्मिमपनिनिधपमगगग रिसरिसस । धसरिममपपधससरिग गरि रिसनिधनिनिधपमपमा गरिसरिससधसस्स।

इति मुखारी। सर्वदा ॥ १५ ॥

यह मुखारी सदैव गाई जाती है ॥ १३ ॥

अब रागिनी भैरवी का लक्षण बताते हैं—

स-स्वरान्शग्रहन्यासा भैरवी स्याद्धकोमला।
रिणारोहे तु षन्यासा पञ्चमेनोभयोरपि ॥
षड्जेनाथावरोहे तु सर्वदा सुखदायिनी ॥ ३७४ ॥

षड्ज स्वर ही इसका अन्श (वादी, सम्वदी पञ्चम) तथा वही ग्रह और न्यास भी है। धैवत इसमें कोमल लगता है। आरोही में ऋषभ तथा पंचम दोनों के द्वारा और अवरोही में षड्ज के द्वारा कोमल होती है। (यह श्रुतियों का हिसाब है) पञ्चमपर भी न्यास होता है और यह भैरवी सर्वदा सुख देनेवली, यानी प्रांत समय गाई जाती है।

राग विबोध में--

भैरव्यंशन्यासग्रहसा रिपमुद्रिता सदा पूर्णा।

अर्थात् भैरवी में अंश, न्यास, ग्रह सब षड्ज पर होता है (सम्वादी प) ऋषभ तथा पंचम पर मुद्रा नामक गमक का प्रयोग किया जाता है।

यथा—'मुद्रा परैकहननान्प्रदर्श्य पूर्वं पुनस्तदाच्छादः।'

अर्थात्—दूसरे स्वर पर (मिज़राब द्वारा) एक आघात करने से ही पहिले स्वर को स्पष्ट दिखाकर फिर दूसरे स्वर पर अँगुली ले जाने से यानी उस दूसरी 'सार' पर अँगुली पहुँचाकर, फिर पहिली सार का आच्छादन (अँगुली आरोपण) मुद्रा कहलाता है। 'अनुहति' नामक गमक में और इस 'मुद्रा' में इतना ही भेद है कि—उस (अनुहति) में तो अति शीघ्र अँगुली उठालने से गम्भीर ध्वनि निकलती है और इस (मुद्रा) में शनैः शनैः अँगुली ऊपर करने से उसका अभाव रहता है।

यह भैरवी सम्पूर्ण वर्ग की होती है और सदैव गाई जाती है यह इनके 'श्रीराग' के मेल (थाट) में बताई है। जिसमें तीव्र रि तथा साधारण तीव्र ध और कैशिकी—१।४।१०।१३ श्रुतियां तथा स म प तीनों शुद्ध होते हैं।

भैरवी पर रत्नाकर का मत—

धांशन्यासग्रहा तारमन्द्रगान्धारशोभिता।
भैरवी भैरवोपाङ्गं समशेषस्वरा भवेत्॥

अर्थात्—धैवत स्वर ही इसका अंश, न्यास, ग्रह तीनों हैं। (सम्वादी रि०) मन्द्र सप्तक के गान्धार से तार के गान्धार तक यह शोभित होती है। भैरव का उपाङ्ग (विकल रूप) ही भैरवी होती है। शेष स्वर इसमें समान (बराबर) रूप से वर्त्ते जाते हैं। यह तो हुए प्राचीन मत! अब भैरवी पर आधुनिक मत देखें।

भैरवी आधुनिक १० मेलों (थाटों) में से १ है, इसे ही दक्षिणीय ग्रन्थों में 'हनुमत्तोड़ी' नाम से लिखा है। इसमें प्रायः सभी स्वर कोमल होते हैं।

एवं सति द्वितीयोपि स्वरो मृदुत्वमेति चेत्।
भैरवी रागिणी रम्या तत्र पश्यन्ति कोविदाः॥ (अ० रा० मं०)

अर्थात्—ऊपर से प्रसङ्ग मिला कर पहले बताए राग के पश्चात् कहते हैं कि ऐसा होते हुए यदि दूसरा स्वर भी कोमल हो जाए, यानी सब ही कोमल हो जायें तो उस रमणीक रागिनी को पण्डित "भैरवी" नाम से बताते हैं।

निसौ गमौ पो धनिसाः निधौ पमौ च गो रिसौ।
भैरवीयं प्रभाते स्याद्विकृतैर्गरिधैर्निना॥

अर्थात्—नि॒स गम प ध॒नि॒सं नि॒ध॒ पम ग॒ रि॒स, यह भैरवी रागिनी प्रातःकाल रि. ग. ध. नि. कोमल करके गाई जाती है।

अब रागिनी भैरवी का ध्यान बताया जाता है—

सरोवरस्थे स्फटिकस्य मण्डपे सरोरुहैः शंकरमर्चयन्ती।
तालप्रभेदप्रतिपन्नगीता, गौरीतनुर्नाम हि भैरवीयम् ॥

अर्थात्—एक सुन्दर तालाब बना है, उसके बीचों बीच एक स्फटिक मणि (पत्थर) का (जिसके चश्मे बनते हैं) मण्डप (मन्दिर) बना है। ताल में कमल फूले हुए हैं, उन कमल फूलों को लेकर जो भगवान शंकर की पूजा कर रही है। (प्रातः समय है) तालों के प्रभेद (भेद विभेदों) के द्वारा जिसके गीत सम्पन्न हो रहे हैं। अर्थात् उसके गीतों में ताल की मात्रादि विषय का बड़ा हेर फेर है। अथवा सम, अतीत, अनागत (अनाघात) विषम ग्रहों का चमत्कार है। वह गौरी (पार्वती) समान शरीर वाली (शिवास्वरूपा) भैरवी रागिनी है। इधर प्रातः के 'सन्धि प्रकार' रागों में गौरी स्वरूपा भैरवी, और उधर सायं के सन्धि प्रकाशों में 'गौरी रूपा गौरी' यह दोनों ही राग पार्वती के बताए जाते हैं। वास्तव में 'भैरव' नाम (भयानक वेष धारी) शंकर का ही है, अतएव भैरवी पार्वती जी के आकार में लिखी है। सर्व मताऽनुसार संगीत के आदि गुरु या रचयिता शंकर भगवान हैं! अतएव सर्व प्रथम राग 'भैरव' उन्हीं के आकार का है, तथैव भैरवी 'शिवा स्वरूपा'!

शिव पूजत कैलाश पर दुहुँ करन में ताल।
श्वेत चीर अँगिया अरुन, रूप भैरवी बाल॥

अथ स्वर प्रस्तारः—सरिगमपधनि। सनिधपमगरिस। सरिगमपमगरिसमगरिगरिसनिधनिसा। सगमगमगमगमपमगरिस। धापमगरिसगरिनिसगगमगमपमगरिस गगमनिनिधमगरिससगरिसनिनिसस्स। इति भैरवी। सर्वदा। १६। यह भैरवी हमेशा गाई जाती है। १६।

अब 'भूपाली' (रागिनी) का लक्षण बताते हैं—

मनिवर्ज्या तु भूपाली रि-धौ यत्र च कोमलौ।
गान्धारोद्ग्राहसंयुक्ता रि-यासा गांशशोभिता॥ ३७५॥

भूपाली रागिनी मध्यम-निषाद वर्जित औडुव २ वर्ग की होती है। इसमें ऋषभ तथा धैवत दोनों स्वर कोमल लगते हैं। गान्धार स्वर पर इसका उद्ग्राह (ग्रह) है। तथा ऋषभ पर न्यास (तोड़) और गान्धार अंश (वादी, सम्वादी तार षड्ज) होता है।

संयुक्ता, शोभिता—पद्यपूर्त्ति के शब्द हैं अर्थात् साथ है, और अच्छी लगती है

आधुनिक प्रचलित भूपाली भी मध्यम निषाद वर्जित है, ग्रह भी प्रायः लोग

गान्धार ही रखते हैं वादी भी गान्धार होता है, किन्तु सम्वादी धैवत। ऋषभ व धैवत कोमल नहीं लगाते, अपितु दोनों शुद्ध लगाकर विलावल मेल में गाते हैं। और यह 'माया मालव गौड़' अर्थात्—भैरव थाट में होती है। राग विवोध भी इसी (पारिजात की) भूपाली को मानता है या नहीं?

सन्यासग्रहगांशा मनिहीनोषसि स्मृतेह भूपाली।

अर्थात्—भूपाली मध्यम निषाद हीना, उषः (प्रातः) –याद करने (गाने) की है। इसमें—षडज न्यास (तोड़) और ग्रह भी वही, तथा गान्धार अंश (वादी धैवत सम्वादी) है। यह इनके 'मल्लारि' मेल में है, जिसमें ऋषभ धैवत दोनों तीव्रतर षडज मध्यम कोमल २। ६। ११। १५ श्रुतियां स० म० प० शुद्ध, यथा—

मल्लारि मेल उक्तास्तीव्रतररिमृदुमतीव्रतरधाश्च।
मृदुसः शुद्धाः समपा अस्मादेते तु मल्लारि॥
(रागविबोध)

सङ्गीत रत्नाकर में यह नहीं मिलती। भरत ने इसे मेघ की रागिनी मानाहै।

जब भैरवि के मेल से स्वर मनि दिये निकाल।
धग वादी सन्वादि ते कहत राग भूपाल॥
(राग चन्द्रिकासारे)

भूपाली का ध्यान निम्न प्रकार दिया है—

पत्युर्वियोगान्मलिनाऽऽननाऽऽलसा वियोगवह्निकृतपीतगात्रिका।
सुकेशराद्रंजितशाटिकोत्तमा भूपालिका सा खलुमेघरागिनी॥

भावार्थ दोहे में देखें—

भूपाली विरहिनि खड़ी केशरि बोरें चीर।
भयो विरह की ज्वाल तें, पियरो सबै शरीर॥

विरहोत्कण्ठिता नायिका है।

दोलालोला विपिने तरलितवलयं विभूष्य भूपाली।
कान्ते प्रसिताऽत्यन्तं कुंकुमपीता स्मराद्धीता॥ (रा० वि०)

अर्थात्—भूपाली रागिनी कुंकुम वर्ण की गौरी है। वनमें शृङ्गार कर के पति के लिए अत्यन्त प्रसिता (उत्सुका) होरही है। और कामातुरा है। झूले में झूलकर चित्त बहला रही है या झूले की भांति स्वयं भी चंचल होरही है। उत्सुकता से एक स्थान पर नहीं ठहरती। उसी प्रकार उसका कंकण भी चञ्चल हो रहा है।

टीका में वासक सज्जा नायिका लिखी है। किन्तु लक्षण उत्कण्ठिता से मिलते हैं

अथ स्वर प्रस्तारः गपधसारिगरिससा धपगपगरिगरिसधसा। गपधस रिगरिगगगगरिरिरिरिगरिगरि सधधससस्सा।

इति भूपाली। प्रातःकालीया। १७। यह भूपाली, प्रातःकाल गाई जाती है। १७।

अब प्रसभ राग का लक्षण बता रहे हैं—

षड्जादिमूर्च्छनोपेतः प्रसभः पञ्चमोज्झितः॥ ३७६॥

अर्थात्—प्रसभ राग षड्ज स्वर आदि में है जिसके ऐसी पूर्व कथित उत्तरा-मन्द्रा मूर्च्छना के समेत (या उससे उत्पन्न) होता है। पञ्चम स्वर इसमें वर्जित होने से इसकी जाति षाडव २ होती है।

नन्दयन्तीसमुभूद्भवः प्रसवो मग्रहान्शकः।
सन्यासो निधयोर्युक्तःपूर्णो वीरे नियुज्यते ॥ (शैव सङ्गीते)

अर्थात्—'प्रसव' राग नन्दयन्ती मूर्च्छना से उत्पन्न होता है। नन्दयन्ती अथवा 'नन्दा' यह गान्धारग्राम की पहिली मूर्च्छना है। कोई २ इसे निषाद ग्राम भी कहते हैं। इसका स्वरूप या आरोहावरोह—'नि सं रिं गं मं पं धं धं पं मं गं रिं सं नि। इस प्रकार होता है। पारिजात में स्वरप्रस्तारः—

सरिगमधनिस निधमगरिस । गगरिसनिधनिसनिधमगरिस। सरिगमधनिस। मगरिसनिध। निसनिधनिधमगगरिसनिसस्सा।

इति प्रसभः। प्रातः कालीयः। १८। यह प्रसभ सवेरे गाया जाता है।

अब 'कोल्लहास' राग का लक्षण कहते हैं—

मोज्झितो कोल्लहासः स्याद्गान्धारादिकमूर्च्छनः।
अवरोहे धवर्जः स्यात्पाडवः परिकीर्त्तितः ॥ ३७७ ॥

अर्थात्—कोल्लहास राग में मध्यम स्वर वर्जित होता है। अतः षाडव वर्ग का कहा गया है। इसमें गान्धार स्वर पूर्वक (पूर्व कथित 'हारिणाश्वा') मूर्च्छना होती है। अवरोही में धैवत वर्जित होता है, अतः 'षाडव-औडुव' उपजाति होती है।

आ०- स रि ग प ध नि सं। अ०- सं नि प ग रि स।

रत्नाकर में इसे स्त्री तथा पुलिंग दोनों में प्रयुक्त किया है। अर्थात् राग भी है और रागिनी भी। कुछ नामान्तर है यथा 'कोलाहल'

टक्काङ्गं टक्कवत्तारैः स्वरैः कोलाहलोऽखिलैः।

अर्थात्—टक्क (या टङ्क, टङ्कण, टङ्की) राग का ही यह अङ्ग होता है। और टक्क राग की भांति ही इस कोलाहल राग में तार सप्तक के सब स्वर लगते हैं। टङ्क का विवरण उसी की टीका में देखें। अब रागिनी के रूप में—

कोलाहला टक्कभाषा सग्रहांशा पवर्जिता।
सधमन्द्रा मभूयिष्ठा कलहे गमकान्विता ॥

अर्थात्—कोलाहला रागिनी टक्क राग की भाषा (मेल) में होती है। षड्ज इसका ग्रह, तथा अंश (वादी, सम्वादी धैवत और पञ्चम वर्जित स्वर है। अतः षाडव वर्ग होता है। इसमें षड्ज और धैवत) मन्द्र सप्तक के लगते हैं। या मन्द्र के षड्ज-धैवत तक गति होती है। मध्यम स्वर इसमें अधिक वर्त्ता जाता है। (अनुवादी जानिए) और अनेक गमकें प्रयुक्त होती हैं तथा कलह (लड़ाई) के समय

इसे गाते हैं। क्योंकि 'कोलाहल' को 'कोलाहल' में ही गाना चाहिए—'यथा नाम तथा गुणः'।

शैव सङ्गीत में इसे 'कोल्लास' इस रूप में लिखा है—

धैवत्यार्षभिकायुक्तशुद्धजातिसमुद्भवः।
षड्जन्यासग्रहांशश्च कोल्लासो रिधदुर्बलः॥

अर्थात्—धैवती और आर्षभी इन दोनों जाति-गीतियों से युक्त, तथा शुद्ध जाति से 'कोल्लास' राग उत्पन्न होता है। यानी कोई स्वर कोमल नहीं लगता। षड्ज पर इसका न्यास (तोड़) और ग्रह भी है एवं षड्ज ही अंश (वादी, सम्वादी पञ्चम) और ऋषभ, धैवत इसमें दुर्बल (कमज़ोर) रहते हैं, कम लगाए जाते, या इन पर कम रुकते हैं। यह राग भी इस समय अप्रचलित ही है।

अथ स्वर प्रस्तारः—गपधनिसरिगरि सनिपगपगरिस। सरिगपधनिधनिपपगपपधनि [illegible]।

इतिकोल्लहासः। प्रातः कालीयः। १६। यह कोल्लास सवेरे गाया जाता है।

अब शुद्ध-भैरव का लक्षण कहते हैं—

भैरवे तु रि-पौ नस्तौ धादिमे न्यासमध्यमे।
तत्रोक्तौ तु गनी तीव्रौ कोमलौ धैवतः स्मृतः॥ ३७८॥

भैरव राग में ऋषभ, पञ्चम दोनों स्वर नष्ट (वर्जित) होते हैं, अतः इसकी औडुव २ जाति है वादी षड्ज सम्वादी धैवत है और गान्धार, निषाद दोनों तीव्र (शुद्ध) तथा धैवत इसमें कोमल कहा गया है। धैवत पर इसका आदि स्वर (ग्रह) तथा मध्यम पर न्यास (अन्त) होता है। वहाँ वे दोनों बताये गए हैं।

रत्नाकर में भी 'वसन्त भैरव' और 'शुद्ध भैरव' की भाँति 'भैरव' तथा 'शुद्ध-भैरव' दो प्रकार के राग मिलते हैं, प्रथम-भैरव को देखिये—

(भिन्नषड्जोऽथ मेलः स्यात्) भैरवस्तत्समुद्भवः।
धान्शो मान्तो रिपत्यक्तो प्रार्थनायां समस्वरः।'

अर्थात्—'भिन्न षड्ज' (भाषा) मेल से भैरव राग उत्पन्न होता है। इसमें धैवत स्वर अंश (वादी, सम्वादी गान्धार) मध्यम पर न्यास, तथा ऋषभ, पञ्चम दोनों स्वर वर्जित होने से औडुव-वर्ग होता है। इसमें प्रायः सब ही स्वर समान व्यवहृत होते हैं (इसकी व्याख्या पहिले की जा चुकी है) और यह (देव) प्रार्थना आदि में गाया जाता है।

अब इनका शुद्ध-भैरव देखिये—

धैवतांशग्रहन्याससंयुतः स्यात्समस्वरः।
तारमन्द्रोऽयमाषड्जगान्धारं शुद्ध भैरवः॥

अर्थात्—शुद्ध भैरव राग में धैवत अंश (वादी, सम्वादी ऋषभ) तथा

ग्रह, न्यास, भी दोनों धैवत पर ही होते हैं ! यह 'सर्व स्वर सम-प्रयुक्त' राग है। तथा--तार (सप्तक) के षड्ज से लेकर मन्द्र के गान्धार पर्य्यन्त इसकी गति होती है।

"राग-विबोध" का भैरव—

भैरवमेले शुद्धाः सरिमपधा अन्तरश्च कैशिकिनः।

अर्थात्—(आधुनिक १० थाटों में से जैसे भैरव पहिला थाट है, वैसे ही इनका भी भैरव ५० वाँ थाट है और वह द्विभेदक है) इसमें 'स रि म प ध' यह स्वर शुद्ध, मध्यम की दूसरी श्रुति पर स्थित गान्धार (बोलता) है। अन्तर—निषाद षड्ज की एक श्रुतिस्थ (बोलता) है। कैशिक- ५। १३ श्रुतियाँ इसमें प्रयुक्त होती हैं, और 'पौरवी' आदि कितने ही राग इस मेल से उत्पन्न होते हैं।

धांशग्रहसंन्यासः सम्पूर्णो भैरवः प्रातः।

अर्थात्—भैरव में धैवत अंश (वादी, सम्वादी ऋषभ,) तथा ग्रह भी धैवत पर ही होता है। न्यास भी वही धैवत, अथवा—षड्ज पर होता है। इसकी सम्पूर्ण जाति है, सब स्वर लगाए जाते हैं, और प्रातःकाल गाते हैं।

इस समय लोग 'भैरव' से मिलते जुलते रागों को भी भैरव ही मान बैठे हैं। अतः उनके मत में आधुनिक १२ भैरव होते हैं। यथा—शुद्ध भैरव, शिव भैरव, आदि भैरव, नट भैरव, आनन्द भैरव, अहीर (आभीर) भैरव, जोग भैरव, बङ्गाल भैरव, द्वितीय बङ्गाल भैरव, वसन्त भैरव, टङ्क भैरव, प्रभात भैरव, इत्यादि। इनमें कई तो आगे चलकर आएंगे। कोई २ 'भैरवाष्टक' के नाम से ८ प्रकार के भैरव मानते हैं।

भैरव का ध्यान बिलकुल शिव के समान है। यथा—

रुद्रवेषो जटायुक्तो मुण्डमालाविभूषित ।
रक्तनेत्रो कपर्दी च भैरवो भैरवाऽऽसनः॥ (सं० मं०)

अर्थात्—रुद्र (शिव) के समान इसका वेष है, जटा के समेत, शिरों की माला से विभूषित (सुसज्जित) है। लालवर्ण के नेत्र हैं, भैरव (भयानक) जिसका आसन है। वह भैरव राग है।

अथवा राग विबोध के अनुसार—

डमरुत्रिशूलधारी पन्नगहारी सितोलसद्वसितः।
धृतशशिगंगोऽतिजटोऽजिनविकटो भैरवोऽसमदृक्॥

अर्थात्—डमरू और त्रिशूल लिये हुये, सापों का हार पहिने, सित-(श्वेत) वर्ण से सुशोभित, बदन में भस्म लगाये। चन्द्रमा और गंगा को धारण किए हुए, बड़ी या खुली जटाओं वाला, गजचर्म से विकट दीखने वाला, तीन नेत्रों वाला, वह विशाल या विकराल भैरव राग है।

---

*राग भैरव का विशेष वर्णन चित्रों सहित "राग दर्शन" (प्रथम भाग) में देखिये यह ग्रन्थ रागभरव पर ही लिखा गया है। सङ्गीत कार्यालय, हाथरस से प्रकाशित।

भैरों शिव छवि शिर जटा श्वेत वसन त्रयनैन।
मुन्डन की माला गरे, सिद्ध रूप सुख दैन॥
(हिन्दी राग रत्नाकरे)

अथ भैरव स्वर प्रस्तार—

धनिसगमधनिसमगमनिधनिसनिधनिनिमगम। सगमधमगमगमगसनिधनिस-निधिधनिसस्सा। इति भैरवः। प्रातः कालीयः। २०।

यह भैरव प्रातःकाल गाया जाता है। २०।

अब वसन्त भैरव का लक्षण बताते हैं—

कोमलाख्यौ रि-धौ तीव्रौ ग-नी वसन्तभैरवे।
धैवतांशग्रहन्यासो मध्यमांशोऽपि सम्मतः॥ ३७६॥

'वसन्त भैरव' राग में ऋषभ, धैवत दोनों कोमल, एवं गान्धार निषाद तीव्र (शेष स्वर शुद्ध) होते हैं। धैवत पर इसका अंश (वादी, सम्वादी ऋषभ) तथा ग्रह और न्यास भी धैवत पर ही होता है।

कोई २ इसका अंश (वादी) मध्यम भी मानते हैं तो तार-षड्ज सम्वादी हो जाता है। इस वसन्त-भैरव को ही आजकल लोग 'शुद्ध भैरव' मान कर गाते हैं-

राग विबोध में इसे वसन्त-भैरवी के नाम से दिया है? अन्तर केवल नाम का है। कोई किसी राग को पुलिङ्ग में प्रयुक्त करता है तो कोई स्त्रीलिङ्ग में जैसे—सर्वप्रारम्भिक राग इस (पारिजात) ग्रन्थ में "सैन्धव" पुलिङ्ग वाचक बताया है, वही अन्य सभी ग्रन्थों में स्त्रीलिङ्ग वाचक 'सैन्धवी'। इत्यलम्।

'पोना वसन्त भैख्युषसि तु सांशग्रहन्यासा।'

अर्थात्—'वसन्त भैरवी' पञ्चम स्वर वर्जित षाडव वर्ग में होती है, इस का षड्ज अंश वादी (धैवत सम्वादी, क्योंकि पञ्चम वर्जित है) ग्रह-आदि स्वर तथा न्यास (समाप्ति) भी षड्ज पर ही है। प्रातःकाल गाई जाती है।

वसन्त भैरवी अट्ठावनवाँ (५८) स्वयं एक मेल है, राग विबोध के मतानुसार इसका ५८वां मेल (थाट) तथा २ भेद बताये हैं—

मेले वसन्तभैरविकायाः शुद्धाः सरिमपधा मृदुमः।
कैशिक्यपीयमम्मान्मारव्यथ मेलतोऽन्ये च॥

अर्थात्—वसन्त भैरवी के मेल (थाट) में 'स रि म प ध' यह स्वर शुद्ध प्रयुक्त होते हैं। तथा--मध्यम -कोमल, अथवा-तृतीय-श्रुतिस्थ (अपनी तीसरी श्रुति पर बोलने वाला) और गान्धार, तथा कैशिकी आदि ६।१३ श्रुतियाँ इसमें वर्ती जाती हैं। भावार्थ-गान्धार मध्यम की तीसरी श्रुति पर बोलता है, टीका में-'मध्यम तृतीय श्रुतिस्थो-गः' लिखा है। इस मेल में मारवी (मालवी) आदि, अन्य कई राग उत्पन्न होते हैं।

वसन्त भैरव का स्वर प्रस्तार निम्न प्रकार दिया है—

पनिसरिगमपामानिरीसानीसरिनिसनिधा । धनिसा । मगरिसनिसरिनिसानिधा । धनीसस्सा धनिसरिगम्मा । धधपमपमगम्मा । सरिगमगरिसनिधनीसासा ।

इति वसन्त भैरवः । प्रातःकालीयः ।२१।

यह वसन्त भैरव प्रातःकाल गाया जाता है ।

अब 'मध्यमादि' राग या रागिनी का स्वरूप लक्षण बताते हैं—

मध्यमादौ ग–धौ नस्तो मूर्च्छना मध्यमादिका ।
तत्र त्वंशस्वगः प्रोक्ता रि–म–नयो मुनीश्वरैः ॥ ३८० ॥

अर्थात्—मध्यमादि राग में गान्धार और धैवत दोनों स्वर वर्जित होते हैं । तः इसकी 'औडुव २' जाति है । मध्यम स्वर इसका ग्रह भी है, और मध्यम आदि में है जिसके उस मध्यम ग्राम की पहिली 'सावीरी' मूर्च्छना से उत्पन्न होता है । अतएव इसका नाम 'मध्यमादि' है । आरोहावरोह (मू०) म प ध नि सं रिं गं । गं रिं सं नि ध प म । शेष स्वर शुद्ध लगते हैं । इसमें अंश स्वर मुनीश्वरों (भरतादिकों) ने ऋषभ, मध्यम, निषाद यह बताये हैं । प्रायः ऋषभ-पञ्चम वादी, सम्वादी होते हैं । कोई २ मध्यम वादी, सम्वादी तार षड्ज मानते हैं । कोई २ इसमें निषाद लगाते हैं । आरोह में शुद्ध तथा अवरोह में कोमल, किन्तु इस क्रम से 'शुद्ध-सारङ्ग' का रूप होजाता है । अतएव पारिजात के मत में केवल शुद्ध निषाद है ।

मध्यमग्रामरागोऽयं मध्यमादिस्तदुद्भवः ।
मध्यमांशग्रहन्यासो गमगेत्थश्च ग्रीष्मके ॥ (र० क०)

अर्थात्—यह (प्रथम कथित) मध्यम ग्राम राग है । मध्यमादि इसी से उत्पन्न होता है । यह मध्यम ग्राम राग एक भाषा (मेल) भी है । इस (रत्नाकर) में ८ ग्राम राग हैं । मध्यमादि में-मध्यम स्वर अंश (वादी, सम्वादी तार षड्ज) तथा ग्रह और न्यास भी मध्यम पर ही होता है । और गान्धारी, मध्यमा, तथा पञ्चमी इन तीनों जाति-गीतियों से यह उत्पन्न होता है । और ग्रीष्म ऋतु में गाया जाता है । यानी दिनके दोपहर में ।

भवन्ति मधुमाधव्यां भार्य्यायां भैरवस्य च ।
त्रिमितायां गधौ हीनावौडुवा निद्रयोदिता ॥
विवादी धैवतश्चाऽत्र तृतीयप्रहरे दिने । (सं० मं०)

अर्थात्—भैरव राग की तीसरी भार्य्या मधुमाधवी में-गान्धार और धैवत दोनो स्वर वर्जित होते हैं । अतः यह 'औडुवी' रागिनी होती है । निषाद इसमें दोनों (तीव्र-कोमल) लगाए जाते हैं । तथा धैवत विवादी होकर लगता है । दिनके तीसरे प्रहर में गाई जाती है ।

स्वरूपः—सुवर्णदेहा मृदुवाग्विलासिनी, सरोजदृङ् नागरिका मनोरमा।
उपेत्य कान्तं विहसन्सुभाषिणी कठोरवक्षा मधुमाधवी हि सा॥

अर्थात्—सुवर्ण जैसा सुन्दर वर्ण उसके शरीर का है, जो मीठे वचनों से विलास करने वाली है, कमल जैसे नेत्र हैं। वह बड़ी मनोरमा नागरिका (शहर की रमणी) है। पति के पास बैठी मुस्कानी हुई, अच्छे ढङ्ग से बातें कर रही है। उसके कुच कठोर हैं, वह मधु माधवी रागिनी है।

कञ्चन तन लोचन कमल, नागरि परम अनूप।
पति ढिंग बैठी हंसति है,मधुमाधवि शुभ रूप॥

स्वर प्रस्तारः · मपनिसरिमपनिसनिसनिपमपनिपमपमरिमरिग्रि। निसरिमरिसा रिरिरेरिमरिस। सरिसरिनिसा। निसनिपमगमरिमरिसनिसस्सा। निनीपनिसमारिसनिसस्सा।

इतिमध्यमादिः। प्रातः कालीयः।२२। यह मध्यमादि सवेरे गाया जाता है।२२।
अब बङ्गाली रागिनी का लक्षण बताते हैं—

बङ्गाली रि-ध-हीना स्यान्मतीव्रतरगंयुता।
नि-तीव्रेणापि संयुक्ता म-स्वरोत्थितमूर्च्छना॥ ३८१॥

बङ्गाली रागिनी ऋषभ-धैवत वर्जित औडुव वर्ग की होती है। इसमें मध्यम तीव्रतर लगता है। तथा निषाद तीव्र होता है, और षड्ज स्वर से उठी 'शुद्धमध्या' मूर्च्छना होती है। अतः षड्ज ही ग्रह है। एवं वादी, सम्वादी षड्ज पञ्चम हैं।

राग विबोध में इसके २ विधान बताये हैं, और पुर्लिंग में प्रयुक्त किया है। एक तो 'बङ्गाल' दूसरा-शुद्ध बङ्गाल'।

बङ्गालः शाश्वतिकः पूर्णः सांशग्रहश्च सन्यासः।

अर्थात्—बङ्गाल सम्पूर्ण वर्ग का राग है। तथा षड्ज स्वर न्यास, ग्रह एवं अन्श, (सम्वादी पञ्चम) सदैव गाया जाता है। मेल मालव गौड़ है, जो गौरी की टीका में लिखा जा चुका है।

शुचिबङ्गालः पूर्णो सांशन्यासग्रहो व्युष्टे।

अर्थात्—शुद्ध बङ्गाल भी सम्पूर्ण वर्ग का है, इसमें मध्यम स्वर न्यास, ग्रह तथा अन्श (सम्वादी तार षड्ज) है। और यह प्रातः गाया जाता है। इसका मेल कर्णाट (कान्हड़ा) है।

रत्नाकर में इस राग के ६ भेद बताये हैं—

(१) षाडवादेव बङ्गालो ग्रहांशन्यासमध्यमः।
ग्रहर्षे विनियोक्तव्यः प्रोक्तः सोढलसूनुना॥

अर्थात्—'शुद्ध षाडव' राग की भाषा (मेल) से बङ्गाल उत्पन्न होता है। इसका मध्यम स्वर ग्रह, न्यास, और अंश है। यह खुशी के समय गाया जाना चाहिए। ऐसा सोढल देव के पुत्र निःशंक शार्ङ्गदेव जी ने कहा है।

(२) षड्जग्रामे मन्द्रहीनः षड्जमध्यमया कृतः।
बङ्गालोऽशग्रहन्यासषड्जस्तुल्याखिलस्वरः॥

अर्थात्—षड्जग्राम में 'षड्जमध्यमा' जाति-गीत के द्वारा बङ्गाल राग उत्पन्न होता है। इसका अंश, ग्रह, न्यास षड्ज स्वर पर ही हैं। तथा मन्द्र सप्तक का कोई स्वर इसमें नहीं लगता। यह पहिले बताए नियमानुसार सम स्वर राग है। यानी सब स्वर समानता से ही प्रयुक्त होते हैं।

(३) मध्यमे कैशिकीजातः षड्जन्यासांशकग्रहः।
बङ्गालस्तारमध्यस्थपंचमः स्यात्समस्वरः॥

अर्थात्—मध्यमग्राम में कैशिकी जाति से उत्पन्न बङ्गाल राग होता है। इस का भी अन्श, न्यास, ग्रह षड्ज ही है। इसमें मध्य सप्तक के पंचम से तार के पंचम तक की गति होती है, और यह भी सम स्वर राग है।

(४) धन्यासांशग्रहा भाषा बाङ्गाली भिन्नषड्जजा।
गापन्यासा दीर्घरिमा धमन्द्रोद्दीपने भवेत्॥

अर्थात्—बाङ्गाली भिन्न षड्जभाषा (मेल) से उत्पन्न होती है। और यह भी एक भाषा (विभाषा) ही है। धैवत स्वर इसका न्यास अन्श, ग्रह है। गान्धार इसका अपन्यास है। तथा ऋषभ और मध्यम दोनों स्वर इसमें, दीर्घ, (गुरु) या अधिक प्रयुक्त होते हैं, यानी ऋषभ सम्वादी है, तद्वत्-मध्यम भी। या कोई मध्यम को सम्वादी मानता है। मन्द्र सप्तक के धैवत तक इसकी गति, तथा उद्दीपन-भाव में या कामोद्दीपन में यह प्रयुक्त होती है।

(५) कर्णाट बङ्गाल, (६) नट बाङ्गाल, यह दोनों मिश्रित राग प्रतीत होते हैं। अतः कर्णाट (कान्हड़ा) और नट की टीका में देखें।

सान्ता मांशग्रहा पूर्णा बाङ्गाली मध्यमोज्ज्वला।
रिमसम्वादिनी भाषा भवेन्मालवकैशिके॥ (शै० सं०)

अर्थात्—बाङ्गाली 'मालव कैशिक' (मालकोश) की भाषा (मेल) की विभाषा है। इसमें मध्यम स्वर अन्श और ग्रह, तथा षड्ज पर न्यास होता है। मध्यम इसमें उज्ज्वल-साफ़ (शुद्ध) लगती है। एवं ऋषभ और मध्यम में सम्वाद होता है।

बाङ्गाली पञ्चमी भार्य्या भैरवस्यैव सर्वगा ।
मसौ सम्वादकौ सायं विकृतर्षभधैवता ॥ (सं० मं०)

अर्थात्--बाङ्गाली भैरव राग की पाँचवीं भार्य्या रागिनी होती है। (भरत का भी यही सिद्धान्त है) सर्वस्वर गमन होने से सम्पूर्ण जाति, और मध्यम वादी तार षड्ज सम्वादी स्वर हैं। ऋषभ धैवत दोनों विकृत (कोमल) लगते हैं। इसी की अवरोही में कोई २ मध्यम-पञ्चम वक्र करके यूं लगाते हैं—

'सं नि ध प म गम रिप स'

इसका ध्यान निम्न प्रकार लिखा है—

भस्माऽऽवृता नरकपालधरा त्रिशूला
व्याघ्राम्बरा च कुपिता कुकुभेषु दीप्ता।
रौद्रानना झटिति डिण्डिममारवन्ती
बाङ्गालिका प्रथितभैरवभामिनी सा ॥

अर्थात्—भस्मसे जो आवृत (सनी हुई) है, मनुष्य की खोपड़ी हाथ में लिए है तथा त्रिशूल धारिणी है, व्याघ्र का अम्बर छाल ओढ़े है। कुपित हो रही है। कुकुभ दिशाओं में दीप्त हो रही (चमक रही) है। जिसका मुख रुद्र (भयानक) है। तथा झट २ (जल्दी-जल्दी) डिण्डिम-(डमरू) बजा रही है। वह प्रसिद्ध भैरव राग की भामिनी (रागिनी) बाङ्गाली है। इस ध्यान से भी 'बङ्गाली' एक प्रकार का भैरव ही सिद्ध होता है। क्योंकि भैरव के समान ही इसका भी स्वरूप (ध्यान) है। अस्तु !

भस्म पिटारी कर गहे, चमकत चारु त्रिशूल।
बङ्गाली व्याकुल भई, गई सबै सुधि भूल ॥

(हि० रा० र०)

अथ स्वर प्रस्तारः—

सगमपनिस, सनिपममगस । सगमपपनिपम पमगमपमगमगसनिस निमपनिसनिसगसनिसनिपमपनिपमपम। मनिसस्सा।

इति बङ्गाली। प्रातःकालीया ॥ २३ ॥

यह बङ्गाली प्रातःकाल गाई जाती है ॥ २३ ॥

अब नारायणी रागिनी का लक्षण कहते हैं—

नारायण्यो ग-नी तीव्रौ गान्धारादिकमूर्च्छना।
आरोहे मनिवर्जा स्यान्न्यासांशधैवता स्मृता ॥ ३८२ ॥

नारायणी में गान्धार निषाद दोनों तीव्र होते हैं। गान्धार स्वर आदि वाली (हरिणाश्वा) मूर्च्छना है। आरोही में मध्यम निषाद दोनों वर्जित स्वर हैं। अतः 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति होती है। इसका न्यास (तोड़) धैवत, (गान्धार-ग्रह) और अंश भी धैवत (वादी, ऋषभ सम्वादी) इस प्रकार बताई गई है।

पधससनिधपममगरिस । सरिगसरिसरिसा । निधधससरिसरिस सरिगसरिसरिसस्स निधासनिधधससरिसरिपा मगरिमगरिमगरिसरिग सरिसस्स-निधधस्स ।

इति नारायणी । प्रातःकालीया ॥ २४ ॥

अब विभास राग का लक्षण बता रहे हैं—

मस्तु तीव्रतरौ यस्मिन्गनी तीव्रौ रि-धौ मतौ ।
कौमलौ न्यासधोपेते विभासे गादिमूर्च्छने ॥
आरोहे म-नि-वर्जत्वं ग पांशम्वग्गंयुते ॥ ३८३ ॥

विभास राग में मध्यम तीव्रतर (प्राचीन-प्रचारिणी श्रुति का अन्तर गान्धार संकीर्ण चतुः श्रुतिक मध्यम) अथवा—आधुनिक सन्दीपिनी, आयता श्रुतियाँ साधारणान्तर मध्यम यथा स्वर प्रकरण में बता आए हैं।

'साधारणान्तरौ मौ स्तस्तीव्रतीव्रतराविति ।'

अर्थात्—साधारण अन्तर वाले दोनों मध्यम तीव्र और तीव्रतर कहलाते हैं।

स्वरोऽग्रिमश्रुतीर्यांति तदा तीव्रतरो भवेत् । (पारिजाते)

अर्थात्—जब स्वर आगे की दो श्रुतियों पर जाता है तो तीव्रतर होता है।

भावार्थ—२ श्रुतियां अधिक तो तीव्र, ३ से तीव्रतर, ४ श्रुतियां अधिक होने से तीव्रतम होता है। हारमोनियम में इन तीनों ही के स्थान में केवल १ चढ़ी मध्यम लगाते हैं। गान्धार और निषाद दोनों इसमें तीव्र हैं। (ग, नि, की आवश्यकता पहिले बता चुके हैं) एवं ऋषभ, धैवत दोनों स्वर कोमल माने गए हैं। (यह आधुनिक पूर्वी का मेल हो जाता है) तथा धैवत पर न्यास (तोड़) के समेत है। इसमें 'गान्धार आदि मूर्च्छना' वही पहिले बताई 'हारिणाश्वा' होती है। अतः गान्धार ही ग्रह है। एवं गान्धार अंश (वादी, सम्वादी पञ्चम) कोई पञ्चम को अंश (वादी, सम्वादी षड्ज) मानते हैं। इसकी आरोही में मध्यम, निषाद वर्जित हैं। अतः 'औडुव-सम्पूर्ण' वर्ग होता है। आरोहावरोह स्वरूपः—स रि ग प ध सं। सं नि ध प म ग रि स। यह होता है।

भरताचार्य्य ने हिन्दोल का पांचवां पुत्र 'विभाष' माना है। कोई-कोई इसे सङ्गीत-मञ्जरी के ढङ्ग पर गाते हैं—

विभाषो मनिहीनः स्यादथ स्वल्पनिषादकः।
धैवतर्षभसंवादौ शुद्धमेलसमुद्भवः ॥

अर्थात्—विभाष मध्यम-निषाद वर्जित, औडुव २ वर्ग का राग होता है।

अथवा—निषाद स्वल्प मात्रा में लगाया भी जाता है। (तो षाडव वर्ग हो जाता है।) इसमें धैवत वादी, ऋषभ सम्वादी स्वर हैं और यह शुद्ध मेल (बिलावल थाट) से उत्पन्न होता है। इनके औडुवीय-विभाष में और भूपाली में 'दूध-पानी' जैसा हिसाब है, जिसका अलग करना ज़रा टेढ़ी खीर है। केवल ऋषभ-गान्धार वादित्व में अन्तर है।

इस समय दो प्रकार के विभाष प्रचलित हैं—

धपौ गपौ च गरिसाः गपौ च धरसाः धपौ।
विभासोयम्मनित्यक्तः प्रत्यूषे भैरवाश्रितः ॥

अर्थात्—'ध प गप ग रिस गप ध प सं ध प' यह विभास मध्यम निषाद वर्जित औडुव २ वर्ग का राग है। एवं भैरव मेल में (रि. ध. कोमल) प्रातःकाल ३ बजे से ६ तक गाया जाता है।

निरिगाश्च मगौ रिसौ गपौ गपधमाः गपौ।
गरिग्मोऽन्यः विभासोऽयम्मालवे पूर्वयामके ॥

अर्थात्—'नि रिग मग रिस गप गपध मग पग रिस' यह अन्य (दूसरा) विभाष राग है। जो मालव (मारवा) मेल में (रे कोमल मध्यम तीव्र शेष स्वर शुद्ध में) होता है। पूर्व पहिले (या पूर्व कथित) समय में प्रातः गाया जाता है। (इसका वर्ग सम्पूर्ण है।)

वीणाविवादनपटुः द्रुतसिद्धहस्तः गीतज्ञपुत्रनिषदित्रगतागतीडः।
रागेषु भूरितरतानकलापयुक्तो हिन्दोलसूनुरतिमानधरो विभासः ॥

अर्थात्—वीणा के विशेष वादन (बजाने) में वह कुशल है। जिसके हाथ इस काम में सिद्ध हो चुके हैं और उनमें लाघव (फुर्त्ती) है। सङ्गीत जानने वालों के समूह के द्वारा जिसके पैर रखने की चौकी पूजी जा चुकी है। रागों में बड़ी-बड़ी या भांति-भांति की तानें, अलाप, टुकड़े, पल्टे, गमकों के प्रयोग में जो युक्त-योजक है। वह हिन्दोल राग का पुत्र महान सम्मान (प्रतिष्ठा) पाए हुए विभास राग है।

अथ स्वर प्रस्तारः—

गपधसरिगपामगारिसनिधपधससनिध निधपमपमगारिस सरिसरिससस निधपधससनिधनिधपगपमगारिस सरिससससनिधपधापमापापाध·····सासनि धपधापपमागगारिस। सरिससनिधपधधसा [illegible]।

इति विभासः। प्रातःकालीयः ॥ २५ ॥

यह विभास सवेरे गाया जाता है।

तीव्रगान्धारसम्पन्ना मध्यमोद्ग्राहधान्तिमा ।
सांशस्वरेण संयुक्ता कानडी सा विराजते ॥ ३८४ ॥

जिसमें गान्धार तीव्र लगता है । तथा-मध्यम स्वर पर उद्ग्राह (ग्रह) होता है, और धैवत पर न्यास । षड्ज जिसका अन्श (सं० प०) है । सर्व स्वर शुद्ध सम्पूर्ण जाति है । वह 'कानड़ो' (कान्हड़ा) रागिनी अच्छी लगती है । इसका शुद्ध नाम 'कर्णाटी' है । इसके किसी ने १८ तो किसी ने २० तक भेद बताये हैं । वस्तुतः वे सब सहस्वरी राग हैं तथा सब पृथक हैं ।

अथ स्वर प्रस्तारः—

मपधनिसरिगम गरिसनि धनिधनिधपमपधनिसारिसनिसानिधा । सानिधानिधपमपधनिसरिसनिसामगमपामगरिसानिसनिधा मपधनिसस्सा ।

इति कानडो । तृतीय प्रहरोत्तरम् । २६ । दिन के तीसरे प्रहर के उत्तर में ।

अब 'मेघनाद' राग का लक्षण बता रहे हैं—

रिणा युक्तः कोमलेन मेघनादस्तु पाडवः ।
स-स्वरादिस्वरारब्धो म-वर्ज्जोऽपि रि-गान्शकः ॥३८५ ॥

अर्थात्—मेघनाद राग मध्यम वर्जित षाडव वर्ग का होता है । और इसमें केवल ऋषभ कोमल लगता है । (शेष स्वर शुद्ध हैं) षड्ज स्वर इसका स्वरारम्भ (ग्रह) है । तथा षड्ज आदि में है, जिसके उस पूर्वोक्त 'शुद्ध मध्या' मूर्च्छना से उत्पन्न होता है । और इसका ऋषभ अथवा गान्धार अन्श (वादो, सम्वादी निषाद) होता है ।

अथ स्वर प्रस्तारः—

सरिगपधनिससनिध पपगगगरिस । गगगगरिसनिसरिसनिसधनिसरि रिगरिसा । पगपगरिरिगप पगगगरिसरिसनिसधनिसध निसारिसानिसधनि धपधप. गगगगरिरिरिरि सनिसनिसस्पा ।

इति मेघनादः । प्रातः कालीयः । २७ ।

यह मेघनाद प्रातःकाल गाया जाता है । २७ ।

षड्जपूर्वा तु तौडी स्यात्यत्रोक्तौ कोमलौ रिधौ ।
न्यासः स्याद्धैवतस्तस्यां गांधारांशेन शोभिता ॥
मेनारोहे तु पन्यासा पञ्चमेनोभयोरपि ॥ ३८६ ॥

तोड़ी रागिनी षड्ज स्वर पूर्व मे है, जिसके उस शुद्ध मध्या मूर्च्छना से उत्पन्न होती है । इसमें ऋषभ-धैवत दोनों स्वर कोमल कहे गए हैं । धैवत स्वर पर उसका न्यास है और गान्धार अंश है (षड्ज ग्रह) तथा सम्पूर्ण जाति है । मध्यम आरोही में

वर्जित करके 'षाडव-सम्पूर्ण' भी होती है। तो उसका पञ्चम न्यास होता है और पञ्चम शुद्ध कोमल दोनों ही लगते हैं।

मध्य तीव्रतमोऽन्यूनो मृदुरप इति पण्डितैः।

अर्थात्—तीव्रतम मध्यम को ही (एक श्रुति अग्रस्थ यानी पञ्चम की 'क्षिति' नामक श्रुति पर) पण्डितों ने 'कोमल-पञ्चम' बताया है।

सरिगमपधनिसनिधपमपमगगारिस। रिसनिसनिधधनिसरिगरिसरिसनिसानिया। गगगम्मगरिगरिसरिरिसनिधनरिगमरधधपमगमगारिसानिसरिरिसनिधाधधनिस।

इति तोड़ी। प्रथम प्रहरोत्तरम्। २८। दिन के पहिले प्रहर के उत्तर भाग में।

छायातोड़ी तथैव स्यान्निषाभ्यां रहिता यदा॥ ३८७॥

उसी प्रकार (ऊपर बताये स्वरगमन पर) निषाद तथा पञ्चम दोनों स्वरों के वर्जित होने पर छाया तोड़ी औडुव २ जाति की होती है। इसका स्वर प्रस्तार ग्रन्थ कार ने पृथक नहीं दिया है। नि० प० वर्जित कर ऊपर का ही जानो।

इति छाया तोड़ी। प्रातःकालीया। २९।

मार्गतोड्यां पहीनायां कोमलाख्यौ रिधौ स्मृतौ।
सन्यासो मध्यमांशः स्यान्मूर्च्छना तत्र धादिका॥ ३८८॥

मार्गी तोड़ी पञ्चम वर्जित षाडव २ वर्ग की होती है। इसमें ऋषभ और धैवत दोनों कोमल बताये हैं। षड्ज पर न्यास, तथा मध्यम स्वर अंश (सं तार षड्ज) तथा धैवत स्वर आदि वाली 'पौरवी' मूर्च्छना होती है। धैवत ग्रह है।

धनिसरिगमधनिसरिसनिसनिधनिधधनिधमधनिसरिसनिसनिधनिधम। सरिगमगरिगरिगरिसा। धनिसरिसनिसधनिसरिसनिसधनिसरिसनिधनिसमसरिगमगरिसरिसनिसस्सा।

इति मार्ग तोड़ी। प्रातःकालीया। ३०। सवेरे गाई जाती है।

अब 'घण्टाराग' का लक्षण कहते हैं—

घण्टारागो ग-पूर्वः स्यात्र्यन्तः कोमलधैवतः॥ ३८९॥

अर्थात्—घण्टा राग में धैवत कोमल लगता है। (शेष स्वर शुद्ध हैं) गान्धार इसका ग्रह है। और 'हरिणाश्वा' मूर्च्छना से उत्पन्न होता है। निषाद पर इसका न्यास है। एवं सम्पूर्ण वर्ग है। शैव सङ्गीत में—

घण्टारवो धग्रहांशो मन्द्रगान्धारमेदुरः।
नितारो भिन्नषड्जाङ्ग मध्यमन्यासमण्डितः॥ (शै० सं०)

अर्थात्—घण्टारव (घण्टे की आवाज़) राग में धैवत ग्रह तथा अंश (वादी, सम्वादी ऋषभ) होता है। मन्द्र सप्तक का गान्धार इसमें कोमल लगता है। शेष स्वर शुद्ध, मध्यम स्वर न्यास से सजा रहता है। एवं तार सप्तक के निषाद तक इसकी गति है। 'भिन्न षड्ज' भाषा अथवा मेल का इसका अङ्ग है। यानी 'भिन्न षड्ज, मेल से यह उत्पन्न होता है। और सम्पूर्ण जाति है। यह राग भी इस समय अप्रचलित ही है। अतः सर्वत्र ग्रन्थों में नहीं मिलता।

अथ स्वर प्रस्तारः—गमपधनिस। रिसनिसनिधपमगमपधरम गमपमगरिसस रिससनि। गगगमपधपमगरिससरिसनि। गमपधनिसनिधपमपमपमगमगरिगरिसनि। पधनिसारिसनिसस्सा ।

इतिघण्टारागः। तृतीयप्रहरोत्तरम् । ३१ ।

यह घण्टा राग, दिन के तीसरे प्रहर के उत्तर भाग में यानी चौथे प्रहर के प्रारम्भ में (४ से ६ बजे तक) गाया जाता है। ३१। (सायंकाल का राग) हुआ, कहते हैं, प्रातःकाल 'प्रभात' राग और सायंकाल को जब मन्दिरों में घण्टे बजते थे (आरती के समय) यह गाया जाता था। अतएव इसका नाम घण्टा राग पड़गया! कुछ भी हो किन्तु इसके पुरातत्व की सत्ता में कोई भी आपत्ति नहीं। क्योंकि सर्व प्राचीन शैव सगीत मे भी यह मिला है।

रिकोमला गतीव्राद्या कोमलीकृतधैवता ।
निना तीव्रेण संयुक्ता वराटी धैवतादिका ॥
मतीव्रतरसम्पन्नान्दोलनेन मनोहरा ॥ ३९० ॥

वराटी रागिनी में ऋषभ धैवत दोनों कोमल स्वर होते हैं। तथा गान्धार निषाद दोनों तीव्र (शुद्ध) लगते हैं। मध्यम इसमें तीव्रतर लगाया जाता है। और उसपर आन्दोलन (गमक) होता है। जिससे यह मनोहर हो जाती है। मूर्च्छना वही धैवताद्या 'पौरवी' होती है। भरतमत मे इसे भैरव की तीसरी रागिनी 'वैराटी' मानी है। वास्तव में 'विराट' नगर या देश की रागिनी 'वराटी' वैराटी का ही अपभ्रन्श है। और उसके 'वैरारी, वरारी, बिहारी, वरारी' आदि नाम हैं।

धाधानीसारिगमापामपमारिस। धधनीसरिगमगरिगरिस। धनिसरिगरिसनि धपमधपमगाम। पागमगरिसाधधानिसारिगमगरिसरिसरिसा। निसरिसनिसनिसनिध धपमपममगरिस। धाधानीसा।

इति वराटिका। द्वितीयप्रहरोत्तरोत्तरम्। ३२। दिनके दूसरे प्रहर के उत्तरोत्तर (आगे २) गाते हैं। यानी तीसरे प्रहर तक। १ बजे से ३ बजे तक।

अथ शुद्धवराट्यां तु रिगौ कोमलपूर्वकौ ।
गस्तुतीव्रतरो धः स्यात्कोमलस्तीव्रनिस्वरः ।
धैवतोद्ग्राहयुक्तायां निमौ न्यासांशकौ स्मृतौ ॥ ३९१ ॥

अब शुद्ध वराटी (वैराटी) के सम्बन्ध में बताते हैं। इसमें ऋषभ और गान्धार दोनों 'कोमल पूर्वक' यानी 'पूर्व कोमल' होते हैं। यथा—

स्वरः पञ्चान्तिवृत्तश्चेत्कोमलादिभिरीरितः ।

अर्थात्—अपनी नियमित श्रुति संख्या से पीछे लौटता हुआ स्वर 'कोमल' आदि (पूर्व) संज्ञक कहा जाता है। वह दो प्रकार के होते हैं।

एक श्रुतिपरित्यागात्स्वरः कोमलसंज्ञकः ।
श्रुतिद्वयपरित्यागात्पूर्वशब्देन मन्यते ॥

एक श्रुति पीछे लौटने या छोड़ने पर वह स्वर 'कोमल' संज्ञा वाला होता है, तथा २ श्रुतियों के छोड़ने (पीछे हटने) पर वही 'पूर्व कोमल' माना जाता है। इस वराटी में शुद्ध ऋषभ 'त्रिश्रुतिक' तो १ श्रुति छोड़ने पर २ श्रुतियों का 'कोमल-ऋषभ' तथा २ श्रुतियाँ छोड़ने पर केवल १ श्रुति का 'पूर्व कोमल' ऋषभ, वही इसमें होना चाहिए। अब गान्धार में 'ह्रे ह्रे निषादगान्धारौ' २ श्रुतियाँ होती हैं, वह 'शुद्ध' या तीव्र गान्धार तथा १ श्रुतिका 'कोमल' गान्धार और वही दोनों श्रुतियां छोड़ देने पर 'पूर्वगान्धार' यानी 'शुद्ध ऋषभ' है क्योंकि—

'ऋषभः शुद्ध एवासौ पूर्वगान्धार इष्यते ।'

अर्थात्—शुद्ध ऋषभ ही 'पूर्व गान्धार' कहलाता है। अतः प्रथम त्रिश्रुतिक शुद्ध तथा 'द्विश्रुतिक' कोमल एवं 'एक श्रुतिक' 'पूर्वगती' एवं श्रुति द्वयविहीन गान्धार होना चाहिए। और गान्धार इसमें तीव्रतर यानी 'अन्तर्गान्धार' अथवा मध्यम की द्वितीय श्रुति 'प्रसारिणी' पर विद्यमान तथा धैवत कोमल और निषाद तीव्र (शुद्ध) यह स्वर होने चाहिए। धैवत स्वर पर ही इसका उद्ग्राह (गीतारम्भ) है।

'गीतमुद्ग्राह्यते येन स उद्ग्राहः प्रकीर्त्तितः' (रत्नाकरे)

निषाद स्वर पर न्यास (तोड़) एवं मध्यम (शुद्ध) अंश (वादी, सं० तार षड्ज) कहा गया है।

धधनिसरिगमपमगरिसनीधपनीसा । रिगगरिसरिसरिगमगरिसारिससरिस-सरिसनिसरिगरिमसरिसरिसनिधनिसधनिसरिसनिसनि । धनिधपमधपमपम। गग-गरिसनिधधनिधधनिसस्स ।

इति शुद्धवराटी। द्वितीयप्रहरोत्तरम् । ३३ ।
यह दिन के दूसरे प्रहर के उत्तर भाग में गाई जाती है।

रिधौ च कोमलौ प्रोक्तौ यत्र तीव्रतरश्च मः ।
उद्ग्राहकौ पधौ स्यातां वराटीतोडिका च सा ॥ ३९२ ॥

जिसमें ऋषभ और धैवत दोनों कोमल हों। तथा मध्यम तीव्रतर—

स्वरोऽग्रिमश्रुतीर्याति तदा तीव्रतरो भवेत् ।

अर्थात्—आगे की दो या पञ्चम की दूसरी श्रुति 'रक्ता' पर बोलने वाला जिसे 'अन्तर्मध्यम' भी कहते हैं (कोमल पञ्चम) हो। जिसमें उद्ग्राह (ग्रह) स्वर पञ्चम अथवा धैवत हो, तो वह 'वराटी तोडिका' या 'तोड़ी वराटी' रागिनी होती है।

यहाँ भरत के मत पर 'तोडी' या 'तोटिका' मालकोश की दूसरी रागिनी तथा 'वैराटी' भैरव की रागिनी इन दोनों का मिश्रित रागिनी जाननी चाहिये।

धधनिसगमपधधपमगपममगगगरिस । गमपधधपगमपधनिधनिसरिसनिसनिसनिधनिधपमगमधपधनिधनिसामागरिसन्निधनिसरिसनिसनिधपमगमपमगमगरिसनिधनिसस्सा।

इति तोड़ी वराटी। द्वितीय प्रहरोत्तरम्। ३४।

यह भी दिन के दूसरे प्रहर के उपरान्त गाई जाती है।

अथ नागवराख्यां तु मस्तु तीव्रतरो भवेत्।
कोमलो धैवतः प्रोक्तो गधावुद्ग्राहकौ स्मृतौ॥ ३९३॥

अब 'नाग वराटी' के विषय में कहते हैं—इसमें मध्यम तीव्रतर लगता है। धैवत कोमल कहा है, (शेष स्वर शुद्ध, जाति सम्पूर्ण) उद्ग्राह (ग्रह) गान्धार पर होता है। कहीं-कहीं धैवत पर भी, यानी अन्तरा (आरोही-अवरोही) तथा सञ्चारी धैवत से उठते हैं।

गमपधनिसरिसनिधपमगमपमगगरिस । धधनिसनिसनिसरिगरिगनिसनिधपमगमपमगमगमगरिसधनिसरिसा । धधनिधनिसगरिसरिसनिधपमगमगरिसनिधनिसस्सा।

इति नागवराटी। द्वितीयप्रहरोत्तरम्। ३५।

दिन के द्वितीय प्रहरोपरान्त।

पुन्नागाख्यवराख्यान्तु निषादस्तीव्रसंज्ञकः।
मस्तु तीव्रतरः प्रोक्तो ग-धावुद्ग्राहकौ स्मृतौ॥ ३९४॥

पुन्नागवराटी' में तो- निषाद तीव्र (शुद्ध) होता है। और मध्यम तीव्रतर कहा है। गान्धार धैवत (पूर्ववत्) दोनों उद्ग्राही हैं।

गमपधनिधनिसरिसनिधपमगमपगरिल। धधनिसरिसनिधपमगमपमपमगरिस। धधनिसरिसगरिसरिसनिस । धनिसरिसनिधपमपपमगरिसागमपधनिधमगरिस । निसगरिसनिसा। धनिसरिगनिसस्सा।

इति पुन्नागवराटी। द्वितीय प्रहरोत्तरम्। ३६। पूर्वोक्त समय।

मतीव्रतरसंयुक्ता प्रतापोपपदान्विता ।
वराटी च निना युक्ता तीव्रसंज्ञेन गादिका ॥ ३९५ ॥

प्रताप वराटी में मध्यम तीव्रतर और निषाद तीव्र (शेष शुद्ध) गान्धार ग्रह अथवा 'हरिणाश्वा' मूर्च्छना होती है।

गमपधनिसरिसनिसनि धपमपमगमपमपम्मागरिसानिसगरिसरिसनिसगमपध-पमगगरिसनिसनिसगमप धनिसरिगरिस निसनिधपमपमगमपमपम्मागरिस। निस-गरिसरिसनिस। गमपध पमगगगरिसनिसनिसगमपधनिसरिगरिसनिनिधपपधधपम-गमपगमगरिससरिगमपपधधपमपमगगगरिसरिसनिसस्सा ।

इति प्रतापवराटी। द्वितीय प्रहरोत्तरम्। ३७। पू० स०।

अथ शोकवराट्यान्तु रिगौ कोमल-पूर्वकौ ।
मश्च तीव्रतरः प्रोक्तः कोमलो धैवतः स्मृतः ।
न्यासांशौ च सनी यत्र मूर्च्छना च प-पूर्विका ॥ ३९६ ॥

अब 'शोक वराटी' का लक्षण बनाते हैं—इसमें ऋषभ और गान्धार दोनों कोमल पूर्वक अर्थात्—(पहिले बताये) पूर्व कोमल होते हैं। मध्यम तीव्रतर कहा गया है। और धैवत कोमल बताया है। षड्ज स्वर पर इस का न्यास, तथा-निषाद अन्श और पञ्चम स्वर पूर्वक 'शुद्ध षड्जा' मूर्च्छना होती है। (शेष स्वर शुद्ध, सम्पूर्ण जाति)

पधनिसरिगमपधपमगरिसनीसा। सरिगमपधनिसनिधपमगगरिरिगरिसरिस-निधनिधनिसरिसनिस । सरिगरिसनिसनि रिगनिरिसरिरिसनिमधनिनिसनिस । गरिसरिसनिस। सरिगमपमगरिसरिसरिसनिधधनिसरिसनिसस्सा।

इति शोकवराटी। द्वितीयप्रहरोत्तरम्। ३८। पू० स०।

कल्याणोपपदा या सा वराली गादिमूर्च्छना ।
कल्याणमेलसम्भूता मपांशन्यासका स्मृता ॥ ३९७ ॥

कल्याण उप (पूर्व) या उपरि (ऊपर) का पद (शब्द) है जिसमें, वह वराली यानी 'कल्याण वराली' गान्धारादि (हरिणाश्वा) मूर्च्छना से उत्पन्न होती है अथवा—'अश्वक्रान्ता' मूर्च्छना इसमें होती है। पहिले बता चुके हैं—'वराली' भी 'वरारी' या 'वराटी' के समान 'वैराटी' का ही अपभ्रन्श है तो 'कल्याण-वैराटी' एक मिश्रित रागिनी होती में। किसी २ ग्रन्थ में 'वराली' स्वतः एक रागिनी है, तो किसी में 'वरारी' या 'वैराटी' जैसे रा० वि० में 'वसन्त वराटी' यह 'कल्याण' मेल (थाट) से उत्पन्न होती है, वह आधुनिक 'कल्याण' या 'कल्याणी' मेल नहीं।

इनका कल्याण मेल आगे के तीसरे श्लोक में देखिये। पञ्चम पर इसका न्यास, तथा-मध्यम स्वर अन्श (वा० सं० तार षड्ज) कहा गया है। बस! यहां तक इन्होंने वराटियों के ही भेद या किस्में बताई हैं।

गमपधनिसरिगरिगरिसनिधधधनिसनीसा । नीधापामापमापपमग। गमपमगगारिस । नीधधनीसा । सरिगमपमधपममपपमगमगमारि सनीधधनीसरिसनीसगरिसधनीसधनीसरिसनीसस्सा।

इति कल्याण वराली। तृतीय प्रहरोत्तरम्। ३६। दिन के तीसरे प्रहर के उत्तर भाग में गाई जाती है।

खम्बावती पहीना स्यात्कोमलीकृतधैवता।
गान्धारमूर्च्छनायुक्ता रिणा त्यक्तावरोहिका ॥ ३६८ ॥

अर्थात्—खम्बावती (रागिनी) पञ्चम वर्जित होती है। और अवरोही में ऋषभ स्वर नहीं लगता है। तो 'षाडव-औडुव' वर्ग होता है। धैवत इसमें कोमल लगता है। और गान्धार-मूर्च्छना (हरिणाश्वा) होती है। अतः गान्धार ही ग्रह है। आ०-स रि ग म ध नि सं। अव-सं नि ध म ग स।

अथ स्वर प्रस्तारः—

गमधनिसरिसनिधगगमगसा । गमधनिधमधनिसरिसनिसनिधमगगमगगारिसनिनिससगगमगमनिधमगगमगगारिस। रिरिसनिनिसस्सा।

इति खम्बावती। तृतीय प्रहरोत्तरम्। ४०। पू० स०।

धकोमला नितीव्राद्या षड्जपूर्वकमूर्च्छना।
धगयोः कम्पसंयुक्ता नपान्शाभीरिका मता ॥
आरोहणेऽवरोहेऽपि क्वचिन्मध्यमवर्जिता ॥ ३६६ ॥

आभीरिका रागिनी (आधुनिक गायक इसे ही 'अहीर-भैरव' कहते हैं) षड्ज पूर्वक (शुद्ध मध्या) मूर्च्छना से उत्पन्न होती है। इसमें धैवत कोमल, एवं निषाद तीव्र (शुद्ध) लगता है और धैवत-गान्धार स्वरों पर कम्प (मीड़) या स्वर कम्पन होता है। षड्ज ही इसका आदि स्वर (ग्रह) है। तथा वादी, पञ्चम सम्वादी है। सम्पूर्ण जाति और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। इस प्रकार आभीरी मानी जाती है। कहीं-कहीं या किसी मत में आरोही, अवरोही दोनों में मध्यम वर्जित होता है, तो 'षाडव २' वर्ग में मानी जाती है।

स रि ग म प ध नि सं। सं नि ध प म ग रि स।

इस समय 'अहीरी' ऋषभ, निषाद, कोमल शेष स्वर शुद्ध सम्पूर्ण २ गाई जाती है। इसका पूर्वाङ्ग भैरव और उत्तराङ्ग काफी के समान होता है।

सरिगममपधनिससा । निधापधधधपममपामपमगारीरिसनीस ।

(कम्पापन्यासत्वं सर्वत्रापि ।) अब अपन्यास न्यास के पूर्व स्वर (तोड़) के पहिले हर जगह स्वर कम्पन होगा ।

पनिसगगारिसरिरिसनिसगमप धसपगारीसनीससससस पपमगरीसनिससस ।

सरिगमपामपनिधापधधपमपमगारी सरिरिस निसस्स सरिगमपधधपमपमगारिस-रिसनिसस्सा ।

इत्याभीरिका । तृतीयप्रहरोत्तरम् ॥ ४१ ॥

यह आभीरी, पूर्वोक्त स० ।

मस्तु तीव्रतरौ यस्मिन्गनी तीव्रावितीरितौ ।
गान्धारोद्ग्राहकल्याणे नारोहे तिष्ठतो मनी ॥ ४०० ॥

कल्याण (मेल) राग में तीव्रतर मध्यम, और गान्धार-निषाद दोनों तीव्र बताए हैं । गान्धार स्वर पर उद्ग्राह (ग्रह) है । (हरिपाश्वा सू०) एवं आरोही में मध्यम, निषाद वर्जित हैं । अतः 'औडुव सम्पूर्ण' जाति होती है ।

स रि ग प ध सं । सं नि ध प म ग रि स ।

नपधसरिगरिसनिधपधनिधपपमगपमगगरिसरिगमरिगमसमनिधापधप प पगपमगपमगगारिस । ससससनिधपगप धसरिगपमगगारिस । सरिगपपगधसनिरिग-रिससनिधपसनिधपधपमगगपमगगरिससा । निधपधससस्सा ।

इति कल्याणः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ४२ । पू० स०

रिकोमला गतीव्रा या मतीव्रतरसंयुता ।
धकोमला नितीव्रा च ख्याता रामकरीति सा ।
आरोहे म-नि-वर्जा स्यत्पांशा धैवतमूर्च्छना ॥ ४०१ ॥

रामकरी रागिनी का स्वर लक्षण बता रहे हैं । भरतमत में हिन्दोल राग की यह पहिली रागिनी मानी है । रत्नाकर में 'रामकरी, मधुकरी, देवकरी, गौण्डकरी (गुण करी) इत्यादि क्रियात्मक १२ रागिनियों का उल्लेख है । अस्तु ।

इसमें ऋषभ तथा धैवत कोमल, मध्यम-तीव्रतर, गान्धार निषाद तीव्र, आरोही में मध्यम-निषाद वर्जित 'औडुव सम्पूर्ण' पञ्चम वादी अंश पञ्चम, सम्वादी षड्ज, धैवत ग्रह, तथा धैवत स्वरादि 'उत्तरायता' अथवा 'पौरवी' मूर्च्छना होती है ।

आधुनिक गायक इसे भैरव थाट में गाते हैं, कोई २ मध्यम चढ़ी भी लगाते हैं, पता नहीं वे भैरव मेल में चढ़ी मध्यम कहां से ले आते हैं ?

यथा—'सग मप ध़ प मप धनि़ धप गम रिस' इस प्रकार भी कोई २ दोनों मध्यम और निषाद कोमल लगाकर भी भैरव मेल ही बनाते हैं। इसे यदि पूर्वी मेल भी कहें तो निषाद कोमल कैसे हुआ ? यह तो १० में से एक भी थाट नहीं बनता ? हारमोनियम का नोटेशन देते हैं ? भला मध्यम तीव्रतर होना चाहिये सो उसमें कहां से आयेगा ? वाहरे ! बीसवीं सदी का सङ्गीत !

धसरिगपमगारिसमरिगपगपधमगरिसमनिधपधापमगगपमगगारि, समनिधपगपधसमरिसरिगपपमगगारिसमरिगपाधधपगपपगपगगारि, सासरिरिसरिगसरिगपगपधसगरिसमनिधपधापमगरिस। सरिमरिसमा।

इति रामकरी प्रातःकालीया ॥ ४३ ॥

सवेरे गाई जाती है।

अतितीव्रतमो गः स्यान्मस्तु तीव्रतरो मतः।
धस्तु तीव्रतरो निः स्यात्तीव्रः षड्जादिमूर्च्छने।
सन्यासे मध्यमांशे च रागे सारङ्गसंज्ञके ॥ ४०२ ॥

सारङ्ग नामक राग में गान्धार अति तीव्रतम माना गया है और धैवत भी तीव्रतर यानी शुद्ध निषाद है।

इसमें षड्ज स्वर आदि 'शुद्ध मध्या' या 'उत्तरा मन्द्रा' मूर्च्छना होती है। षड्ज ही इसका न्यास (तथा ग्रह) भ है। मध्यम स्वर अंश (वादी, सम्वादी तार षड्ज) तथा जाति सम्पूर्ण है।

सरिगमपधनिस। सनिधपमगरिसा। सरिगमपपधपपमगमपमगमगरिस। सरिगरिसा।

इति सारङ्गः। द्वितीयप्रहरोत्तरम् ॥ ४४ ॥ पू० स०।

रिधौ तु कोमलौ यत्र गनी तीव्रौ च मालवे।
षड्जावरोहणे [illegible] गरिन्यासांशशोभिते ॥ ४०३ ॥

मालव राग में ऋषभ धैवत दोनों कोमल होते हैं। तथा गान्धार निषाद दोनों तीव्र (शुद्ध) लगते हैं अवरोहण युक्त षड्ज स्वर पूर्ण इसका उद्ग्राह (ग्रह) होता है। यानी तार षड्ज गीतारम्भ स्वर है। षड्ज पर ही न्यास तथा ऋषभ अंश में सुशोभित होता है। (ऋषभ वादी धैवत सम्वादी) मालवः का अपभ्रंश 'मालवा' है

और उसका 'मारवा' आधुनिक 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' का दश में से ६ वाँ थाट राग है। अन्तर इतना है कि उसमें केवल ऋषभ कोमल, मध्यम चढ़ी लगती है। किन्तु इसमें रि. ध. कोमल, मध्यम शुद्ध, वादी दोनो ही का ऋषभ है। रागचन्द्रिका में इसे 'मारु' संज्ञादी है, अन्य संस्कृत ग्रन्थों में सर्वत्र-'मालव'। इस समय भी इसके २ प्रकार प्रचलित हैं, १ सम्पूर्ण, २ पञ्चम-वर्जित षाडव, बहुतों ने श्री राग की रागिनी 'मालवी' को मारु माना है। भरत मत में 'मालव' को श्री का द्वितीय पुत्र माना है। कई एक तो धैवत वादी, गान्धार सम्वादी मानते हैं, तथा षाडव वर्ग में मध्यम विवादी। 'संगीत रत्नाकर' 'शैव संगीत' आदि ग्रन्थों के अनुसार आधुनिक 'मालकोश' कोई राग ही नहीं है, अपितु-'मालव-कैशिक' राग है, सम्भव है उसीका अपभ्रन्श 'मालकोश' है।

सासनिधपधनीधपमपगमारिग्स। (न्यपकर्षणम्) अर्थात्—अब निषाद का 'अपकर्षण' प्रस्तुत स्वरों पर खिंचाव होगा। (गमक)

ससपाधनीधपमपपमगमारिपामप गमारिरिरिरिरिरीस। पमगमरिससरिगमप धनीधपमपपमगमपमगमारिरिरिसाधनीधपमपपमगमासपामपागमारिरिसनीसानीसानी धपमपगमापमगमारिरिसनीसस्सा।

इति मालवः। तृतीयप्रहरोत्तरम्। ४५।

दिनके तीसरे प्रहर के उत्तर में॥

रिधकोमलसंयुक्ता ग-निवर्जा गुणक्रिया।
धैवतोद्ग्राहसंयुक्ता क्वचिद्गान्धारसंयुता॥ ४०४॥

गुणक्रिया अथवा—गुणकरी ऋषभ—धैवत कोमल के साथ होती है। (शेष स्वर शुद्ध लगते हैं) गान्धार निषाद वर्जित स्वर हैं। अतः जाति 'औडुव २' है। धैवत स्वर से इसका उद्ग्राह (प्रारम्भ) होता है। तथा—कहीं २ गान्धार के साथ (ग्रह) माना गया है।

निम्ब भूपाल ने इसे देशी माना है और मार्गी में शुद्ध मेलान्तर्गत (प्रचलित बिलावल) स्वरों में ऋषभ धैवत वर्जित करके औडुव बनाया है, तथा धैवत को विवाद) रके लगाने का आदेश दिया है।

पारिजात की गुणकरी आधुनिक भैरव मेल में है और यही इस समय प्रचलित भी है।

धससाधपमपा। पममारिसा। सधधपमपपममारिस। सरिगगगमगरिस। रिसससससधससससधपममममारिस। धारिरिरिरिसधससधपमपाधमारिस। सरिगमगरिसा। साधरमपपममामममसारिसा। ससरिसमापाममारिसरिरिरिसस्सा। इति गुणकरी। प्रथमप्रहरोत्तरम्। ४६।

दिन के प्रथम प्रहर के उत्तर (बाद) में

उपरोक्त स्वर प्रस्तार में अहोबल जी ने गान्धार का कई स्थलों पर प्रयोग किया है, यद्यपि गुणकरी का यह वर्जित स्वर है, 'प्रस्तार' आलाप का ही एक रूपान्तर है! इसे आलाप से भी विलम्बित लय में प्रयुक्त करने को कोहलाचार्य्य ने कहा है—

'आलापनस्तु प्रस्तारो विलम्बेन विधीयते।'

यद्यपि रागों में वर्जित स्वर को विवादी रूप में प्रयुक्त होने की ऋषियों ने आज्ञा दी है तथापि वह राग का शत्रु ही माना जाता है। भरत मुनि ने भी विवादी प्रयोग लिखा है, किन्तु वह द्रुतलयोक्त तानों में ही। राग के चतुष्पादों में या विलम्बित लय में नहीं। यथा—

'कणस्पर्शे द्रुते युक्तो रक्तिघ्नश्च न वर्जितः'

अर्थात्—द्रुतलय में वर्जित स्वर का प्रयोग या कणस्पर्श युक्त होता है और वह रक्तिघ्न (राग-सत्ता प्रहारक) नहीं माना जाता।

स्वर्गीय श्री विष्णुदिगम्बर द्वारा स्थापित इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के 'प्रयाग-गान्धर्व महाविद्यालय' के सञ्चालकों का भी यही सिद्धान्त है, उन्होंने कहीं से एक श्लोक उद्धृत करते हुए लिखा है—

'विवादी तानक्रियात्मकः द्रुतगीतो न रक्तिहरः'

अर्थात्—विवादी स्वर तानों की क्रिया के रूप में जल्दी गाने पर या द्रुतलय में लगाने पर रक्ति हारक नहीं होता?' अस्तु।

पञ्चमोद्ग्राहसम्पन्ने धहीने ककुभे पुनः।
तीव्रगान्धाररहित्यमारोहे चावदन्बुधाः ॥ ४०५ ॥

ककुभ राग में पञ्चम स्वर ग्रह होता है। धैवत स्वर इसका वर्जित है। तथा आरोही में तीव्र गान्धार नहीं लगता. ऐसा पण्डितों ने कहा है। यह रत्नाकर में एक विभाषा (उपरेल) और भरत मत में ककुभ (कुकुम्बिका) मालकोश की पांचवीं रागिनी मानी है। यह षाडुव औडुव है। स्वर सब शुद्ध हैं।

पनिसरिमागरिस। पनिसरिसरिनिसपपनिसरिमपमपनिपमपमागरिगरिस। पनिसरिमनिसरिममपपनिनिसरिमागरिमपमागरिगरिस। निसरिसारिमारिसनिपमपनिस। निसरिमरिसमरिसनिस। पपनिपमरिमरिसममरिमरिगरिगरिसापनिसरिगरिस। निसरिगरिसनिसस्सा।

इति ककुभः। प्रातःकालीयः। ४७। सवेरे के समय।

शंकराभरणे प्रोक्तौ ग-नी तीव्रौ तु सादिमे।
गन्यासे मध्यमान्शे च हालूकम्पसुशोभिते ॥ ४०६ ॥

शंकराभरणराग में गान्धार-निषाद दोनों तीव्र कहे हैं। एवं षड्ज पर ग्रह

होता है, तथा गान्धार पर न्यास, मध्यम स्वर अंश (वादी, संवादी तार षड्ज) और यह ढालू कम्प-के द्वारा सुशोभित होता है।

रत्नाकर में स्वर कम्पन गमक (मीड़) के १५ प्रकार के भेद बताये हैं। उनमें से अतिरिक्त मिश्रित गमकें हैं उन्हीं में एक 'स्थायवाग' गमक है, जिसका एक भेद 'ढाल या ढालू' है जो रागस्थ शब्द के वाद्ययन्त्र द्वारा वहाने में या लुढ़काने में अथवा वाद्य शब्द की छाया के स्वर को उल्लंघन करने में आता है। यथा—

ते च शब्दस्य ढालस्य लवन्या वहनेरपि।
वाद्यशब्दस्य यन्त्रस्य च्छायायाः स्वरलङ्घितः॥

(अध्याय ३ श्लोक ९७)

और भी— ढालो मुक्ताफलस्येव चलनं लुण्ठनात्मकम्।
स एषु ते स्युर्ढालस्य नमन त्वतिकोमलम्॥

(अध्याय ३ श्लोक ११०)

अर्थात्—मुक्ताफल (मोती) की भांति लुण्ठनात्मक (लुढ़कने वाला) यन्त्रस्थ (वीणा के) शब्द परिचालन को 'ढाल' कहते हैं। वह 'ढाल' जिन (गमकों) में होते हैं उनका अति कोमल नमन-झुकाव या मोड़ (मुर्की) हुआ करता है। 'वादन भेद' अनेकों प्रकार के बताये हैं, जो कानों को वास्तविक सङ्गीत-वाद्य का सच्चा आनन्द देने वाले हैं। उनका सम्पूर्ण अनुभव और ज्ञान तो 'रत्नाकर' के पठन मनन करने पर ही हो सकेगा।

यह ढालुकम्प खासकर 'शङ्कराभरण' राग में 'हृदय प्रकाश' ग्रन्थ में बताया है—'शंकराभरणो गादिः ढालुकंपमनोहरः।' इति।

यह 'धीर शंकराभरण' दक्षिणी मेल अथवा उत्तरभारतीय 'वेलावली' मेल से उत्पन्न होता है। और इसकी पकड़ 'हृदय कौतुक' ग्रन्थ में निम्न बताई है।

गमौ पनी सनिधपा मगौ रिसौ परिस च।
शंकराभरणो रागः सम्पूर्णो कथितो बुधैः॥

अर्थ स्पष्ट है—भरतमत में इसे मेघ का द्वितीय पुत्र राग शुद्ध सम्पूर्ण ग० नि० वादी सम्वादी बताया है और भी मेरे अवलोकन में इसके ६ भेद आए हैं।

सरिगमपधनिसरिगमपमगरिससनिधपधनिससनिमपमगरिगमपम गरिससनि धपधनिस॥

इति शङ्कराभरणः। प्रातःकालीयः। ४८। सवेरे।

षडहंसः सदा ज्ञेयः शङ्कराभरणस्वरैः।
षड्जादिः पञ्चमांशः स्यान्न्यासोऽपि पञ्चमस्वरः।
अवरोहे गहीनः स्यादारोहे तु धवर्जितः॥ ४०७॥

बड़हंस (वरहंस) राग को सदैव (आरोहावरोहादि में) शंकराभरण के स्वरों जैसा ही जानना चाहिये। इसका ग्रह षड्ज, तथा न्यास पञ्चम, अंश भी पञ्चम (वादी सम्वादी षड्ज) होता है। यह आरोही में धैवत वर्जित और अवरोही में गान्धार वर्जित दोनों ओर से 'षाडव २' होता है। इसका शुद्ध मेल (विलावल) है। भरतमत में 'मालव कैशिक' (मालकोश) का पञ्चम पुत्ररूप वक्र सम्पूर्ण आरोही में धैवत, अवरोही में गान्धार वर्जित वादी षड्ज सम्वादी पञ्चम 'वरहंस' माना है।

सरिगमपनिससनिधपमरिगमरिस। समसनिधपपनिसरिगमपमसरिगमपधप-मपधपमपमरिपम। रिगमरिसरिसमनिधरममपममप। पपमरिगमरिससरिगमपासरि-पारिपाधपमपधपमपमरिपमरिगमरिग्स। रिससनिधपमममममप। पमरिगमारिस। सरिगमपधपममरिगमारिस। पमपमपमरिगमरिसरिसरिसनीरुस्सा।

इति बडहंसा। तृतीयप्रहरोत्तरम्। ४६। दिन के तीसरे प्रहर के उत्तरार्ध में।

वेलावल्यां गनी तीव्रौ मूर्च्छना चाभिरुद्गता।
आरोहे मनिहीनायामंशः षड्जो बुधैः स्मृतः॥
अवरोहे गवर्जायां क्वचिद्गान्धारमूर्च्छना॥ ४०८॥

वेलावली रागिनी में गान्धार-निषाद दोनों तीव्र (शुद्ध) लगते हैं। (प्रायः शुद्ध मेल के रागों में ही गान्धार निषाद शुद्ध बताने की इस ग्रन्थ की प्रथा है) और इसमें षड्ज ग्राम की ऋषभ स्वरादा अभिरुद्गता मूर्च्छना होती है। इसकी आरोही में मध्यम-निषाद दोनों वर्जित स्वर हैं। तथा अवरोही में गान्धार वर्जित है। अतः यह वक्र सम्पूर्ण, या एक प्रकार से 'ओडुव-षाडव' होता है। यथा-आरोही 'स रि ग प ध सं। अ०-सं नि ध प म रि स।' अतः इसका पूर्वाङ्ग (आरोह) भूपाली का होजाता है। इसका षड्ज स्वर अंश (वादी, सम्वादी पञ्चम) पण्डितों ने बताया है। उपरोक्त मूर्च्छना से ऋषभ-ग्रह होता है। कहीं पर गान्धार की 'हरिणाश्वा' मूर्च्छना लीजाती है। तो गान्धार ही ग्रह होता है। श्री० भाव भट्ट जी ने अपने 'अनूप सङ्गीत रत्नाकर' में (जो सङ्गीतरत्नाकर, राग विबोध, पारिजात, दर्पण, आदि के बाद का लिखा हुआ है) १६ प्रकार की विलावलें लिखी हैं। वस्तुतः शुद्ध मेल के रागों को जो बिलावल से मिलते जुलते हैं, जैसे अल्हैया, देवगिरी, सर्पदा, ककुभ, नट, हंस ध्वनि, यमनी, शुक्ल, आदि को लोग 'बिलावल-संज्ञा' ही देते हैं। अतः भैरव, सारङ्ग, कान्हड़े की भांति विलावल का भी एक वर्ग जानना चाहिये।

गमपधसरिसनिधपध। मपरिगमारिसा। सरिगमपधपमगपरिगमारिस। सरिधपगरिगमारिसागपधससनिधपधपमरिगमरिस। रिगपमरिगमरिस। सरिगपध-पसनिधपधधपमरिगमरिस। (सधपमरिगमरिस। रिगरिसनिधपधपमरिगमारिस।)

इति वेलावली। प्रातः कालीया। ५०। सवेर के समय।

गनी तीव्रौ तु केदार्य्यां रिधौ नस्तोऽथ गादिमा ॥ ४०९ ॥

केदारी (केदारा) रागिनी में गान्धार निषाद तीव्र (शुद्ध) और ऋषभ-धैवत दोनों कोमल लगाए जाते हैं। एवं गान्धार स्वर आदि (हरिणाश्वा) मूर्च्छना होती है। इस समय तो केदारा दोनों मध्यम शेष शुद्ध स्वरों से गाई जाती है। और सम्पूर्ण जाति होती है। भरत मत में यह दीपक राग की भार्य्या मानी गई है।

गमपनिसगमगसनिपनिसम। गगगसनिपममगसगमपमगस। गमपनिपमगसनि सनिसनिसनिमपनिपमगमपमगसनिसस्वा ।

इति केदारी। तृतीय प्रहरोत्तरम्। ५१। दिन के तीसरे प्रहर के उत्तर भाग में।

काम्बोधी तीव्रगान्धारा गान्धारादिर्ग मूर्च्छना।
आरोहे मनिहीना स्यान्मध्यांशस्वरभूषिता ॥
यदा गान्धारहीना स्यान्मूर्च्छना चोत्तरायता ॥ ४१० ॥

काम्बोधी (कामोदी) रागिनी में गान्धार तीव्र लगता है और गन्धार स्वर आदि (हरिणाश्वा) मूर्च्छना होती है, यानी गान्धार ग्रह है। आरोही में मध्यम और निषाद वर्जित स्वर हैं। (अवरोह सम्पूर्ण) अतः 'औडुव सम्पूर्ण' जाति होती है। मध्यम और धैवत इसके अंश स्वर होते हैं और उन्हीं से यह भूषित (सजी हुई) होती है, या तो मध्यम अंश है अथवा धैवत अंश होता है। यहाँ दो मतभेदों पर लिखा है। क्योंकि मध्यम और धैवत में सम्वाद होता नहीं है। अब दूसरा मतभेद बता रहे हैं— जब कि यह गान्धार वर्जित 'षाडव-षाडव' वर्ग की होती है तो धैवत आदि स्वर की उत्तरायता मूर्च्छना होती है। और उसका वही (धैवत) ग्रह है।

गपधमसनिधसधस । धसरिममगरिस। धसरिमगरिसनरिगगरिगरिस। सनिधपधापमगपधसरिसनिधपधरमगगपधसरिगरिसरिमगरिससरिसधसनिधपधर-मगरिगरिस। सनिधपधधस।

इति काम्बोधी। द्वितीयप्रहरोत्तरम्। ५२। दोपहर के बाद गाई जाती है।

धैवतोग्रहसंयुक्ता गोपीकाम्बोधिका पुनः।
यत्रारोहे निषर्जत्वं मपांशाभ्यां सुशोभिता ॥ ४११ ॥

शुद्ध कामोदी का लक्षण बता चुके हैं, अतएव पुनः शब्द का प्रयोग किया है यानी इसके बाद 'गोपीकाम्बोधी' जो एक प्रकार की देशी समझनी चाहिए। इसमें धैवतस्वर ग्रह है। और आरोह में निषाद वर्जित (अवरोह संपूर्ण) है। अतः 'षाडव संपूर्ण) होती है। तथा मध्यम-पञ्चम दोनों अंशों के द्वारा सुशोभित होती है।

धमसरिगम । पधपमपमपमामरिगरिगरिस। सरिगमपासापामपा। (मपयोः कम्पनम्) अब मध्यम और पञ्चम पर स्वर कम्पन होगा—

निधधपामपा सरिगरिसरिगरिगमगरिगमपानिधपमपमा। रिगारिसगरिसरिमगरिगमपधनिधपमपमागरिगरिसा। धमरिगमगरिगरिगरिस। पमगरिगरिसस-रिसनिधधसस्सा।

इति गोपीकाम्बोधी। द्वितीयप्रहरोत्तरम्। ५३। दोपहर के बाद।

आरोहे मनिवर्जः स्याद्दीपको मालवोत्थितः।
गान्धारोग्रहसंन्यकः संन्यासांशविभूषितः॥ ४१२॥

दीपक राग मालव राग से उठता है, यह शब्दार्थ हुआ। भावार्थ—'मालव-मेल' में है। जो पहिले लिखा जाचुका है। इन्हीं के मालव थाट में, (आधुनिक-मारवा थाट में नहीं) इसकी आरोही में मध्यम, निषाद दोनों स्वर वर्जित हैं। (अवरोह संपूर्ण है) अतः 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति होती है। एवं गान्धार इसका ग्रह है। षडज स्वर पर न्यास (तोड़) है। तथा वही षड्ज अंश (वादी, संवादी-पञ्चम) है और उससे विभूषित (सुसज्जित) है।

इति दीपकः। द्वितीय प्रहरोत्तरम्। ५४। दोपहर को।

मूल पुस्तक में दीपक का स्वर प्रस्तार नहीं है। और नीचे लिखा है—

इति पटमञ्जरी तृतीयप्रहरोत्तरम्। ५५। तीसरे प्रहर के बाद।

और इसके नीचे टिप्पणी के रूप में लिखा है—

'अत्र दीपकरागस्य प्रस्तारस्तथा पटमञ्जर्या लक्षणं प्रस्तारश्च लिपिकरप्रमादेना-दर्शपुस्तकाद्भ्रष्टः।'

अर्थात्—यहाँ दीपक राग का स्वर प्रस्तार तथा पट-मञ्जरी (रागिनी) का लक्षण और प्रस्तार (तीनों च जें) लिखने वाले की ग़लती से आदर्श पुस्तक (हस्त-लिखित) से भ्रष्ट हो गए हैं।

यूं तो दीपक, पट मञ्जरी दोनों ही प्रसिद्ध राग हैं। भरत के मत में तो दीपक पट प्रवर्त्तक (प्रधान) रागों में माना गया है। तथा पटमंजरी हिन्दोलराग की तीसरी भार्य्या। इस समय 'तानसेनी' और 'सूरदासी' दो प्रकार की पट मंजरियाँ प्रचलित और गाई जाती हैं। दोनों ही 'औडुव सम्पूर्ण' आरोह में गान्धार वर्जित हैं। दोनों ही के प-स सम्वादी हैं।

किन्तु 'तानसेनी' काफी तथा 'सूरदासी' शुद्ध (बिलावल) मेल में होती है। यही अन्तर है। दीपक का लक्षण ऊपर दिया ही है। ग्रन्थों में इसके भी ५ प्रकार के रूप (भेद) पाये जाते हैं। अस्तु!

या गौरीरागसम्भूता ललिता पञ्चमोज्झिता।
सांशोद्ग्राहा तथा मान्ता गीतान्ते सा सुशोभना॥ ४१३॥

ललिता (ललित) जो गौरीराग (थाट) से उत्पन्न होती है, यह पञ्चम वर्जित 'षाडव' है। इसमें षड्ज ग्रह और अन्त (न्यास) मध्यम स्वर है। षड्ज ही इसका अंश (वादी, सं० प०) है, गीत के अन्त में (तानों में) या गाने पर अच्छी भासित होती है। (यह भी हिन्दोल की रागिनी है)

सरिगमधनिससनिधम गरिसरिसनिसनिसनिधनि निसरिगमगरिसनिसधनिस निसनिनिधमधनिसरिगमगरिसनिधनिधममगरिसरिसनिससधनिसमागरिसनिधनिसस्स

इति ललिता। सर्वदा। ५६। प्रति समय।

गौरी मेलसमुद्भूता बहुला मध्यमोज्झिता।
स-वियोगि-निना युक्ता गान्धारोग्राहपांशका॥ ४१४॥

बहुला रागिनी गौरीमेल (थाट जो पहिले बता चुके हैं) से उत्पन्न होती है। यानी-उन्हीं स्वरों में है। मध्यम स्वर इसमें वर्जित है और निषाद स्वर इसमें लगता तो है, किन्तु उस निषाद द्वारा युक्त (साथ) है जो कि षड्ज का वियोगी भूत हो। यानी षड्ज के साथ (इधर उधर) निषाद का प्रयोग नहीं होता है। यथा 'स-नि' अथवा-'नि-स' किन्तु 'ध-नि-ध' और 'म ध-नि-प' इस भाँति होता है। और निषाद इसमें दुर्बल (स्वल्प प्रयुक्त) होता है। इसका उद्ग्राह (ग्रह) गान्धार स्वर (हरिणाश्वा-मूर्च्छना) होता है। पञ्चम स्वर अन्श (वादी सं० षड्ज) शुद्ध मेल 'षाडव २' जाति होती है। भरतमत में यह भैरव की पुत्रबधू (पतोहू) मानी जाती है। स्वर प्रयोग में अन्तर है। संगीत रत्नाकर में ललिता और ललित दोनों द्विविध राग हैं।

गपधसधनिधपगपागरिगारिस। रिरिसधधमरिरिगपरिसगपधनिधपगपगारिस-रिरिसधधसस्स।

इति बहुला। प्रथम प्रहरोत्तरम्। ५७। सवेरे।

गुर्जरी मालवोत्पन्ना ऽवरोहे मनिवर्जिता।
गश्लिष्टमध्यमोपेता धैवतश्लिष्टसस्वरा॥
गान्धारमूर्च्छनोपेता दाक्षिणात्या प्रकीर्त्तिता॥ ४१५॥

गुर्जरी (रागिनी) पूर्व लिखित मालव मेल से उत्पन्न होती है। इसका आरोह सम्पूर्ण, तथा अवरोह में मध्यम-निषाद दोनों स्वर वर्जित हैं। अतः इसकी 'सम्पूर्ण-औडुव' जाति होती है। इसमें गान्धार, मध्यम, धैवत तथा षड्ज यह स्वर कोमल होते हैं। (द्विश्रुतिक षड्ज) गान्धार की (हरिणाश्वा) मूर्च्छना होती है। यह दक्षिणात्या (दक्षिण की) गुर्जरी कहलाती है।

सङ्गीतदर्पण ने भी ध्यान में दक्षिणी गुर्जरी को सङ्गीतमय ही चित्रित किया है—

श्यामा सुकेशी मलयद्रुमाणां मृदूल्लसत्पल्लवतल्पजाता ।
श्रुतेः स्वराणां दधती विभागं सन्त्रीमुखा दक्षिणगुर्जरीयम् ॥

वह सांवले रङ्ग की सुन्दर बालों वाली है। चन्दन के वृक्षों के कोमल पत्तों से ऊँची और सुशोभित शैय्या बनाकर बैठी है, और मुँह से बजाने की बीन (एक प्रकार की प्राचीन वीणा शुषिर (छिद्र) वाद्य) के द्वारा स्वरों से श्रुतियों का विभाग (पृथक्करण) करके दिखा रही है वह दक्षिणी गुर्जरी है।

पारिजात ने यह तथा उत्तर भारतीयों के गाने की दो ही गुर्जरियां लिखी हैं, रत्नाकर ने शुद्धगुर्जरी, महाराष्ट्र गुर्जरी, सौराष्ट्री (सोरठी) गुर्जरी, (सौराष्ट्री 'सौराष्ट्र देश की' का ही अपभ्रंश सोरठी है) दक्षिणी और द्राविड गुर्जरी यह ५ प्रकार की गुर्जरियां बताई हैं। भरतमत में गुर्जरी मेघ राग की तीसरी भार्या मानी है। इस समय इसे 'गूजरी टोड़ी' कहते हैं। और तोड़ी के ही थाट में रि. ग. ध. कोमल, मध्यम चढ़ी लगाकर गाते हैं बहुतेरे भैरवी थाट में म. वक्र करके भी गाते हैं।

गपधसरिगरिसधनिधपधपधपपगमगरिस्स। रिरिसधधस। गपप। गपधसस पगारिसरिरिसधधसधनिधपधधपगपपागमागरिसरिरिसधधसस्स।

इति दक्षिणा गुर्जरी। प्रथम प्रहरोत्तरम्। ५८। सवेरे के समय।

औत्तरा गुर्ज्जरी ज्ञेया शुद्धगा पूर्ववत्सदा ॥ ४१६ ॥

उत्तर की गुर्जरी पूर्व वर्णित में गान्धार शुद्ध (तीव्र) कर देने पर बन जाती है। अन्य स्वर सदा-सर्व प्रकार से पूर्ववत् ही जानने चाहिये। और प्रस्तारादि भी।

इत्यौत्तरा गुर्जरी। प्रथम प्रहरोत्तरम्। ५९। पू० स०।

गौरी मेल समुद्भूता धैवतोद्ग्राहशोभिता ।
धन्यसांशापि कौमारी प्रायशः कम्पितस्वरा ॥ ४१७ ॥

कौमारी (रागिनी) गौरी मेल से उत्पन्न होती है और यह धैवत ग्रह से शोभित होती है। धैवत स्वर ही इसका न्यास, और अंश भी (वा० सं० रि०) है। इसमें प्रायः स्वर कम्पन हुआ करता है। भरतमत में भैरव की पांचवी पुत्रबधू मानी गई है।

धनिसरिगमगरिसन्निध। धनिसरिस। गमपधनिधपधनिधपगमपमपगमगरिसन्निधधनिससनिधनीसस्सा।

इति कौमारी। प्रथम प्रहरोत्तरम्। ६०। पूर्वोक्तसमय।

गौरीमेलसमुद्भूता षड्जोद्ग्राहेण मण्डिता ।
मनित्यक्ता सदा रेवा ग-पादियमलस्वरा ॥ ४१८ ॥

रेवा रागिनी भी गौरी मेल से उत्पन्न होती है। रत्नाकर में इसे 'रेवगुप्ति' लिखा है। कहीं २ 'रेवाखण्डी' राग भी उल्लिखित है। इसका उद्ग्राह षड्ज पर होता है। और यह सदा-आरोहावरोह में मध्यम-निषाद वर्जित होती है। अतः 'औडुव २' वर्ग होता है। और 'ग-प' आदि 'ध-सं' प-ग' 'स-ध' इत्यादि यमल-युग्मक स्वरों की स्वर संगति होत है।

सरिगपधससरिगरिससरुधपगपगारिसस्रिगपधसधसरिगपगरिसरिरिसस-धसस्सा ।

इति रेवा । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ६१ । दिन के तीसरे प्र० के उ० ।

गौलस्तु गधवर्जः स्याद्गौरीमेलसमुद्भवः ॥ ४१९ ॥

गौल राग भी गौरी मेल से ही उत्पन्न होता है। कोई इसे 'गोड' का ही अपभ्रंश समझते हैं। गान्धार-धैवत वर्जित यह 'औडुव' वर्ग का राग है। इनके मत में ८ प्रकार के 'गौल' होते हैं, जिन्हें आगे बता रहे हैं।

सरिमपनिसरिसरिससससनिपपपमरिरिमरिपस । पमपमपमरिरिरिसरिसरि-सनीसस्सा ।

इतिः गौलः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ६२ । तीसरे प्रहर के उ० ।

अथ केदारगौलः स्यात्तीव्रगान्धारसंयुतः ।
रजनीमूर्च्छनायुक्तः रि-पयोगेन मण्डितः ॥ ४२० ॥

अब केदार गौल का लक्षण बता रहे हैं। यह तीव्र गान्धार के साथ गाया जाता है, इसमें निषाद स्वर पूर्वक रजनी मूर्च्छना होती है। अतः निषाद स्वर ही इसका ग्रह है। और ऋषभ पञ्चम के योग से यह मण्डित-(सजा हुआ) होता है। यानी 'रि-प' और 'प-रि' यह स्वर सङ्गति इसमें होती है।

तथैव मपयोगेन पञ्चमांशेन शोभितः ।
आरोहे ग-धवर्जः स्याद्रिस्वरांशः क्वचिन्मतः ॥ ४२१ ॥

उसी प्रकार मध्यम और पञ्चम के योग से भी मण्डित रहता है। यानी 'म प' तथा 'प म' की भी प्रायः स्वर संगति रहती है। और पञ्चम स्वर अन्श (वादी, सं० षड्ज) से शोभित होता है। आरोही में गान्धार और धैवत वर्जित रहते हैं (अवरोह सम्पूर्ण है) अतः 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति होती है। कहीं (किसी मत में) ऋषभ स्वर अन्श (वादी, सं० नि०) माना गया है।

निसरिमपनिधपापमगरिरिपमगरिगरिम । [illegible] रिगरिसनिसरिपमगरिगरिसनिसस्सा ।

इति केदारगौलः। तृतीय प्रहरोत्तरम् । ६३ । तीसरे प्रहर के उत्तर में ।

अथ कर्णाटगौलः स्याद्रिनीव्रतरसंयुतः ।
तीव्रगान्धारसंयुक्तो गमन्यासांशशोभितः ॥ ४२२ ॥

षड्जादिमूर्च्छनोपेतः पापन्यासावरोहकः ।
आरोहे [illegible] क्वचिद्वर्जः मतां मतः ॥ ४२३ ॥

अब कर्णाट-गौल (गोड़ कान्हड़ा) का लक्षण बता रहे हैं। यह तीव्रतर ऋषभ के साथ (गाया जाता या) होता है। अर्थात्-शुद्ध ऋषभ से २ श्रुति अधिक 'अन्तर-ऋषभ' यानी 'क्रोधा' श्रुति या शुद्ध गान्धार ।

गान्धारः शुद्ध एवासौ रिस्तीव्रतर इष्यते ।

यह तीव्र गान्धार के संयुक्त (साथ) होता है। (वही पहिले वाली बात है) एक शुद्ध गान्धार के उपर्युक्त सब नाम हैं।

मध्यमेन विना सर्वे शुद्धास्तीव्राः स्वरा जगुः ।

गान्धार पर इसका न्यास (तोड़) होता है, तथा मध्यम स्वर इसका अंश (बादी.सं० तार षड्ज) रूप में शोभित होता है। जाति सम्पूर्ण है और यह षड्ज स्वर आदि 'उत्तरामन्द्रा' मूर्च्छना के उपेत (सम्पेत) होता है और इसकी अवरोही में पञ्चम स्वर अपन्यास होता है। यथा—रत्नाकर !

अपन्यासः स्वरः स स्याद्यो विहारीसमापकः ।
कार्माख्यां च नैषाद्यामान्ध्रीमध्यमयोस्तथा ॥
आर्षभ्याञ्च स्वरायेऽशास्ते ऽपन्यासाः प्रकीर्त्तिताः ॥

कल्लिनाथ जी ने इस पर—"अपन्यस्यते प्रयोगो येनेत्यपन्यासः ।" लिखकर अपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति की है। अर्थात्—जिसके द्वारा प्रयोग (गायन) कुछ अग्रिम सन्निधि में समाप्त किया जाय, उसे अपन्यास कहते हैं। आगे बताते हैं—'अपन्यसनञ्च न्यासत्वापगमे त्ववान्तरविच्छेदकारित्वान्न्यासवत्प्रतिभासनम् ।' अर्थात्—न्यास आने से पहिले जिस स्वर से यह प्रतिभासित हो जाये कि अब आगे ठहर या सम आ रही है उसे 'अपन्यास' कहते हैं। अपन्यास के ५७ भेद रत्नाकर में बताए हैं, किन्तु स्थानाभाव से वे सब यहाँ नहीं दिये जा सकते । 'सतां-मतः' श्रेष्ठों (सङ्गीतज्ञों) का यह माना हुआ है कि (कर्णाट गौड़) कहीं-कहीं (मतान्तर में) आरोही में धैवत भी वर्जित होता है। तो-'षाडव-षाडव' जाति होती है। रत्नाकर में 'कर्णाट गौड़' लिखा है।

सरिगमपधनिसरीसनीसस्सा । निधपमनिनिसरीसनिनीसस्सा ।

इति कर्णाटगौलः । तृतीयप्रहरोत्तरम् ॥ ६४ ॥ पू० स० ॥

गारङ्गगौल आख्यातः सारङ्गस्वरसम्भवः ।
सन्यासो मध्यमांशश्च गधहीनोऽथ सादिमः ॥ ४२४ ॥

सारङ्ग गौल (गौड सारङ्ग) सारङ्ग के स्वरों से ही उत्पन्न कहा गया है। इसका षड्ज स्वर पर न्यास तथा षड्ज पर ही ग्रह होता है। मध्यम स्वर इसका अंश एवं गान्धार धैवत दोनों वर्जित 'औडुव २' है।

सरिमपनीसारिमनीसनिपमपमरिमारिसा । निसनिसनिसनिपमनिपमपपनी-सरिमपमरिमरिसनीसस्सा ।

इति सारङ्ग गौलः । तृतीय प्रहरोत्तरम् ॥ ६५ ॥ पूर्वोक्त समय ।

रीतिर्गौलस्तु सम्पूर्णो धैवतादिकमूर्च्छनः ।
अवरोहे पवर्जः स्यान्न्यासांशमरिभूषितः ॥ ४२५ ॥

रीति गौल सम्पूर्ण वर्ग का राग होता है। धैवत स्वर पूर्वक 'उत्तरायता' मूर्च्छना इसमें होती है। (धैवत ग्रह) अवरोही में पञ्चम वर्जित होता है। (आरोह में लगता है) अतः 'सम्पूर्ण-षाडव' उपजाति होती है। इसका षड्ज स्वर न्यास है, तथा ऋषभ अंश (वादी सं० धैवत) के द्वारा भूषित होता है।

धनिसरिगामपधनीनीधपमपगगरिसनिस । धनिसरिगमपपधनिधपमगगरि-सनिसस्सा ।

इति रीतिगौलः । तृतीय प्रहरोत्तरम् ॥ ६६ ॥ पू० स० ।

अथ नारायणे गौले नीव्रगान्धारसंयुते ।
अवरोहे धगौ नस्तो निर्योरन्यतरादिमे ॥ ४२६ ॥
पुनः स्वस्थानगमक आरोहे रिपयोर्मतः ।
पूर्वोत्तरग्रहोपेते मध्यमन्यासमण्डिते ॥ २२७ ॥

अब 'नारायण गौल' राग में बताते हैं, यह तीव्र (शुद्ध) गान्धार लगाकर गाया जाता है। इसकी अवरोही में धैवत और गान्धार दोनों वर्जित होते हैं तथा आरोह में समस्त स्वरों का प्रयोग होता है। अतः 'सम्पूर्ण-औडुव' जाति मानी जाती है।

इस (नारायण गौल) की आरोही में ऋषभ और पञ्चम दोनों स्वरों पर 'पुनः स्वस्थान' नामक गमक दी जाती है। (देखो 'गमक प्रकरण') और यह

'पूर्वाहत' तथा 'उत्तराहत' दोनों प्रकार की 'आहत' गमकों के साथ गाया जाता है। यह मध्यम स्वर पर न्यास (समाप्ति) द्वारा मण्डित (सजा हुआ) होता है।

निसरिगरिसरिमपधपमपमरिगरिस । निसनिपमपपरिगरिस । रिमपमपम-रिरिगरिस । निसनिसरिमरिमपधपमपमरिमरिगरिसनिपनिस ।

इति नारायण गौलः । तृतीय प्रहरोत्तरम् ॥ ६७ ॥ पू० स० ।

अथ मालवगौलेऽस्मिन् गौरीस्वरसमुद्भवे ।
त्यक्तधे रि-स्वरोद्ग्राहे न ह्यारोहे सु ग-स्वरः ॥
आरोहे यदि गान्धारः पादिर्मान्तो विधीयते ॥ ४२८ ॥

अब 'मालव गौल' में बताते हैं—इसे ही मध्य-कालीन ग्रन्थों में 'मालव गौड़' लिखा है. जिसे साम्प्रतिक लोग भैरव का 'पूर्व नामान्तर' मानते हैं। दक्षिणी ग्रन्थों में इसी की 'मायामालव गौड़' संज्ञा पाई जाती है। यह गौरी के स्वरों या मेल से उत्पन्न होता है। धैवत स्वर इसमें वर्जित है। ऋषभ स्वर इसका उद्ग्राह (ग्रह) है। आरोही में गान्धार स्वर नहीं लगता है। अतः 'औडुव-षाडव' जाति होती है।

अब मत-भेद पर बताते हैं कि यदि आरोही में गान्धार लगाया जाय तो 'षाडव-षाडव' वर्ग तथा पञ्चम ग्रह स्वर और मध्यम पर न्यास लिया जाता है।

रिमपनिसमनिपपमगगरिमगरिस । रिमपनिपनिसरिसरिमारिगगगारिस । सनिपमपपगमरिमगरिसा ।

इति मालवगोलः । तृ० प्र० ॥ ६८ ॥ पू० ।

अब 'देशी' रागिनी का लक्षण लिखते हैं—

गनी त्यज्यावधीरोहे रिधौ यत्र च कोमलौ ।
षड्जादिस्वरसम्भूतिर्देश्यामंशस्तु रि—स्मृतः ॥ ४२९ ॥

अर्थात्—देशी (रागिनी) में ऋषभ अंश (वादी, सम्वादी-धैवत) कहा गया है और गान्धार तथा निषाद दोनों आरोह में त्यज्य अवधि वाले होते हैं यानी आरोह अवधि (पर्य्यन्त) नहीं लगते। अवरोही में लगते हैं। इससे 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति होती है। ऋषभ तथा धैवत दोनों इसमें कोमल हैं। (वर्त्तमान-भैरव थाट का आरोह प्रचलित—'गुनकली' जैसा है।) इसकी उत्पत्ति षड्ज आदि स्वर से यानी 'उत्तरा मन्द्रा' मूर्च्छना से है। (यह देशी रागिनी है।)

अथ स्वर प्रस्तारः—

सरिमपधसनिनिधमपगगरिस । रिरिसनीधसा । सरिमपनिनिधमपमपगगरिस रिमपपमगरिरिगरिस । धधस ।

इति देशी सर्वदा ॥ ६९ ॥ यह देशी हर समय गाई जाती है।

हिन्दोलऽथ रि-पौ त्यज्यौ कोमलौ धैवतौ भवेत् ॥ ४३० ॥

अब हिन्दोल में कहते हैं—ऋषभ पञ्चम दोनों स्वर वर्जित होते हैं। अतः 'औडुव २' है। धैवत कोमल तथा शेष स्वर शुद्ध होते हैं। स. ध. वादी सं. वादी हैं।

सगमधनिस । सनिधमगमगससगमधमधनिस । सगमनिसनिधमगमग-सनिससस्सा ।

इति हिन्दोलः । द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ ७० ॥ दूसरे प्रहर में।

हिन्दोलो रिपयोगेन मार्गहिन्दोलको भवेत् ॥ ४३१ ॥

हिन्दोल में ऋषभ तथा पञ्चम का भी प्रयोग होने से यानी सम्पूर्ण जाति का होने से वही मार्गी हिन्दोल होता है। अर्थात्—यही प्राचीन है और पहिले वाला देशी इनके समय का अर्वाचीन या 'आधुनिक-प्रचलित' शेष सब पूर्ववत् ही है। अतः प्रस्तारादि नहीं लिखा।

इति मार्ग हिन्दोलः । द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ ७१ ॥ दोपहर को।

रिधौ तु कोमलौ ज्ञेयावाभीरीमूर्च्छनायुते ।
आरोहे च धवर्जत्वं रागे ढक्काभिधानके ॥ ४३२ ॥

ढक्का-अभिधान नामक राग में ऋषभ-धैवत दोनों स्वर कोमल होते हैं। इसमें वही मूर्च्छना होती है जो आभीरी (अहीर भैरव) में आई है।

आरोही में धैवत स्वर वर्जित होता है। अवरोह सम्पूर्ण है। अतः 'षाडव-सम्पूर्ण' है।

सरिगमपनिससनिधपनिधपधपमपधपमगारिस । सरिगमपनिधधपगारिस । (गे कम्पनं सर्वत्र ।) सब जगह गान्धार स्वरों पर कम्पन होगा।

पगारिसनिधपपधमरिगमपागारिसरिस ।

इति ढक्कः । तृ० प्रहरोत्तरम् । ७२ ॥ दिन के तीसरे प्रहर के उत्तर भाग में।

रिस्तु तीव्रतरो यस्मिन्गान्धारस्तीव्रसंज्ञकः ।
धस्तु तीव्रतरः प्रोक्तो निषादस्तीव्रनामकः ॥
अवरोहे धगौ नस्तो नाटे रि-स्वरमूर्च्छना ॥ ४३३ ॥

नाट (नट) राग में तीव्रतर ऋषभ लगता है, जिसकी तीव्र गान्धार संज्ञा है। जिसमें धैवत भी तीव्रतर कहा गया है, जिसका (दूसरा) नाम तीव्र निषाद है। अवरोही में धैवत गान्धार दोनों वर्जित हैं, आरोह सम्पूर्ण है। अतः 'सम्पूर्ण-औडुव' जाति होती है और इस नाट में ऋषभ स्वर पूर्वक 'अभिरुढ़ता' मूर्च्छना होती है और ऋषभ ही स्वर ग्रह है। भावार्थ—गान्धार-निषाद शुद्ध होने से इसका 'शुद्ध मेल' है।

रिगमपधनिससनिपममपममरीसारिगमरिगमपधनिसधनि । ससनिपसनिपममप ममपममपममरिस । रिसनीसस्सा ।

इति नाटः । तृ० प्रहरोत्तरम् । पू० स० ॥ ७३ ॥

वेलावलीसमुद्भूतो मांशो रिन्यासको नटः ।
अवरोहे गहीनः स्याद्गान्धारादिकमूर्च्छना ॥ ४३४ ॥

नट (नारायण) राग वेलावली (विलावल) मेल से उत्पन्न होता है । इसमें गान्धार स्वर आदि (हरिणाश्वा) मूर्च्छना होती है । अथवा अश्वक्रान्ता और मध्यम स्वर इसका अंश (वा० सं० तार षड्ज) गान्धार स्वर ही ग्रह तथा ऋषभ पर न्यास होता है । अवरोही में गान्धार वर्जित है और आरोही में लगता है । अतः 'सम्पूर्ण-षाडव' जाति होती है । भरत ने इसे दीपक राग का प्रथम पुत्र माना है ।

गमपधनिससनिधपममपममम । रिगमारिसधनिसधनि । ससनिपस ।

(निषाद तारषड्जयो टालुः ।) निषाद (मध्य सप्तक) और तार षड्ज दोनों स्वरों पर 'टालु' गमक लगानी होगी । 'टालु' के लिए रत्नाकर देखें ।

सनिसनिसनिधपधनिससनिप । (सर्वत्र विकर्षणम् ।) आगे सब स्वरों पर 'विकर्षण' गमक का प्रयोग होगा । धनीधपममपममममरिगमारिस ।

इति नट नारायणः । तृतीय प्रहरोत्तरम् ॥ ७४ ॥ पू० स० ।

शङ्कराभरणोत्पन्ने गान्धारस्वरवर्जिते ।
अथ सालङ्कनाटेऽस्मिन्सन्यासांशसमन्विते ॥
षड्जोद्ग्राहेण सम्पन्ने मधावाम्रेडितौ स्मृतौ ॥ ४३५ ॥

अब सालङ्क नाट बता रहे हैं । अतः 'अथ' शब्द को प्रयुक्त कर लिखते हैं ।

यह 'सालङ्क नाट' शंकराभरण राग (थाट) से उत्पन्न होता है । यानी शुद्ध (विलावल) मेल है । गान्धार स्वर इसमें वर्जित है, अतः 'षाडव २' जाति होती है षड्ज स्वर पर इसका उद्ग्राह (ग्रह) है, और उसके द्वारा यह सम्पन्न (परिपूरित) होता है । षड्ज ही इसका न्यास, तथा वही अंश है । और इसमें मध्यम तथा धैवत दोनों स्वर 'आम्रेडित' कहे गये हैं । जैसे—'मध मध' या 'धम धम' इत्यादि ।

ससरिममपधधपममपममरिससाधपमपधससरिरिस । रिममपधनीधपमपमम-रिससाधपमपधससरिसा ।

इति सालङ्कनाटः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ७५ । पूर्वोक्त समय ।

छायानाटस्तु विज्ञेयः शंकराभरणस्वरैः ।
आरोहणे नि-वर्जः स्यादवरोहे गवर्जितः ॥
धैवतोग्राहसंयुक्तो रिन्यासो ऽनेकमध्यमः ॥ ४३६ ॥

छायानाट (नट) भी शङ्कराभरण के ही स्वरों में जानना चाहिये । इसमें आरोही में निषाद तथा अवरोही में गान्धार वर्जित होता है । अतः 'षाडव-षाडव' वर्ग होता है । धैवत इसका स्वर-ग्रह है । ऋषभ पर न्यास है । और मध्यमों का बहुल प्रयोग होता है, अतः वही अंश, (वादी, सं० तार षड्ज) जानना चाहिये ।

धससरिगमपधसनिधपममरिधपमपमममरिधापाममरिसरिसरिसनिस ।

इति छायानाटः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ७६ । पू० स० ।

अथ कामोदनाटे [illegible]
धैवतोद्ग्राहसम्पन्नेऽवरोहे ग-धवर्जिते ॥
सन्यासो मध्यमांशः स्यात्सर्वत्र बहुकम्पनम् ॥ ४३७ ॥

अब 'कामोद नाट' में कहते हैं--इसमें गान्धार तीव्र संयुक्त होता है । धैवत स्वर उद्ग्राह से सम्पन्न होता है । अवरोह में गान्धार-धैवत दोनों वर्जित हैं । तथा आरोही में सब स्वर लगते हैं । अतः 'सम्पूर्ण-औडुव' जाति होती है । षड्ज स्वर पर न्यास, तथा मध्यम अन्श होता है । और सर्वत्र (चतुष्पादों में) स्वर कम्पन बहुत होता है ।

धनिसरिगमपधनिससनिपसनिपममपममरिस । ससपाममरिसधनिसधनिसरिग मपममरिसरिसनिपमपधनिससनिपससनिपनिपममपममरिस । ससपाममरिसधनि-सरिगमपममरिसरिसनिपमपधनिसममामारिमधनिसधनिससस्सा ।

इति कामोदनाटः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ७७ । पू० स० ।

आभीरीमेलसम्भूतोऽवरोहे धस्वरोज्झितः ।
अथ न्यासविशेषाढ्यः आभीरीनाटकः स्मृतः ॥
सस्वरादिग्रहन्यासो यस्मिन्नंशौ ग-नी स्वरौ ॥ ४३८ ॥

अब 'आभीरी नाट' (नट) राग बताते हैं--यह (पूर्वोक्त) आभीरी मेल से ही उत्पन्न होता है । इसकी अवरोही में धैवत स्वर वर्जित रहता है, तथा आरोह पूर्ण है अतः 'सम्पूर्ण-षाडव' जाति होती है। यह राग विशेष न्यासों का घर है, यानी इसमें न्यासों का बाहुल्य होता है अथवा-विशेष-षट् स्वरों से अधिक (छहों का

उत्पादक) षड्ज इसका न्यास भी है और आढ्य (ग्रह) भी। षड्ज स्वर इसका आदि-ग्रह, और न्यास कहा गया है। गान्धार इसमें अन्श (वादी) और संवादी निषाद स्वर है।

स रगमपधनिससनिपममपमगाउरिसानीउसस्सा। पाममपममपपधनिसनिप ससरिससनिपनिपमपममपपमगारिसरिसनीसस्सा।

इत्याभीरीनाटः। तृतीय प्रहरोत्तरम्। ७८। पू० स०।

कल्यांणमेलसम्भूतो ऽवरोहे गधवर्जितः।
षड्जादिमूर्च्छनोपेतो रागः कल्याणनाटकः॥ ४३९॥

कल्याण नाट राग कल्याण मेल से उत्पन्न होता है। इसकी अवरोही में गान्धार-धैवत दोनों वर्जित स्वर हैं। आरोह सम्पूर्ण है, अतः 'सम्पूर्ण-औडुव' जाति होती है। इसमें षड्ज स्वर आदि उत्तरामन्द्रा मूर्च्छना होती है। अतः षड्ज ग्रह, स० प० वादी संवादी हैं।

सरिगमपधनिससनिपमपममममरिगामारिसरिसनीसस्सा। पाममरिगामरिसरिसनीसस्सा।

इति कल्याण नाटः। तृतीय प्रहरोत्तरम्। ७९। पू० स०।

अथ केदारनाटे ऽस्मिन्नारोहे रिधवर्जिते।
मादिमे च गनी तीव्राववरोहे धगोज्झिते॥ ४४०॥

अब केदार नाट का लक्षण कहते हैं, इसमें आरोही में ऋषभ धैवत् दोनों स्वर वर्जित हैं तथा अवरोही में धैवत और गान्धार वर्जित हैं, अतः दोनों ओर से 'औडुव-औडुव' होता है। मध्यम स्वर इसका ग्रह है। गान्धार तथा निषाद दोनों स्वर इसमें तीव्र होने से शुद्ध मेल है। एवं षड्ज पर न्यास है। और स० प० वादी सम्वादी स्वर हैं।

गमपनीसनिपममरिसरिसनीसस्सा। पनिसपनीनिपममरिमरिसनीसस्सा। पनिसपनीसममरिस। गमपनिससममपपममसरिगमारिससनिस। ससगमरिममरि सरिसनीसस्सा।

इति केदारनाटः। तृ० प्र०। ८०। पू० स०।

वराटीस्वरसञ्जाते वराटीनाटके पुनः।
अवरोहे धगौ वर्जौ न्यासांशौ षडजपञ्चमौ॥
धैवतोद्ग्राहसम्पन्ने निमयोः कम्पनं भवेत्। ४४१॥

पुनः (फिर) 'वराटीनाट' (राग) में जो वराटी (वैराटी) के ही स्वरों से उत्पन्न होता है, अवरोही में धैवत तथा गान्धार दोनों वर्जित होते हैं और आरोह सम्पूर्ण है, अतः 'सम्पूर्ण-औडुव' जाति होती है। षड्ज स्वर पर इसका न्यास होता है, तथा धैवत उद्ग्राही (ग्रह) स्वर है। एवं पञ्चम स्वर अंश (वा० सं० षडज) होता है। तथा मध्यम और निषाद इन दोनों पर स्वर कम्पन होता है।

धनिसरिगमपसरिपमपमपममरिपममा। सनीसरसा।

इति वैराटीनाटः। तृ० प्र०। ८१। पूर्व समय।

इति नवनाटाः। यह ९ प्रकार के नट राग समाप्त हुए।

गौरीमेलसमुत्पन्नारोहणे गनिवर्जिता ।
मध्यमोद्ग्राहधांशाद्यासावरी न्यासपञ्चमा ॥ ४४२ ॥

अब आसावरी (रागिनी) का लक्षण बता रहे हैं— यह गौरी के मेल (थाट) से उत्पन्न होती है, जिसमें ऋषभ धैवत दोनों कोमल और गान्धार निषाद शुद्ध होते हैं। इसकी आरोही में गान्धार निषाद दोनों स्वर वर्जित होते हैं और अवरोह पूर्ण है, अतः-'औडुव सम्पूर्ण' जाति होती है। मध्यम स्वर इसका ग्रह है, तथा पञ्चम पर न्यास होता है, धैवत स्वर इसका अंश तथा दोनों कोमल स्वरों में सम्वाद है यह 'आद्य आसावरी' यानी पहिली (पुरानी) या 'मार्गी' होती है।

मपधसरिमपमगरिसधसरिगरिससरिधपमपमगरिमपमपरिरिगरिसगरिमागरिसा

इत्यासावरी। द्वितीय प्रहरोत्तरम्। ८२। दिनके दू० प्र० में

सावेरी तीव्रगान्धारा धैवतोद्ग्राहसम्भवा ।
मध्यमांशा निहीना चारोहणे गनिवर्जिता ॥ ४४३ ॥

सावेरी में गांधार तीव्र लगता है। धैवत स्वर इसका उद्ग्राह (ग्रह) है उत्तरायता मूर्च्छना से यह उत्पन्न होती है। मध्यम इसका अन्श, निषाद इसमें वर्जित है, अतः 'षाडव' वर्ग है। आरोही में गान्धार निषाद दोनों वर्जित हैं, और अवरोही में केवल निषाद। अतः 'औडुव-षाडव' उपजाति होती है। शुद्ध मेल है।

आरोहावरोह—स रि म प ध सं। सं ध प म ग रि स।

धसरिममगरिसरिगरिसाधधसरिममापधधपमागरि। सरिगरिरिरिससाधधससरिरिममपधधपमपमामरिस। सरिगरिरिरिससाधधमसरिरिममपधधपमपमासरिस। सरिगरिरिरिससाध।

इतिसावेरी। सर्वदा। ८३। हमेशा

गान्धारोद्ग्राहसालङ्के रिगौ कोमल-तीव्रकौ।
धन्यासो मध्यमांशश्च सर्वत्र बहुकम्पनम् ॥ ४४४ ॥

सालङ्ग राग में गान्धार ग्रह, तथा धैवत पर न्यास होता है, मध्यम स्वर अंश संपूर्ण जाति, तथा ऋषभ कोमल, गान्धार तीव्र (अन्य स्वर भी शुद्ध लगते हैं) और सब जगह स्वरों पर बहुत कम्पन होता है। कोई २ इस सालङ्ग को 'सारङ्ग' का ही अपभ्रन्श-समझते हैं सो बात ठीक नहीं ! क्यों कि 'सारङ्ग' का लक्षण यह पहिले लिख चुके हैं। वास्तव में सर्वत्र ग्रन्थों में यह राग नहीं पाया जाता-वस्तुतः यह सालङ्ग शब्द का ही अपभ्रन्श है, जो तीन में से एक-राग-जाति का प्रकार है, जिसे इन्होंने राग नाम वाचक बताया है।

गमपधनिधपनीधपमपमागरीसनीधधनिसरीसनीधगमपागरिसानिधधनीसा । मागरीसनीधधनीसस्मा ।

इति सालङ्गः ॥ सर्वदा ॥ ८४

ऋत्रयोद्ग्राहसंयुक्तः षड्जोद्ग्राहो ऽथवा मतः ।
श्रीरागग्रहगान्धार आरोहे गधवर्जितः ॥ ४४५ ॥

श्रीराग का लक्षण बताते हैं, इसमें ऋषभ स्वर ग्रहत्रयी में आता है, या ग्रह में ऋषभत्रयी होती है। अर्थात्—ग्रह (प्रारम्भ) में ऋषभ का तीन वार प्रयोग होता है।

इसका षड्ज ग्रह माना गया है। गान्धार इसमें तीव्र लगता है (शुद्ध मेल) आरोही में गान्धार-धैवत दोनों वर्जित हैं, तथा अवरोह पूर्ण है, अतः 'औडुव-संपूर्ण' जाति है, स-प वादी सम्वादी हैं।

आरोह—स रि म प नि सं। अवरोह—सं नि ध प म ग रि स।

रिरिरिपमगरिगरिससासानिसनिधपमपनिनिस। निसरिममपपनिनिसरिगरिस-निसनिसनिधपमपममामगरिरिगरिरिगरिसनिनिससस्सा।

इति श्रीरागः। तृतीयप्रहरोत्तरम्। ८५। दिन के तीसरे प्रहर में।

गौर्य्युत्पन्ना पहाड़ी स्याद्गान्धारस्वरवर्जिता ।
उद्ग्राहे षड्जसम्पन्ना न्यासांशयो रि-शोभिना ॥ ४४६ ॥

पहाड़ी रागिनी (ऋषभ धैवत कोमल) पूर्वोक्त गौरी मेल से उत्पन्न होती है। गान्धार स्वर इसमें वर्जित है। अतः 'षाडव-षाडव' जाति होती है। और यह ग्रह में षड्ज द्वारा सम्पन्न है, यानी षड्ज ग्रह है। इसका न्यास ऋषभ स्वर, तथा वही अंश (वा० सं० धैवत) है।

सरिमपधपपमपमरिरिमरिसरिरिसनीस। रिसपधपमपपमरिसरिरिसनीसस्सा।

इति पहाड़ी। तृतीयप्रहरोत्तरम्। ८६। दिन के तीसरे प्रहर में।

विहागड़े गनी तीव्रावारोहे तु रिवर्जिते।
गान्धारोद्ग्राहसम्पन्ने न्यासांशो रिस्वरो मतः ॥ ४४७ ॥

यद्यस्मिन्पञ्चमोद्ग्राहः स्यादारोहे गवर्जनम् ।
मूर्च्छना मध्यमे चापि पराहित्यं सदा भवेत् ॥ ४४८ ॥

विहागड़ा में गान्धार-निषाद दोनों तीव्र होते हैं (शुद्ध मेल है) और आरोही में ऋषभ स्वर वर्जित होता है । अवरोह संपूर्ण है, अतः 'षाडव-संपूर्ण' जाति होती है । गान्धार इसका ग्रह है, और उससे सम्पन्न है तथा ऋषभ स्वर पर न्यास है, और वही अंश (वादी, संवादी धैवत) है ।

यदि इस विहागड़े में पंचम स्वर ग्रह होता है तो आरोही में गान्धार वर्जित होकर अवरोह में तथा आरोह में भी सदा (दोनों ओर से) पञ्चम का राहित्य (हीनता) होती है । अतः 'औडुव-षाडव' जाति होती है । और मध्यम में 'मत्सरी-कृता' मूर्च्छना भी रहती है ।

गमपनिसगरिसनिपमगमपमगरिसनीस । पनिसमगारिसनीस । गमपनीसानी-पमगारिसनिसारिसनिसा । पनिसारिसमगारिसानिपनिसरिसनीसस्सा ।

इति विहङ्गड़ः । तृतीयप्रहरोत्तरम् ॥ ८७ । पू० स० ।

गौरीमेलसमुत्पन्ना षडजोद्ग्राहसमन्विता ।
न्यासांशगसङ्गेपेता पूर्वी सा सुखदायिनी ॥ ४४९ ॥

गौरी मेल (रि०ध० कोमल) से 'पूर्वी' (रागिनी) उत्पन्न होती है । यह षड्ज के उद्ग्राह से समन्वित (सहित) है । अर्थात्-षड्ज ग्रह है । गान्धार स्वर न्यास है, तथा उसी (ग) अंश से उपेत (समेत) है, यह गायन द्वारा सुखदात्री होती है । वर्ग सम्पूर्ण है ।

सरिगमपधनिसनिधपधपमपपमगरिगागमपपमगरिस । (तान समाप्तौ गे) विकर्षणम्) अर्थात्—तान समाप्त हो जाने पर गान्धार पर 'विकर्षण' गमक लगानी होगी । सरिमरिसमधपस । सनिधपधपधमगरिंगा । (विकर्षणम्) फिर विकर्षण रिसमरिगमपधपगरिगा । रिसगमपमगरिगा । (विकर्षणम्) यहाँ भी विकर्षण का प्रयोग है । रिसधपसा ।

विकर्षणः सविज्ञेयः स्वस्थानेऽयं विकर्षति । (गमके)

अर्थात्—विकर्षण उसे कहते हैं जब कि किसी एक स्वर के स्थान पर दूसरा स्वर विकर्षित किया (खींचा) जाता है ।

इति विकर्षणगमकः ।

इति पूर्वी । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ८८ । पू० स० ।

कोमलौ च रिधौ यत्र गनी यत्र च तीव्रकौ ।
मश्च तीव्रतरः प्रोक्तः पूर्वीसारङ्गके पुनः ॥
ऋषभोद्ग्राहसम्पन्ने गपौ न्यासांशकौ मतौ ॥ ४५० ॥

अब 'पूर्वीसारङ्ग' (मिश्रित राग) बता रहे हैं, इसमें ऋषभ-धैवत दोनों स्वर कोमल तथा गान्धार-निषाद दोनों तीव्र लगते हैं। मध्यम तीव्रतर यानी 'अन्तर्मध्यम' (एकोनश्रुति-कोमल पञ्चम) कहा है। ऋषभ स्वर इसका ग्रह, और गान्धार पर न्यास, पञ्चम अंश सम्पूर्ण जाति है।

रिगमपधनिसस्सनिधपमपपमगमगारिगगासनीसस्सा । (तानसमाप्तौ गे विकर्षणम् ।) यहाँ भी तान समाप्त होने पर गान्धार पर विकर्षण गमक देनी होगी। पपमधपमपपमगरिगसारिसनीसस्सा ।

इतिपूर्वीसारङ्गः। तृतीयप्रहरोत्तरम् । ८६ । पू० स०।

रिस्तु तीव्रतरः प्रोक्तऋषभोऽत्रगान्धारोऽभिने ।
सामन्तसंज्ञके रागे न्यासोद्ग्राहांशषड्जके ॥ ४५१ ॥

सामन्त संज्ञा (नाम) वाले राग में (इसकी भी गणना इस समय 'सारङ्ग संघ' में की जाती है) तीव्रतर ऋषभ कहा गया है। और तीव्र गान्धार द्वारा यह शोभित होता है (एक ही स्वर के दोनों नाम) तथा ग्रह, न्यास, अंश तीनों षड्ज पर ही (सम्वादी पञ्चम) हैं।

सरिगमपधनिसस्सनिधपमपमगरिगरिस । ससरिगमपमपपमरिगमगरिससरि गमपधनिसरिगमपमममगरि सस । निधपममगरीसरीसनीसस्सा।

इति सामन्तः। तृतीयप्रहरोत्तरम् । ६० । पू० स०।

धैवतोद्ग्राहधांशान्तो गौरीमेलसमुद्भवः ।
रागो मङ्गलकोशाख्यो धनी यत्र समन्वितौ ॥ ४५२ ॥

अब 'मङ्गलकोश' नामक राग बताते हैं। बहुतेरे इसे मालकोश का पर्य्याय वाचक मानते हैं, किन्तु यह भ्रम है जो लक्षण से ज्ञात होगा, यह गौरी मेल (रि० ध० कोमल) से उत्पन्न होता है। धैवत इसका ग्रह है तथा धैवत स्वर पर ही न्यास (अन्त) और धैवत ही अंश (वा०. सं० ऋषभ) होता है। सूक्ष्मतः—ग्रह, न्यास, अंश सब 'ध' पर हैं। जाति सम्पूर्ण है।

धनिसरिगमपध पमपपमगरिसरिगमगरिसरिसनिधसनिधसनिधधनिसरिसनि धधधनीसस्सा। गमपमगरिसरिसनिधासाधनीस।

इति मङ्गलकोशकः। सर्वदा। ६१। हर समय गाते हैं।

नादरामक्रिया गौरीमेलसम्भवा सभूषिता ।
षडजोद्ग्राहा च निन्यासागेहे गान्धारवर्जिता ॥ ४५३ ॥

'नाद-रामक्रिया' एक प्रकार की (देशी) रामकली बतारहे हैं, गौरी मेल (रि० ध० को० आधुनिक भैरव थाट) से उत्पन्न होती है। मध्यम स्वर से भूषित

(सजित) या मध्यम पर गमकादि से प्रयुक्त होती है। षडज इसका ग्रह है और निषाद पर न्यास होता है। तथा आरोही में गान्धार स्वर वर्जित है, अवरोही में सब स्वर प्रयुक्त हैं। अतः 'षाडव-सम्पूर्ण' वर्ग है।

सरमसरिगमम्मागमपधनिधधपमपमपमममम। सरिमम्म। गमगमपमगरिसरि निससनिधपमपमगमपमगमगरिसरिसनि सरिमम्मगरिसरिसनिसरिममम्मगरिसरिस निसरिमम्मगमपधनिधपधपमपमगमगरिसरिसनी। सरिमागरिसरिस।

इति नादरामक्रिया। प्रथमप्रहरोत्तरम्। ९२। प्रातः गान।

कुडाइ तीव्रगोपेता चारोहे मनिवर्जिता।
गान्धारोद्ग्राहसंयुक्ता पञ्चमांशेन शोभिता॥ ४५४॥
धैवर्योरन्यतरेणैव यत्रावरोहणं मतम्।
गान्धारेण विहीना साप्यवरोहे क्वचिन्मता॥ ४५५॥

'कुडाइ' (रागिनी) में गान्धार तीव्र लगता है। या यह तीव्र ग के उपेत (सहित) है। इसकी आरोही में मध्यम निषाद दोनों स्वर वर्जित हैं और अवरोह पूर्ण है, अतः 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति होती है, शुद्ध मेल है। तथा गान्धार स्वर ग्रह के समेत, और पञ्चम अंश (वा० सं० षडज) होता है। अब मतभेद पर कहते हैं—

जहाँ कि (जिस मत में) धैवत-ऋषभ दोनों से अतिरिक्त या रहित (वर्जित) रूप से अवरोहण माना गया है। (तथा आरोह सम्पूर्ण) तो 'सम्पूर्ण-औडुव' जाति होती है। तथा—

किसी २ मत में वह (कुडाइ) अवरोही में भी गान्धार विहीना (वर्जिता) मानी गई है। तथा आरोह में समग्र-स्वर हो तो 'संपूर्ण-षाडव' जाति होती है। अतः इसके ३ प्रकार हुये।

गपधसारेसनिपमगरिगमारिससरिगपमगधपमगरिगमारिसग गपधनिपसधप-मगरिगगारिसा।

इति कुडाइ। प्रथमप्रहरोत्तरम्। ९३। सवेरे।

तीव्रगान्धारसंयुक्त आरोहे वर्जितौ गनी।
षड्जोद्ग्राहेण सम्पन्ने गौण्ड आम्रेडितस्वरैः॥ ४५६॥

अब शुद्ध गौण्ड (गौड़) राग पर बता रहे हैं।

इसमें गान्धार तीव्र संयुक्त होता है (शुद्ध मेल है) आरोही में गान्धार और निषाद दोनों स्वर वर्जित होते हैं, तथा अवरोह पूर्ण होने से 'औडुव-संपूर्ण' जाति होती है और यह षड्ज-ग्रह द्वारा सम्पन्न है। इसमें प्रायः (पहिले बताये) आम्रेडित स्वरों का प्रयोग होता है।

सारिमपमपधपधनिधपमपमागरिमरिस । सारिमपमागरिसरिरिसधसधस-निधधपमपमागरिसरिस । सारिमपमागरिसरिरिसधसधसरि । मपममगरिसरिरिस-सधस ।

इति गौण्डः । सर्वदा । ६४ । हर समय ।

अवरोहे धगौ नस्तो मस्तु तीव्रतरो भवेत् ।
देवगिरौ गनी तीव्रौ यत्र स्यात्षड्जमूर्च्छना ॥ ४५७ ॥

'देवगिरि' राग लक्षित करते हैं, इसमें मध्यम तीव्रतर होता है, यानी चौथी 'रक्ता' श्रुति वाला (कोमल पञ्चम से १ श्रुति कम) 'अन्तरमध्यम' । तथा गान्धार निषाद दोनों तीव्र होते हैं, (शेष स्वर शुद्ध) और षड्ज स्वर की 'उत्तरमन्द्रा' मूर्च्छना इसमें होती है । अवरोही में धैवत और गान्धार दोनों स्वर वर्जित हैं, आरोह समस्त है, अतः 'सम्पूर्ण औडुव' जाति होती है । षड्ज ग्रह है । सं० पं० वादी सम्वादी स्वर हैं ।

सरिगमपधनिससनिपमरिस । धनिसधनिसरिगमपधपधमपमरिमरिससरिगम-पधनिसरिगमपपमरिस । धनिससधनिसरिसनीसा ।

इति देवगिरिः । द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ ६५ ॥ दोपहर को ।

तदा तु देवगान्धारी पूर्णश्चेद्भैरवो यदा ।
गान्धारादिस्वरोद्ग्राहा स-स्वरांशेन शोभिता ॥
सा यदा रि-स्वरोद्ग्राहा तदारोहे गवर्जिता ॥ ४५८ ॥

देव गान्धारी (रागिनी) तब हो जाती है जब कि भैरव पूर्ण कर दिया जाए मतलब यह हुआ कि इनका भैरव ऋषभ-पञ्चम वर्जित, 'औडुव २' धैवत कोमल शेष स्वर शुद्ध में हैं । अब उसमें ऋषभ-पञ्चम भी लगा दिये जायें तो सम्पूर्ण वर्ग धैवत कोमल, गान्धार आदि स्वर की 'हरिणाश्वा मूर्च्छना' तथा गान्धार ही आदि स्वर-ग्रह, षड्ज स्वर अंश (वादी, सं० पञ्चम) यह देव-गान्धारी बन जाती है या शोभित होती है । अब इसमें यदि गान्धार की बजाय ऋषभ स्वर ग्रह कर दिया जाये या वह देव गान्धारी 'रिस्वरोद्ग्राहा' हो जाये तो आरोही में गान्धार वर्जित तथा अवरोह पूर्ण 'षाडव-सम्पूर्ण' वर्ग, दूसरे प्रकार की देव गान्धार हो जाती है इसमें भी सम्वाद पूर्ववत् सं० पं० का ही होता है । यह इनकी देव-गान्धारी के २ प्रकार हैं ।

भरत के मत में यह 'देव गान्धार' पुल्लिङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है, तथा मेघ का तृतीय पुत्र राग, सम्पूर्ण रि. ग. ध. नि. कोमल (भैरवी थाट) ग. नि. वादी सम्वादी 'देव-गान्धार' माना गया है । बहुतेरे आसावरी थाट में भी सम्पूर्ण रूप से गाते हैं ।

गमपधनिधधपमागरीनिधनीसासस्मानिनिधनी ·नि·ध·ग·म·ग·रीसानिध·नी·सा ।

इति देव गान्धारी । द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ ९६ ॥ दोपहर को ।

गौरीमेलसमुत्पन्ना त्रिवणी मस्वरोज्झिता ।
अवरोहणवेलायां षड्जोद्ग्राह्यांशरि-स्वरा ॥ ४५९ ॥

त्रिवणी रागिनी गौरी मेल (रि० ध० कोमल) से उत्पन्न होती है । इसके अवरोह की वेला (समय) में मध्यम स्वर वर्जित और आरोह सम्पूर्ण होता है । अतः 'सम्पूर्ण-षाडव' जाति होती है । षड्ज स्वर इसका ग्रह तथा ऋषभ अंश (वा० सं० धैवत) होता है ।

सरिगमपधनिससनिधपगरिगरिसनीसा । नि·रि·ग·म·प·ध·नि·ग·म·ग·रि·ग·रि·सा·नि·रि·नि ।
गमपगरिसासरिगमगरिसरिसनीसस्मा ।

कोई २ इसके आरोह में निषाद तथा अवरोह में धैवत वर्जित कर षाडव २ गाते हैं । और रि. ध. कोमल मध्यम चढ़ी लगाते हैं । कोई आरोह में म. नि. वर्जित कर 'औडुव-षाडव' और कोई आरोह में शुद्ध मध्यम तथा अवरोह में चढ़ी लगाते हैं, श्लोक के उत्तरार्ध का एक अर्थ यह भी है कि 'अवरोहण करते समय तार षड्ज से चलकर ऋशभ कोमल अन्श स्वर होता ।

इति त्रिवणी । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ९७ ।

दिन के तीसरे प्रहर के उत्तर में ३ बजे के बाद ।

रिस्तु तीव्रतरः प्रोक्तो मस्तु तीव्रतरो भवेत् ।
अतीतीव्रतमो गः स्यान्निषादस्तीव्रः स्यात्कुरङ्गके ॥
षड्जोद्ग्राहेण सम्पन्ने न्यासांशौ षड्जपञ्चमौ ॥ ४६० ॥

कुरङ्ग राग में ऋषभ तीव्रतर यानी शुद्ध गान्धार तथा मध्यम भी तीव्रतर (कोमल पञ्चम से १ श्रुतिन्यून) होता है । और अति तीव्रतम गान्धार यानी शुद्ध मध्यम, तथा निषाद तीव्र लगता है । यह षड्ज स्वर-ग्रह से सम्पन्न है, और और न्यास भी षड्ज पर ही है । पञ्चम स्वर अन्श (वा० स० षड्ज) होता है । जाति सम्पूर्ण २ है ।

सरिगमपधनिससनिधपगामपमगरिगरीस । ससरिगमपधपमपपमगमगरी-
ससरिगमपप्पमगमपगरिसनीसस्सा ।

इति कुरङ्गः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ९८ । पू० स० ।

रिधौ च कोमलाख्यातावतितीव्रतमश्च गः ।
मश्च तीव्रतरो यत्र निषादस्तीव्रसंज्ञकः ॥
सौदामिन्यान्तु गान्धारस्वरोद्ग्राहः सतां मतः ॥ ४६१ ॥

सौदामिनी रागिनी में—ऋषभ-धैवत दोनों स्वर कोमल कहे हैं। और गांधार अति तीव्रतम यानी शुद्ध मध्यम लगता है। और इसमें तीव्रतर मध्यम यानी वही पूर्वोक्त अन्तरमध्यम भी लगाया जाता है। निषाद तीव्र होता है। तथा इसमें गांधार स्वर का उद्ग्राह श्रेष्ठों (सङ्गीतज्ञों) का माना हुआ है।

गमपधनिनरिसनिमनिधपमपापमगमगरिसा । सरिगमपमपमगरिससरिग-मगरिमासरिसनिसस्सा । गमपधपमपागमपमागरिसानीसस्सा ।

इति सौदामिनी । तृतीय प्रहरोत्तरम् । ९९ । पूर्वोक्त समय ।

षट्श्रुतिर्मध्यमो यत्र धैवतः कोमलो भवेत् ।
निषादस्तीव्र आख्यातो वैजयन्ती रिपूर्विका ॥
आरोहणेऽवरोहे च कादाचित्कौ गधौ मतौ ॥ ४६२ ॥

वैजयन्ती रागिनी बताते हैं, इसमें मध्यम स्वर ६ श्रुति वाला होता है। यानी मध्यम की स्वतः चार श्रुतियां तथा उससे अधिक पञ्चम की २ श्रुतियां लेकर 'रक्ता' श्रुति (वही तीव्रतर मध्यम) और धैवत कोमल होता है। निषाद इसमें तीव्र कहा गया है। और यह ऋषभ स्वर पूर्वा (ग्रहवाली) अथवा अभिरुद्गता मूर्च्छना (या मध्यम ग्राम की कलोपनता) के साथ होती है। तथा कभी २ आरोही में गान्धार और अवरोही में धैवत ग्रह (प्रारम्भिक स्वर) भी माने जाते हैं। सम्पूर्ण वर्ग वादी सम्वादी, स.प.। कोई इसे ही 'जैजैवन्ती' 'जयजयन्ती' या 'जयन्ती' रागिनी बताते हैं।

भरतानुसार 'जयजयवन्ती' दीपक राग की चतुर्थी पुत्रवधू (पतोहू) 'उड्डानिक' या अड्डान (अड्डाने) की भार्य्या दोनों निषाद, आरोह में गान्धार-धैवत वर्जित, अवरोह पूर्ण 'औडुव सम्पूर्ण' रि. ध. वादी सम्वादिनी मानी गई है।

रिमपनिससनिपमपमरिगरिस । रिमपनिधपमपमरिगरिस । निसरिमपमगरि [रु सरिसनिधपमपनिसस्सा ।

इति वैजयन्ती । द्वितीय प्रहरोत्तरम् । १०० । दोपहर के बाद ।

गनिभ्यां वर्जितो हंसो रिधकोमलसंयुतः ॥ ४६३ ॥

हंसराग गान्धार-निषाद दोनों स्वरों से वर्जित होता है। अतः 'औडुव-औडुव' है और ऋषभ धैवत दोनों कोमल स्वरों के समेत गाया जाता है।

सारिमपधधपमरिरिमपपमरिरिमरिसरिसधसस्म । सरिमपमपधससधमपमारिससधसस्म ।

इति हंसः द्वितीय प्रहरोत्तरम् । १०१ । दोपहर के उत्तर में ।

कल्याणमेलसम्भूतो रागः कोकिलसंज्ञकः ।
सर्वदा मनिहीनः स्याद्गान्धारादिकमूर्च्छनः ॥ ४६४ ॥

कोकिल नामक राग कल्याण मेल से उत्पन्न हुआ या होता है । यह सर्वदा (दोनों ओर से) मध्यम निषाद वर्जित 'औडुव २' होता है । तथा गान्धार स्वर पूर्वक (हरिणाश्वा) मूर्च्छना होती है । अतः षड्ज ग्रह, स.प. वादी सम्वाद हैं ।

गपधससाधपगपगरिसरिसासरिगपधसागारिसरिधसधरागपगारिसा । सरिसरिगपागारिसरिगरिधससधससरिगपगरिसरिसधसस्म ।

इति कोकिलः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । १०२ । अपराह्न काल में ।

कोमलाऽऽौ रिधौ यत्र गनी च तीव्रसंज्ञितौ ।
मस्तीव्रतरसंज्ञः स्याज्जयश्रीनामके पुनः ॥
आरोहणे रिधौ नस्तो निस्वरोद्ग्राहमण्डिते ॥ ४६५ ॥

जयश्री नामक राग में—ऋषभ, धैवत दोनों स्वर कोमल होते हैं। तथा गान्धार निषाद दोनों तीव्र (शुद्ध) लगाये जाते हैं । इसमें मध्यम स्वर तीव्रतर लगता है । (वही कोमल पञ्चम १ श्रुति वञ्चित) पुनः—आगे कहते हैं—आरोही में ऋषभ धैवत दोनों वर्जित हैं, और अवरोह पूर्ण है । अतः—'औडुव-सम्पूर्ण' जाति होती है । और निषाद स्वर पर इसका ग्रह होता है ।

निसगरिगमपनिधपमगमगरिसनिसगरिसनीसगारि । गमपमपमगरिसनीसापनीसागमपनीसारिसनिसनिधपमगमपमगरिस । नीनीसगारिरिसनीनीसस्मा ।

इति जयश्रीः । प्रथम प्रहरोत्तरम् । १०३ । सवेरे ।

गौरीमेलसमुद्भूतो धैवतस्वरवर्जितः ।
आरोहणे रिहीनः स्यान्निषादादिः सुरालयः ॥ ४६६ ॥

'सुरालय' राग गौरीमेल (रि. ध. कोमल) से उत्पन्न हुआ है । धैवत स्वर इसमें सर्वथा वर्जित है तथा आरोही में ऋषभ नहीं लगता । अतः—'औडुव-षाडव' जाति होती है । यथा—आरोही स ग म प नि सं । अ०-सं नि प म ग रि स ।

निषाद स्वर इसका ग्रह है ।

नीसगमपनीसनिपमगरिसनिस । नोसगमगमगरिसनिस । नीसगमपपमगरिसरिसनिसपनीसगमपमगरिसरिसनिसनिपमपनीसगमपमगरिसरिरिसनिस ।

इति सुरालयः । तृतीयप्रहरोत्तरम् । १०४ । अपराह्न काल में ।

गौरीमेलसमुद्भूत आरोहे मनिवर्जितः ।
गधहीनावरोहः स्यादर्जुनसंज्ञकः ॥ ४६७ ॥

अर्जुन नामक राग गौरी (रि० ध० कोमल) मेल से ही उत्पन्न होता है। यह आरोही में मध्यम-निषाद वर्जित है तथा अवरोही में गान्धार-धैवत वर्जित है। अतः दोनों ओर से 'औडुव-औडुव' जाति होती है। यथा—आरोह—स रि ग प ध सं।

अवरोह—सं नि प म रि स । गान्धार स्वर इसका ग्रह है तथा स, प, वादी सम्वादी स्वर हैं।

गपधसमनिपमरिमगपपधधममधसरिगधमरिस । रिरिगरिगमरिसमरिस-रिसरिसनिपपधनिपममपममरिगमरिसरिसधसमरिसधसमसरिसमरिगमरिसरिससध-सधसस्म ।

इत्यर्जुनः । द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ १०५ ॥

कल्याणमेलसम्भूतो धहीनः पञ्चमं गतः ।
ऐरावतो गपूर्वोक्तो न्यासषड्ज विभूषितः ॥ ४६८ ॥

ऐरावत राग कल्याण मेल से उत्पन्न हुआ है और यह धैवत वर्जित 'पाडव-पाडव' वर्ग का होता है। गान्धार स्वर इसका ग्रह तथा षड्ज स्वर पर न्यास द्वारा सुसज्जित रहता है और पञ्चम राग के समान या पञ्चम स्वर पर इसकी विशेष गति होती है।

गमपनिसरिसनिपमगमपगमगरिगपनिसरिसनीस । गमपमगरिसनीस । गमपनि-पमगमपमपमगरि । सरिसनिसपनिसरिसमगरिनिसपनीसस्म ।

इत्यैरावतः । द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ १०६ ॥ दोपहर को।

शङ्कराभरणे मेले रागः कङ्कणसंज्ञकः ।
पहीनो गादिराख्यातो बहुमध्यमसङ्गतः ॥ ४४६ ॥

शङ्कराभरण के मेल में 'कङ्कण' नामक राग उत्पन्न होता है। इसमें पञ्चम स्वर वर्जित होता है। अतः इसको 'पाडव २' जाति होती है। गान्धार स्वर इसका ग्रह कहा गया है तथा बहुत सी मध्यमों के सङ्ग से यह गाया जाता है। अतः वही (मध्यम स्वर) अंश (वा० स० तार षड्ज) और सर्व स्वर शुद्ध हैं।

गमनिसरिसनिसनिधनिधमगमममगमगरिसरिसरिसनिसधनिस । मधनिरि-सनिसस्प । मममगममगरिगममधनिसनिधनिध्मगमगमपमरिसरिसनिसस्मा ।

उपरोक्त प्रस्तार में भी अवरोही में एक जगह पञ्चम स्वर वर्जित प्रयुक्त हुआ है जो विवादी है। इसकी व्याख्या पूर्व में की जा चुकी है।

इति कङ्कणः । द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ १०७ ॥ दोपहर को।

रत्नावल्यां रिनी नस्तस्तीव्रतीव्रतरौ गमौ ।
गान्धारमूर्च्छना यत्र तत्रौक्तो न्यासपञ्चमः ॥ ४७० ॥

रत्नावली (रागिनी) में ऋषभ तथा निषाद दोनों स्वर वर्जित हैं। अतः यह 'औडुव-औडुव' होती है। इसमें गान्धार तीव्र लगता है और मध्यम तीव्रतर। इसमें गान्धार स्वर की हरिणाश्वा मूर्च्छना होती है। अतः गान्धार ग्रह है और पञ्चम स्वर पर इसका न्यास कहा गया है। (स. ध. में सम्वाद है।)

गमपधससगसधसधपमगपगमपममपधसधपमपम। मगसधस। गमपमपमपाप। धसधपधपपममप। ममगसधसस्म।

इति रत्नावली। द्वितीय प्रहरोत्तरम् ॥ १०८ ॥ पूर्वोक्त समय।

धहीने कल्पतर्वाख्ये तीव्रतीव्रतरौ गरी ।
ऋषभोद्ग्राहसंयुक्ते षड्जन्यास समन्विते ॥ ४७१ ॥

कल्पतरु नामक राग में धैवत स्वर वर्जित होता है। अतः 'पाडव-पाडव' वर्ग है। इसमें गान्धार तीव्र (शुद्ध) तथा ऋषभ तीव्रतर यानी शुद्ध गान्धार लगता है। 'गान्धारः शुद्ध एवासौ रिस्तीव्रतर इष्यते।' श्लो०-३२३। व्यर्थ में एक चीज़ के दो नाम लिखे हैं। ऋषभ स्वर पर इसका ग्रह है और षड्ज पर न्यास समन्वित होता है।

रिगमपनिसमनिपमपमगरिस। रिगमरिगमपमगरिसनिसपनिसरिस निसरिगम पनिपमगरिगमगरिसनिसस्मा। पनिसपनिसरिगमगरिसनिसस्मा।

इति कल्पतरुः। तृतीय प्रहरोत्तरम् ॥ १०९ ॥ अपराह्न काल में।

श्रीरागमेलसम्भूता सोरठी रिस्वरोद्ग्रहा।
पञ्चमाद्धुम्फितोपेता रिषर्य्यन्तं पुनस्तथा ॥ ४७२ ॥

मद्धुम्फिता मपर्य्यन्त मग्रस्वस्थान षड्जका।
तथैव पञ्चमोपेता रिस्वरच्यवितोदिता ॥ ४७३ ॥

श्री राग के मेल (थाट) से सोरठी (रागिनी) उत्पन्न होती है। यह सोरठ या 'सोरठी' नाम प्रायः अपभ्रंश है क्योंकि आर्ष (ऋषि प्रणीत) ग्रन्थों में जैसे नारद अगस्त्य, मतङ्ग, भरत, सर्वत्र 'सौराष्ट्री' ही पाया जाता है। अस्तु। इसमें ऋषभ उद्ग्राह (प्रारम्भिक) स्वर है। तथा-पञ्चम से लेकर ऋषभ पर्य्यन्त की 'हुम्फित' गमक लगाई जाती है। अतः— यह सोरठी लक्षित हो जाती। फिर उसी प्रकार षड्ज से लेकर मध्यम पर्य्यन्त की हुम्फित गमक प्रयुक्त होती है, पहिली अवरोह की तथा दूसरी गमक आरोह की है। षड्ज स्वर यहाँ 'अग्रस्वस्थान' गमक बद्ध

रहता है। उसी प्रकार पञ्चम स्वर (पुनः स्वस्थान) के उपेत होती है। ऋषभ स्वर के द्वारा यह 'च्यविता' बताई गई है। यानी ऋषभ पर 'च्यवन' होता है।

रिमपसानिधपमपधपरामागरीधसा । निसारिमपरीसनिधपमपनीधनिधपमम धाधपमागरीधसा । निसारिमपरीसनिधपमपनीधनिधपममधाधपमागगारिरिमपमा गरीसानिस ।

इति सोरठी। प्रथमप्रहरोत्तरम् । ११० । सवेरे ।

शुद्धस्वरसमुद्भूतो गान्धारोद्ग्राहसंयुतः ।
आरोहे त्यक्तधो ज्ञेयो गान्धारच्यवितोदितः ॥ ४७४ ॥
अग्रस्वस्थानसंयुक्तः पुनः स्वस्थानसंयुतः ।
आन्दोलितनिषादाद्यो मारुर्धान्दोलितो मुहुः ॥ ४७५ ॥

अब मारु राग के बाबत बता रहे हैं। 'मारु' इस समय मालवी को कहते हैं। कोई २ मालव को ही मारु तथा कोई उसकी भार्या को 'मारु' मानते हैं। यह नाम भी पश्चात् प्रचलित है, अतः आर्ष ग्रन्थों में नहीं मिलता है।

मारु शुद्ध स्वरों से उत्पन्न होता है। गान्धार स्वर इसका उद्ग्राह है। यह आरोही में धैवत-वर्जित तथा अवरोह-सम्पूर्ण 'षाडव-सम्पूर्ण' जानना चाहिये। गान्धार स्वर इसमें च्यवित बताया गया है। यानी 'ग' पर च्यवन होता है। इसमें आदि निषाद यानी आरोही के निषाद पर आन्दोलन होता है, अथवा-पहिले निषाद (क्रियात्मक) आन्दोलित रहता है, फिर 'अग्र स्वस्थान' (गमक) के साथ पीछे वही 'पुनः स्वस्थान' के साथ प्रयुक्त होता है। तथा धैवत पर भी मुहुः (बार बार) आन्दोलन होता है।

नोट—पारिजात के रागों को कार्य रूप में परिणित करने वालों को चाहिये कि पहिले वीणा या सितार अथवा अन्य किसी तन्तु वाद्य (सारङ्गी, बेला आदि) पर 'गमक प्रकरण' को भली भाँति अभ्यस्त करलें।

गपपनीध । निधधापमगरिस । गमपमगमपनिसनिधपमपमगमगरिससरिगमप मगरिस । गमपनीसगारिसनिसनिसनिधपगमपागमगारिस ।

इति मारुः । तृतीयप्रहरोत्तरम् । १११ । अपराह्णकाल में ।

नाट्यमेलनमुद्भूतो रागः कुमुदसंज्ञकः ।
आरोहणे मवर्ज्योक्तो गान्धारोद्ग्राहशोभितः ॥

नाट्य (शुद्ध नट) मेल से 'कुमुद' संज्ञक (नामक) राग उत्पन्न होता है। जिसमें ऋषभ-धैवत तीव्रतर (यानी आधुनिक बिलावल) शुद्ध मेल है। यह आरोह में मध्यम वर्जित, तथा अवरोह पूर्ण 'षाडव-सम्पूर्ण' बताया गया है। और गान्धार स्वर इसके ग्रह में सुशोभित होता है। स-प स्वरों में सम्वाद है।

गपधनिससनिधपमगरिसरिगपमगरि सनीसगपधनिसनिधपधनिसनिधपम गरिस। गपपगपमगरिगपमगरिसनीसरिसनीसरिसनिसरिगपमगरिसनीसा।

इति कुमुदः। तृतीयप्रहरोत्तरम् ११२। अपराण्हकाल में।

नाट्यमेलसमुद्भूतो रागश्चक्रधरः स्मृतः।
पञ्चमेन विहीनः स्यात्षड्जोद्ग्राहेण शोभितः॥ ४७७॥

चक्रधर राग उपरोक्त नाट्य (नट) मेल से ही उत्पन्न होता है। ऐसा कहा कहा गया है। इसमें पञ्चम स्वर वर्जित होता है। अतः 'षाडव-षाडव' वर्ग है। और षड्ज स्वर इसका ग्रह है।

आरोहन अवरोह में, पञ्चम जो न दिखाय।
मध्य वादि सम्वादि तें, राग चक्रधर गाय॥ (चन्द्रिकासार)

[illegible] धनिसनिधनिसधनिसरिगमगरिस।

इतिचक्रधरः। तृतीयप्रहरोत्तरम्। ११३। पू० स०।

भैरवीमेलसम्भूतो गान्धारेण विवर्जितः।
आरोहे तु निवर्जः स्यान्मादिः सिंहरवः स्मृतः॥ ४७८॥

'सिंह रव' राग-भैरवी मेल से उत्पन्न होता है। गान्धार स्वर इसमें सर्वथा वर्जित है। और आरोह में निषाद वर्जित होता है। अतः 'औडुव-षाडव' जाति होती है। मध्यम इसका आदि स्वर (ग्रह) है, ऐसा कहा गया है।

मपधपमरिमधपमनिधपधपमपरिमध मम्मा। रिमपमरिसधसधसरिमपधसरि सनिधपधपमपमरिमधसम्मा। रिमपमरिसधसरिमपधसरिसनिधपधपमपमरिमपमरिमधसम्मा।

इति सिंहरवः। तृतीयप्रहरोत्तरम्। ११४। पू० स०।

श्रीरागमेलसम्भूता गस्वरेण विवर्जिता।
मञ्जुघोषा धपूर्वा स्यादारोहे त्यक्तनिस्वरा॥ ४७९॥

मञ्जुघोषा (रागिनी) श्रीराग के मेल से उत्पन्न होती है। गान्धार स्वर इसमें सर्वथा तथा आरोह में निषाद वर्जित होता है, अतः 'औडुव-षाडव' जाति है। धैवत इसका पूर्व स्वर (ग्रह) है। इसे यदि 'शुद्ध मेल' लिख देते तो क्या आपत्ति थी? क्योंकि इसके श्रीराग में भी तो कोई कोमल स्वर नहीं है।

धसरिमपधसनिधपधमरिस। धमरिमपधपमधपमपमरिमपमरिमरिसधसनिधपधपमपमरिमपपमरिसधससम।

इति मञ्जुघोषा। तृ० प्र०। ११५। पू० स०।

मुखारीमेलसम्भूता महीना शिवबल्लभा ।
न्यभावोद्ग्राहगान्धारा पांशन्याससुशोभिता ॥
अवरोहण वेलायां निषादेन सुशोभिना ॥ ४८० ॥

शिव वल्लभा (रागिनी) मुखारी मेल से उत्पन्न होती है । (रि० ध० कोमल तथा शुद्ध दोनों) मध्यम स्वर इसमें सर्वथा वर्जित होता है तथा आरोही में निषाद का अभाव रहता है, यानी वर्जित होता है और अवरोही की वेला में (समय में) निषाद द्वारा सुशोभित होती है । यानी लगाया जाता है । अतः 'औडुव-षाडव' होती है । इसका ग्रह गान्धार है । तथा न्यास पञ्चम स्वर पर है । पञ्चम ही अंश (वादी, सम्वादी षड्ज) के द्वारा सुशोभित रहती है ।

गपधसगसनिधपनिधपगधधपगगरिगरिरिरिरि रि । पपगपपगरिरिगरिसरिरिसधसगा । पापधानिधपनिधपपधधपगगरिसरिरिसधस ।

इति शिवबल्लभा । द्वितीयप्रहरोत्तरम् । १।६ । दोपहरको ।

शुद्धमेलसमुद्भूतः षड्जादिः स मनोहरः ।
आरोहे गरिमैस्त्यक्त आन्दोलितपसान्वितः ॥ ४८१ ॥
धैवतं प्राप्य तस्माच्च सन्निवृत्तो ऽत्र कम्पितः ।
पञ्चमात्षड्जभासाद्य निवृत्तो मध्यमं प्रति ॥
तत्राप्यान्दोलितो गे च री च स्वस्थानशोभितः ॥ ४८२ ॥

मनोहर राग शुद्ध मेल (विलावल) से उत्पन्न होता है । षड्ज इसका ग्रह है । आरोही में गान्धार, ऋषभ तथा मध्यम इन तीनों स्वरों के द्वारा वर्जित होता है । और अवरोह पूर्ण है ।

'स मनोहरः' यानी वह मनोहर राग है जो कि उपरोक्त आरोहाऽवरोह तथा-'प-स' के आन्दोलन के समेत होता है । अर्थात्—'प-स' दोनों स्वर आन्दोलित होते हैं । यही इसके सम्वादी वादी स्वर हैं । जिनपर कि मींड़ दी जाती है । उससे धैवत पर पहुंच कर यानी षड्ज से धैवत पर जाकर 'सन्निवृत्त' (गमक) होती है । और यहाँ वह 'सन्निवृत्त' गमक 'कम्पित' में परिणित हो जाती है । यानी स्वर कम्पन के साथ पञ्चम से षड्ज पर आते हैं । अर्थात्—वही पूर्वोक्त 'प-स' का आन्दोलन फिर होता है । और षड्ज पर पहुंच कर फिर मध्यम पर लौटते हुए 'निवृत्त' नामक गमक प्रयुक्त होती है और वहाँ भी (मध्यम पर) गान्धार में आन्दोलन किए गए द्विप्रयुक्त ऋषभ 'पुनः स्वस्थान' (गमक) के साथ शोभित होते हैं ।

भरत के सिद्धान्त पर यह राग (मनोहरा) स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है । और दीपक राग की पाँचवीं पुत्रवधू (पतोहू) 'कर्णाटक' राग की भार्य्या मानी

गई है। जिसमें गान्धार-निषाद कोमल, शेषशुद्ध, ऋषभ वर्जित 'षाडव-षाडव' 'म-सं' वादी सम्वादी स्वर, तथा अवरोह में ऋषभ विवादी बन के लगता है।

ससपापधनिधपमापधनिसानिधपमापधनिधपमागारीसा। सपसपापधपपपाप मपानिधधपासापासापामागारीसा ।

इति मनोहरः। द्वि० प्र०। ११७। दोपहर को।

भैरवीस्वरसम्भूता निषादोद्ग्राहसंयुता ।
गान्धारे नैम्न्ययुक्ता या ज्ञेया सानन्दभैरवी ॥ ४८३ ॥

जोकि भैरवी के स्वरों (मेल) से उत्पन्न होती है। निषाद जिसका ग्रह है। गान्धार स्वर जिसमें बहुत कम लगता है। वह 'आनन्द-भैरवी' जाननी जाहिये।

निनिसगगागरिसगरिसनिनिस्मा। निनिमगगममपमगगमगगागरिसनिनीसस्मा धापममपमगगमगगागगगागगरिसनिनिसस्मा।

इत्यानन्दभैरवी। सर्वदा। ११८। हर समय।

शंकराभरणो रागः शङ्करानन्दको भवेत् ।
रिगपास्तत्र चांशा स्यू रिन्यासेन सुशोभितः ॥
स्वस्वसम्वादिनां योगाद्यत्र स्याद्दृढकम्पनम् ॥ ४८४ ॥

शङ्कराभरण राग शंकर (शिवजी) को आनन्द करने या देनेवाला होता है। अथवा वही 'शंकरानन्द' नामक राग हो जाता है, यदि वह ऋषभ स्वर को न्यास बनाकर सुशोभित हो तो, और यदि उसमें ऋषभ, गान्धार तथा पञ्चम यह स्वर अंश हों, और वे अपने २ सम्वादी स्वरों के द्वारा यानी प्रत्येक अंश स्वर प्रत्येक संवादी स्वर के योग से जहाँ अति कम्पन को प्राप्त हो। जैसे—'रि-ध' और 'ग-नि' तथा 'प-स' इन स्वरों में कम्पन हो।

सरिगमपप्पपपमपप्पपसमगरिगगागागरिगगागारिसरिगरिस। रीसरीसरीगरिस रीसस्मनिधनिसरीसनिमसासरिगमपासपारिधामनीपस । सनिधपमपमगगागारिस रिस ।

इति शंकरानन्दः। सर्वदा। ११९। प्रत्येक समय गाते हैं।

आरोहणे नि-योगेन सैन्धवो मानवी मता ॥ ४८५ ॥

'सैन्धव राग' जो सबसे प्रथम संख्या में (राग प्रकरण में) आचुका है। उसी की आरोही में यदि निषाद स्वर का योग कर दिया (जोड़ दिया) जाए तो 'सैन्धव' राग का 'मानवी' राग माना जाता है। भावार्थ यह हुआ कि सैन्धव, जो 'औडुव सम्पूर्ण' है। उसी की आरोही में यदि निषाद स्वर और लगा दिया जाये। यानी

आरोह केवल गान्धार वर्जित, तथा अवरोह समग्र 'षाडव-सम्पूर्ण' रखा जाये। तो सैन्धव से परिवर्तित नाम 'मानवी' हो जाता है।

धनिसरिमपमगरिसानीधाधानीसारिमपानिधपमागरिसरिसा । धनिसारिमा गरिपमगरिसरीसधधनिस ।

इति मानवी। सर्वदा। १२०। हमेशा।

कल्याणमेलसम्भूता राजधानी सुखप्रदा ।
आरोहणे धहीना स्याद्बहुकम्पमनोहरा ॥
आम्रेडितस्वरैर्युक्ता ऽवरोहे ऽपि गवर्जिता ॥ ४८६ ॥

राजधानी (रागिनी) कल्याणमेल से उत्पन्न होती है। और वह सुख देने वाली है। यह आरोही में धैवत वर्जित, तथा अवरोही में भी गान्धार वर्जित होती है अतः इसका 'षाडव-षाडव' वर्ग होता है। इसमें प्रायः अधिक स्वर कम्पन होता है। जिससे यह मनोहरा हो जाती है। तथा इसमें 'आम्रेडित' (द्विरुक्त) सस, गग, मम इत्यादि स्वरों का प्रयोग होता है।

सरिगमपनीसारिसनिसनिधपममरिसनिससरिसनिपमगपगमपमधमरिमसनीसा । सारिगमपपममरिस। पनिसपनिसरिगमपममरिसनिपनीसस्मा।

इति राजधानी। सर्वदा। १२१।

गौरीमेलसमुद्भूता षड्जोद्ग्राहा ऽथ शर्वरी ।
सन्यासा पञ्चमान्शा या सनिन्यासेन शोभिता ॥ ४८७ ॥

शर्वरी (रागिनी) गौरी मेल (रि. ध. कोमल) से उत्पन्न होती है। षड्ज स्वर इसका उद्ग्राह (ग्रह) है। और षड्ज ही न्यास (तोड़) तथा पञ्चम स्वर अन्श होता है तथा जो षड्ज निषाद के न्यास से शोभित होती है। यानी न्यास पहिले ही षड्ज बता चुके हैं। कहीं निषाद पर भी होता है। यह भाव है। अथवा 'सन्यास' वाली है।

सरिगमपधनिसरसनिधपमपधपम । पप्पापमपप्पापमधनिधपमासरिगमागरिस-सस्मस्मस्मससनिसनिधनिसनिधनिसनिधनिधपमगमपमगमग । रिसानिधनिसरिग-रिसनिधनिसस्मा।

इति शर्वरी। सर्वदा। १२२। हमेशा।

रिपाभ्यामुज्झितो रागः मसान्शो शुद्धकैशिकः ।
निगधैकोमलैर्युक्तः मूर्च्छना मत्सरीकृता ॥ ४८८ ॥

'शुद्ध कैशिक' राग मत्सरीकृता मूर्च्छना से उत्पन्न होता है। मध्यम स्वर इसका अन्श (वादी, सम्वादी तार षड्ज) है। और मध्यम ही ग्रह है। इसमें ऋषभ पञ्चम दोनों स्वर वर्जित हैं। अतः जाति 'औडुव-औडुव' होती है। तथा निषाद गान्धार और धैवत वह तीनों स्वर कोमल प्रयुक्त होते हैं।

मगमधनिससमममगमगसनिधनिसममगमधमगमगस । धनिसमगमधमनिधम-गमधनिसधनिधममगस । गमधमधनिसगमनिधसनिधमगमधपधनिस । धनिसधनि-समगमगससनिधमगसनिधनिसगमसनिधनिधमगप ।

इति शुद्धकैशिकः । तृतीय प्रहरोत्तरम् । १२३ । तीसरे प्रहर दिनके ।

शुद्धमेलसमुद्भूतः तैलङ्गो रिधवर्जितः ।
गान्धस्तारे विवादी स्यादृषभस्तन्मनाग्भवेत् ॥ ४८६ ॥

तैलङ्ग राग शुद्ध मेल (विलावल) से उत्पन्न होता है । इसमें ऋषभ-धैवत दोनों स्वर दोनों ओर से वर्जित रहते हैं । अतः इसको 'औडुव-औडुव' जाति होती है । गान्धार स्वर इसका अन्श (वादी, सम्वादी-निषाद) होता है । तथा-ऋषभ स्वर विवादी होकर तार सप्तक में वह थोड़ा सा प्रयुक्त होता है ।

नीसगागमगसासागमपमगसा । नीसागमपनीपमपगमपनीपमनीपमपगमगसा गमपनीपसानीपमगनीपसा नीनीपमगगमपनीपमगमगपपगमगसा । निसागमपनीपसा-नीपनीसागीसानिपनिसानीपमगमपनीपमगमगसा ।

इति तैलङ्गः । प्रातःकालीयः । १२४ । सूर्य्योदय से प्रथम । कोई रात के दूसरे कोई तीसरे प्रहर में गाते हैं ।

गान्धारमूर्च्छनोत्पन्ना मांशा भीमपलासिका ।
आरोहे रिधहीना स्याच्छन्यासा गनिकोमला ॥ ४९० ॥

भीमपलासिका (पलासी, रागिनी) गान्धार स्वर आदि हरिणाश्वा अथवा अश्वक्रान्ता मूर्च्छना से उत्पन्न होती है । मध्यम स्वर इसका अंश होता है और गान्धार ग्रह है । इसकी आरोही ऋषभ-धैवत दोनो स्वर वर्जित हैं तथा अवरोह पूर्ण है । अतः 'औडुव-सम्पूर्ण' जाति मानी जाती है । षड्ज स्वर पर न्यास होता है । और गान्धार-निषाद दोनों स्वर इसमें कोमल लगते हैं । शेष स्वर शुद्ध होने से आधुनिक काफी का मेल (थाट) होता है ।

सानिसापनिसानिसागरीसासानिधपमपनिपनिसा । निसापनिसानिसागरीसा [illegible] । ममगसगमपपमपगमगमगपपम-निसागमपमपमगसगमपागमनिसागमपगमसागमगरिसा । निसागमपगमगपपमपगमग मपनिधपधपमपगमनिसागमपगमपनिधपमपगमसागमपगरिस ।

इति भीमपलासिका । तृतीय प्रहरोत्तरम् । १२५ । दिनके तीसरे प्रहर के उत्तर में । बहुतेरे चौथे प्रहर दिन में सूर्य्यास्त समय तक गाते हैं ।

इति राग प्रकरणम्

यहाँ तक यानी ३५७ श्लोक से लेकर ४६० श्लोक पर्य्यन्त १३३ छन्दों में अहोबला चार्य्य 'राग प्रकरण' समाप्त करते हैं, जिनमें पूरे १२५ सवासौ रागों का लक्षण वर्णन किया है। पिछले शेष १० छन्दों में कुछ राग-पारिभाषिक आवश्यक य बातें लिखकर ग्रन्थ समाप्त करेंगे। अतः पारिजात के पूरे ५०० पाँचसौ श्लोक समाप्त हो जायेंगे। यही नहीं कि इस १२५ की संख्या में ही सब राग पूर्ण हो चुके हैं अनेकों प्रचलित-अप्रचलित (मार्गी-देशी) राग फिर भी रह ही गए हैं। अतएव आगे के के छन्द में यही बता रहे हैं।

अनेनैव प्रकारेण रागा अप्यमिता मताः ।
शतञ्च पञ्चविंशत्या प्रोक्ता लोकसुखाय च ॥ ४६१ ॥

जैसे लक्षण अभी तक रागों के लिये हैं, इसी प्रकार से राग तो बहुत से माने गए हैं। यह तो मैंने १२५ राग सङ्गीत-संसार के सुख के लिये वर्णन किये हैं।

एकस्मिन्नौडुवे मेले न रागान्तरसम्भवः ।
स्वरेषु पञ्चसु स्थायी यतो भवति सर्वदा ॥ ४६२ ॥

एक औडुव मेल के अन्दर रागों का अन्तर (भेद) सम्भव या ज्ञात नहीं होता। क्योंकि स्थायी तो हमेशा (समस्त औडुवीय रागों मे) पाँच स्वरों में ही हुआ करती है।

रसे वीरेऽद्भुते रौद्रे दीप्ता जातिरुदीरिता ।
मृदुर्जातिश्च शृङ्गार आयता हास्यके रसे ॥ ४६३ ॥

वीर, अद्भुत, रौद्र। इन तीनों रसों में 'दीप्ता' जाति बताई गई है। ज १—रौद्री, २—वज्रिका, ३—उग्रा, ४—तीव्रा। इन ४ श्रुतियों में आती है। सबके लिये स्वर प्रकरण पढ़ो) और शृङ्गार-रस में मृदु-जाति तथा हास्य-रस में 'आयता' जाति होती है।

दैन्ये च [illegible] च भयानके ।
हास्यशृङ्गारयोर्मध्ये रसेष्वेतेषु जातयः ॥ ४६४ ॥

दैन्य अर्थात्—करुण रस में 'करुणा' नामक जाति होती है और वीभत्स, भयानक, हास्य, शृङ्गार में मध्या जाति होती है। यानी शृङ्गार में 'मृदु' जाति भी और 'मध्या' भी (पहिली जाति में 'सम्भोग शृङ्गार' तथा दूसरी में 'वियोग शृङ्गार' (विप्रलम्भ) होता है) इसी प्रकार आयता में 'योषा हास्यरस' तथा मध्या में 'व्यङ्ग हास्य' जानना चाहिये। इस प्रकार इन नव-रसों में यह (कथित) जातियाँ होती हैं।

तत्तज्जातिरसैरेव स्वरास्तत्तद्रसात्मकाः ।
तादृश्यांशग्रहन्यासै रागैस्तत्तद्रसात्मता ॥ ४६५ ॥

उन उन जातियों के रसों के द्वारा ही उन उन रसों के आत्मक (रसवान्) स्वर होते हैं। अर्थात्—जो स्वर प्रकरण में श्रुतियों में जातियाँ बताई हैं, तो जिस श्रुति की जो जाति होती है और उस जाति का (उपरोक्त) जौन सा रस होता है, वही रस उस श्रुति के द्वारा नियमित स्वर का होता है और उसी प्रकार के या उसकी समता के अंश, ग्रह तथा न्यासों के द्वारा और रागों के द्वारा वही-वही रसात्मता पाई या समझी जाती है। यानी जिस श्रुति की जो जाति हुई और उस जाति का जो रस हुआ वही रस उस श्रुतिस्थ स्वर का होगा, तो उस स्वर के द्वारा जिस राग के अंश, ग्रह और न्यास बनेंगे तो वही रस उस राग का भी होगा।

पूर्वकोमलतीव्रैश्च तथा तीव्रतरेण च ।
अतितीव्रतमेनैव सर्वे रागा उदीरिता ॥ ४६६ ॥

'पूर्व कोमल' (शुद्ध स्वर से २ श्रुति कम) और कोमल (१ श्रुतिकम) तथा तीव्र (शुद्धस्वर) और तीव्रतर (श्रुति द्वयोधिक) अति तीव्रतम (श्रुतित्रयोधिक) इन्हीं स्वरों के द्वारा सब राग कहे गये हैं। अब जिन स्वरों के नाम रागों के लक्षणों में नहीं आये हैं, उन्हें बता रहे हैं।

रिश्च पूर्वं तथा तीव्रं तीव्रतरश्च गस्वरम् ।
तीव्रतमं तथा गश्च मश्च तीव्रं स्वरं तथा ॥ ४६७ ॥

पूर्व ऋषभ (श्रुति द्वय हीन १ श्रुति का) तथा तीव्र (शुद्ध) ऋषभ (त्रि-श्रुतिक) और तीव्रतर गान्धार, स्वर (अन्तर गान्धार, शुद्ध से २ श्रुति अधिक) यानी पूर्व मध्यम और तीव्रतम-गान्धार (कोमल या शुद्ध मध्यम त्रिश्रुतिक) तथा तीव्र मध्यम स्वर (सम्पूर्ण)।

मश्च तीव्रतमं धश्च पूर्वाख्यं तीव्रसंज्ञितम् ।
तीव्रतरं निषादश्च तीव्रतमश्च निस्वरम् ॥ ४६८ ॥

और तीव्रतम-मध्यम (श्रुतित्रयोधिक यानी कोमल पञ्चम) तथा पूर्व धैवत (श्रुतिद्वय विहीन १ श्रुति का) यानी पञ्चम शुद्ध से १ श्रुति चढ़ी। और तीव्र धैवत (शुद्ध) त्रिश्रुतिक। तथा तीव्रतर निषाद (श्रुति द्वयोधिक यानी 'काकली' अर्ध या पूर्व षड्ज) और तीव्रतम निषाद स्वर (श्रुतित्रयोधिक 'कैशिकी' यानी कोमल षड्ज) अथवा सकल्पन्च का मृदु (कोमल) निषाद।

इत्येतांश्च दश त्यक्त्वा रागलक्षणमीरितम् ।
द्वादशभिर्विकाराद्यैः शुद्धैश्च सप्तभिः स्वरैः ॥ ४६६ ॥

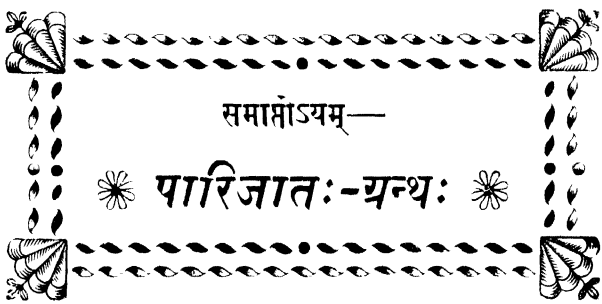
इन उपरोक्त दश प्रकार के स्वरों को छोड़ कर राग लक्षण (प्रकरण) कहा गया है। यानी यह उपरि कथित दशों स्वर रागों में आते तो हैं किन्तु छन्दों में लक्षण वर्णन करने पर इनके नाम नहीं दिये गये। अन्य प्रकार प्रयुक्त हुये हैं। जैसे—पूर्व धैवत (अति कोमल) नहीं लिखा है, और न वर्जित ही लिखा है। तो इसके मानी

यह कि वह इस्तैमाल होता है, किन्तु उसका जिक्र (व्यर्थ समझ कर) नहीं किया है इसी प्रकार तीव्रतर, और तीव्रतम, या अति तीव्रतम-निषाद। वैसे ही अति तीव्रतम गान्धार जो कि भैरव, पञ्चम, गौरी, मालवश्री आदि अनेक रागों में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उसके लिखने की जरूरत नहीं पड़ी क्यों कि उसे ही कोमल या शुद्ध मध्यम कहते हैं।

बारह प्रकार के विकारी स्वरों तथा सात प्रकार के शुद्ध स्वरों के द्वारा या—

एतैः कृत्वा प्रसिद्धा ये त एवात्र प्रकीर्त्तिताः।
तत्तद्देशे च तैः कृत्वा रागा अपि प्रतिष्ठिताः॥ ५०० ॥

इन स्वरों को लेकर या लगाने से जो राग प्रसिद्ध हैं, वे ही मैंने इस (पारिजात ग्रन्थ) में लिखे हैं और अनेक पृथक्-पृथक् देशों में प्रकारान्तर से स्वर विभाग के राग भी प्रचलित या प्रतिष्ठित माने जाते हैं। यानी स्वर संयोजना में भी देशों के अनुरूप अनेक भेद हैं। जिन्हें देशी राग कहना चाहिये। मार्गी वही हैं जो देव या ऋषि काल से प्रचलित प्राचीन सर्व मान्य या 'सार्व दैशिक' कहे जा सकते हैं। अतः इनकी गुणानुकूल 'आर्ष' और 'अनार्ष' यह दो संज्ञाएँ होती हैं।



संगीत सम्बन्धी पुस्तकें !

१—सङ्गीत सागर—सङ्गीत का विशाल ग्रन्थ। इसमें स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, पल्टा अलंकार ४८४ राग रागिनी के आरोहावरोह, रागों के भेद, ५४ पक्की चीजों की स्वरलिपियां, २५ फिल्मी गीतों की स्वरलिपियां, ताल व्याख्या, लयविवरण टुकड़ा, परन, तिहाई, ठेका, मोहरा, लग्गी प्रचलित व गूढ़ और गुप्त तालों के ठेके, हारमोनियम, तबला, सितार, बाँसुरी, जलतरङ्ग, दिलरुबा, बेला, वीन, बेंजो इन साजों को बजाने की सचित्र विधि और नृत्यकला के बोल व तोड़े दिये गये हैं, प्रथम संस्करण हाथों हाथ बिक कर दुबारा छपी है। मू० ४)

२—फिल्म सङ्गीत (तीन भागों में)—प्रथम भाग में ७० दूसरे भाग में ७२ और तीसरे भाग में ७० फिल्म गीतों की हूबहू असली तर्ज में स्वरलिपियां दीगई हैं मूल्य प्रत्येक भाग का २) तीनोंभाग एक साथ ५।)

३ सङ्गीत पारिजात:—पं० अहोबल शास्त्री का लिखा हुआ असली संस्कृत ग्रन्थ सङ्गीत पारिजात [जिसका प्रमाण सङ्गीतके बड़े-बड़े ग्रन्थों में मिलता है] हिन्दी अनुवाद सहित, प्रकाशित हुआ है जो आपके हाथों में है। मू० २)

४—रागदर्शन (प्रथमभाग, राग भैरव)—इसमें राग भैरव और उसकी रागिनी, रागपुत्र और रागपुत्र वधुओं की स्वरलिपियाँ दीगई हैं तथा थाट भैरव के अन्तर्गत रागों की स्वरलिपियां हैं। साथ ही रागरागिनियो के ६ तिरंगे चित्र भी देदिये गये हैं। मू० ३)

५—म्यूज़िक मास्टर—सङ्गीत के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को हारमोनियम तबला और बांसुरी बजाना सिखाने वाली सरल पुस्तक! जिसके ८ संस्करण होचुके हैं। मूल्य १)

६—गवैयों का मेला—हर प्रकार के चुने हुए ५०० गायनों का संग्रह। मू० १।)

७—गवैयों का जहाज़—भजन, प्रार्थना, फ़िल्मी गीत, गज़ल इत्यादि ४०० गायनों का संग्रह, मूल्य १)

८—पुष्प वाटिका—हर प्रकार के गाने लायक ४०४ गाने। मू० १)

९—महिला हारमोनियम गाइड—स्त्री व कन्याओं के गाने योग्य गीतों सहित बिना मास्टर बाजा सिखाने वाली पुस्तक। मू० ॥)

१०—रुक्मणी मङ्गल—राधेश्यामी तर्ज में रुक्मणिमंगल की सम्पूर्ण कथा मू०॥)

११—गीता गायन—गीता का सरल अनुवाद, राधेश्यामी तर्ज में। मू० ॥)

इन पुस्तकों के अलावा

हमारे यहाँ से २ मासिक पत्र "सङ्गीत" और "मनकी मौज" भी निकलते हैं जिनका वार्षिक मूल्य २।) और २) है। नमूना मुफ्त मँगा देखिये।

पता—सङ्गीत कार्यालय (गर्ग कम्पनी) हाथरस—यू० पी०।